हिन्दी-रचना

लेखक

कामेश्वरनाथ, बी. ए., 'विशारद'

आचार्य श्री गोबर्द्धनलाल हिन्दी विद्यापीठ, मथुरा

तथा

हेडमास्टर, ए० बी०, हाईस्कूल, मथुरा।

गयाप्रसाद एण्ड सन्स,

पुस्तक विक्रेता और प्रकाशक

आगरा

तृतीय संस्करण] सन् १९३५ [मूल्य १)

प्रकाशक—

गयाप्रसाद एण्ड सन्स,

आगरा।

मुद्रक—

सत्यव्रत शर्मा

शान्ति प्रेस, आगरा।

निवेदन

यद्यपि बहुत अंशों में यह सत्य है कि कवित्व-बल की तरह रचना-शक्ति तथा वक्तृत्व-शक्ति मनुष्य की दैवी प्रतिभा हैं, किन्तु यह भी सत्य है कि उक्त दोनों गुणों को प्राप्त करने के लिए अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। जन्म से प्राप्त प्रतिभा सुषुप्त अवस्था में रह जाती है यदि उसे अभ्यास के द्वारा जगाने का प्रयत्न नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त सच्ची प्रतिभा विरले ही मनुष्यों में होती है, किन्तु शुद्ध भाषा में स्पष्ट रूप से अपने भाव प्रकट करने की क्षमता तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

इसी आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। विद्यार्थी-जीवन शिक्षा और तैयारी का जीवन है। विद्यार्थियों को रचना-सम्बन्धी आवश्यक विषयों और नियमों का ज्ञान प्राप्त कराना तथा उनमें रचना के प्रति अनुराग उत्पन्न कराना ही प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य है।

मैंने विषयों को सीधी-सादी भाषा और सरल ढंग से लिखने का प्रयत्न किया है, जिसमें विद्यार्थी बिना अधिक प्रयास के इसके विषय को समझ सकें। उपक्रम प्रस्तुत पुस्तक का प्रकृति अंश नहीं है। इसीलिए भाषा, शैली और विषय सभी उसमें, उस श्रेणी से ऊपर उठ गए हैं, जिस श्रेणी की यह

पुस्तक है। लेखन-कला और विस्तृत-ज्ञान का महत्त्व तथा हिन्दी साहित्य और भाषा का संक्षिप्त इतिहास, रचना के और इस श्रेणी की रचना की पुस्तक के प्रकृत अंश न होने पर भी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी अवश्य हैं।

निबन्ध इस दृष्टि से लिखे गये हैं कि उन्हें पढ़कर विद्यार्थियों में अच्छे निबन्ध लिखने की अभिरुचि पैदा हो। पाँच निबन्ध हिन्दी के जिन ख्यातनामा लेखकों के लिखे गये हैं, उनका मैं आभारी हूँ।

वर्तमान समय में जो भी पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं उनमे लगभग सभी पुस्तकों से मैंने सहायता ली है। कुछ अँग्रेज़ी, बँगला पुस्तकों से भी लेने की चेष्टा की है। इन सब का मैं ऋणी हूँ, किन्तु सबसे अधिक मैं अपने एक परम मित्र का ऋणी हूँ जो अपना नाम प्रकाशित करने के लिए तैयार नहीं हुए। मुझे इसका खेद है, क्योंकि इस पुस्तक की तैयारी का श्रेय बहुत कुछ उन्हीं को है। मैंने इसे तीन वर्ष पहले लिखना आरंभ किया था, किन्तु अनेकों झंझटों के कारण आज से पहले इसे पूरा न कर सका। मैं प्रकाशक का आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक को सुन्दर रूप दिया है।

श्री गोबर्द्धनलाल हिन्दी विद्यापीठ,
मथुरा
ता० २२-१०-३२

कामेश्वरनाथ

विषय-सूची

उपक्रम—

(पृष्ठ १ से २१ तक)

प्रकरण १

(पृष्ठ २२ से ६४ तक)

प्रकरण २

(पृष्ठ ६५ से ८३ तक)

प्रकरण ३

(पृष्ठ ८४ से ११८ तक)

प्रकरण ४

(पृ० ११८ से १६६ तक)

उपक्रम

लेखन-कला

लेखन-कला मानवमस्तिष्क की अनोखी सूझ, प्रतिभा-निकुञ्ज को मनोहारी लतिका, और मनुष्य-जाति को भगवान से मिली हुई अपूर्व भिक्षा है। इसकी अनुपम कल्पना कितनी सरस, कितनी गम्भीर, कितनी सत्य, कल्याणकारी और सुन्दर है। कौन कह सकता था कि वट के छोटे-छोटे बीज के सदृश वर्णमाला के दस-बीस अक्षरों की संसार पर इतनी प्रभावशाली छाप होगी, और यह एक दिन अखिल विश्व को आच्छादित कर लेंगे, समस्त जगत् इनकी उपासना करेगा और इनको सत्यं-शिवं-सुन्दरं मानकर इनके सम्मुख श्रद्धा और भक्ति से अपना शीश नवायेगा।

वास्तव में सरस्वती की सारी लीला अधूरी रह जाती, मनुष्य-जाति के अवयव एक-दूसरे से बहुत अलग होते, अतीत और वर्तमान सम्भवतः कभी न मिलते, भविष्य देखना हमारे लिए सर्वथा असम्भव होता, संसार इतनी उन्नति कदापि न कर पाता, गौतम और कणाद का हम भूल जाते, हमें कालिदास के साथ घर बैठे हिमालय से परे जाने का अवसर न मिलता, हम तुलसी और सूर से आज तीन सौ वर्ष बाद बातें न कर पाते, हमे हमारे एकान्त का साथी मिलना दुर्लभ हो जाता, रेल-तार, हवाई जहाज़ और रेडियो का कोई स्वप्न न देखता, संसार अपनी जगह पर नाचता होता, यदि इस दिव्य कला का जन्म इस पार्थिव जगत् में न होता।

संसार की सब से बड़ी शक्ति लेखन-कला

आवश्यकताएँ आविष्कारों को जन्म देती हैं। यही लेखन-कला की उत्पत्ति का कारण है। वर्तमान संसार में जितना ऊँचा लेखन-कला का स्थान है उतना किसी का नहीं। इस युग की सब से बड़ी शक्तियाँ दो है, लेखन-कला और वक्तृत्व-कला। इनके सामने बड़े-से-बड़े राजा की शक्ति कोई मूल्य नहीं रखती। अच्छे लिखने और बोलने वालों का संसार मुँह देखता है। उनके इशारों पर बड़ी-से-बड़ी जातियाँ नाच उठती हैं, समय बदल जाता है, राष्ट्रों में उथल-पुथल हो जाती है। इन दोनों कलाओं में भी लेखन-कला का स्थान अधिक ऊँचा है। यद्यपि वक्ता एक स्थान पर एक समय में ही सहस्रों को मोहित कर सकता है, हँसा सकता है और रुला सकता है, परन्तु उसका प्रभाव स्थायी नहीं रहता। इसके विरुद्ध लेखक सदैव और सर्वत्र अपनी दिव्य शक्ति से किसी भी पाठक के हृदय पर चोट पहुँचा सकता है। लेखन-कला वक्ता को भी अमर बना देती ह। लेखनी

द्वारा वक्ता की आवाज़ सैकड़ों और सहस्रों मील की दूरी पर अपना प्रभाव डाल सकती है।

निबन्ध-रचना

जो अच्छे लेखक हैं वे धन्य हैं। उनकी कृति किसी भी देश और जाति क्या, संसार की सब से अमूल्य सम्पत्ति है। यह सम्भव नहीं हो सकता कि सभी मनुष्य अच्छे लेखक हो सकें। यह तो ईश्वर-प्रदत्त शक्ति है। इसी को प्रतिभा कहते हैं। किन्तु प्रत्येक मनुष्य को इतना लिखना अवश्य जानना चाहिये कि वह अपने बिखरे हुए विचारों को सुव्यवस्थित रूप से दूसरों के सम्मुख रख सके। इस प्रकार किसो विषय विशेष पर अपने भावों और विचारों को भली प्रकार दूसरे के सम्मुख रख देने को ही 'निबन्ध-रचना' कहते हैं।

रचना के मुख्य गुण

प्रत्येक रचना में दो गुण अवश्य होने चाहिएँ—(१) आकर्षण और (२) स्पष्टता। पहले गुण का अर्थ यह है कि पढ़ने वाले की पढ़ने में रुचि उत्पन्न हो, आसक्ति बनी रहे और आनन्द आता जाए। और दूसरे का अभिप्राय यह है कि पढ़ने वाला उसके भावों को वैसे ही समझता जाए जैसा कि लिखने वाला चाहता है। ये ही निबन्ध के मुख्य गुण हैं। जिसे भाषा का अच्छा ज्ञान है और जिसके पास पुष्कल परिमार्जित विचार हैं, वह निबन्ध के इन अंगों की पूर्ति सफलतापूर्वक कर सकता है।

भाषा

भाषा हमारी हृत्तन्त्री का तार, हमारा और बहिर्जगत का पवित्र बन्धन, हमारे भावों का चित्र और हमारे विचारों का स्थूल रूप है। भाषा का साधारण ज्ञान तो मामूली सी बात है। उसे छोटे-से-छोटा बच्चा भी रखता है। प्रत्येक मनुष्य इसी के सहारे बड़ा होता

और संसार से अपना नाता जोड़ता है। इसीलिए वह हमारी धात्री है।

हिन्दी-भाषा का विकास

मातृ-भाषा के जीवन के विषय में कुछ बातें जानना जितना मनोहर है, उतना आवश्यक भी है। इससे अच्छी भाषा लिखने और भाषा की उत्तमता समझने की रुचि और योग्यता दोनों ही उत्पन्न होंगी। हिन्दी भाषा के विकास का इतिहास बड़ा ही विचित्र है। इसकी जन्मदात्री भाषा का निर्णय विद्वानों के विवाद का एक विषय है। 'इसका जन्म किस भाषा से हुआ' इस सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मत हैं। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि हिन्दी संस्कृत भाषा से उत्पन्न हुई और कुछ का कहना है कि प्राकृत से। संस्कृत भाषा के नाम से तो सभी परिचित हैं, किन्तु प्राकृत के नाम से बहुत से विद्यार्थी अनभिज्ञ होंगे। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि संस्कृत और प्राकृत दो बहिनें हैं, जो एक माता से उत्पन्न हुई हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका कहना है कि जब आर्य भारतवर्ष में आये थे, उनकी भाषा वैदिक थी। इतने विस्तृत देश में फैले हुए आर्यों की उसी वैदिक भाषा में आगे चल कर अनेक भेद होने लगे और भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोगों से उसका समझना भी कठिन होने लगा। तब उसी वैदिक भाषा के ऐसे नियम बनाये गये जिससे भाषा में आगे परिवर्तन न हो सके। उन नियमों से शुद्ध की हुई और बाँधी हुई भाषा का नाम संस्कृत पड़ा।

प्राकृत

किन्तु बोल-चाल में वही वैदिक-भाषा प्रयोग में आती रही, जिसे प्राकृत कहने लगे। आज भी हमारी नगरों-की-भाषा और गाँवों-की-भाषा में, हमारी घर-की-भाषा और बाहर-की-भाषा में बड़ा भेद है।

यही दशा इस समय बिना नियम की वैदिक-भाषा प्राकृत और नियमों से सुधरी हुई भाषा संस्कृत की थी । प्राकृत साधारण जन समाज की बोल-चाल की भाषा थी और संस्कृत शिक्षित समाज की ।

कुछ समय बाद लोगों ने प्राकृत को भी व्याकरण के नियमों से जकड़ दिया । उसमें साहित्य की रचना होने लगी । इसके अनेक रूप हो गये । स्थान-स्थान पर अलग-अलग प्रयोग और अलग-अलग शब्दों ने प्राकृत को अनेक नये-नये नाम प्रदान किये । ब्रजमण्डल के आस-पास की भाषा शौरसेनी, मगध की मागधी और दोनों के बीच की भाषा अर्द्धमागधी कहलाने लगी । अब बोली जाने वाली प्राकृत का नाम *अपभ्रंश* पड़ गया ।

हिन्दी का विकास और उसके भिन्न-भिन्न रूप

यह 'अपभ्रंश' प्राकृत के भेदों के अनुसार कई पैदा हुईं और इन्हीं से हमारी हिन्दी के भिन्न-भिन्न रूपों का विकास हुआ; जैसे—ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली आदि । बहुत दिनों तक ये केवल बोल-चाल की भाषाएँ रहीं, परन्तु कालान्तर में इन भाषाओं में भी साहित्य की रचनाएँ होने लगीं, और उस साहित्य का जन्म हुआ जिसे हिन्दी साहित्य कहते हैं । इसे स्पष्ट रूप से समझने के लिए नीचे वंश-वृक्ष दिया जाता है ।

(हिन्दी भाषा का वंश-वृक्ष)

वैदिक भाषा

- संकृत (साहित्य व शिक्षित समाज की व्याकरण के नियमों से बँधी हुई भाषा)
  - प्राकृत (साहित्य की)
    - शौरसेनी (ब्रज प्रदेश की) — ब्रज-भाषा
- प्राकृत (साधारण बोल-चाल की भाषा)
  - अपभ्रंश (बोल-चाल की)
    - मागधी (मगध प्रदेश की) — बिहारी
    - अर्द्धमागधी (बीच की) — अवधी, पूर्वी

हिन्दी
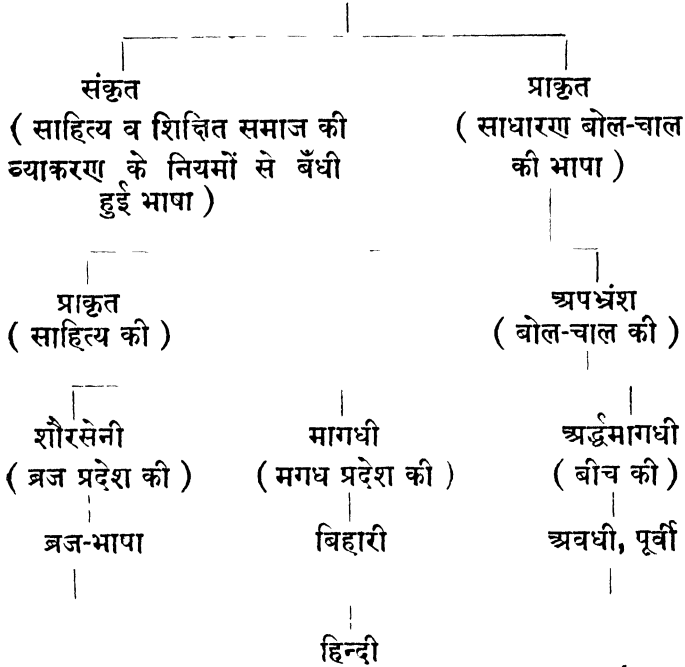
ब्रज-भाषा, अवधी और खड़ी बोली के अतिरिक्त वर्तमान हिन्दी के और भी अनेक रूप हैं; जैसे—पंजाबी, बिहारी, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी, मारवाड़ी, हरियानी, बाँगड़, पहाड़ी, इत्यादि, जो अपभ्रंश के भेदों और उपभेदों के मिलने से उत्पन्न हुए हैं। प्राकृत के भेदों से हिन्दी रूप किस प्रकार बने और प्राकृत व संस्कृत के रूपों में कितनी समानता है, यह समझने के लिए हम यहाँ पर कुछ प्राकृत, हिन्दी और संस्कृत शब्दों के रूपों पर विचार करते हैं।

प्राकृत	हिन्दी	संस्कृत
कम्म	काम	कर्म
हत्थ	हाथ	हस्त
थम्भ	खम्भ, खम्भा	स्तम्भ
अज्ज	आज	अद्य
सज्जा	सेज	शय्या
घियम	घी	घृत
बाउलो	बावला	बातुल
बहिणी	बहिन	भगिनी
तेल्ल	तेल	तैल
अन्देउर	अन्दर	अन्तःपुर
बच्छ	बच्चा	वत्स
बिज्जु	बिजली	विद्युत्
अग्गि	आग	अग्नि

हिन्दी-भाषा का शब्द भंडार

इस प्रकार वर्तमान हिन्दी में चाहे वह ब्रज, अवधी या खड़ी-बोली हो दोनों ही प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। एक तो वे जो प्राकृत से आये हैं और दूसरे वे जो संस्कृत से लिये गये हैं। प्राकृत से आये हुए शब्द *तद्भव* कहलाते हैं; जैसे—बच्चा हाथ, हड्डी, बिजली आदि; और संस्कृत से लिये हुए शब्द *तत्सम* कहे जाते हैं; जैसे—पिता, आज्ञा, शिष्य, विद्यार्थी आदि।

हिन्दी भाषा में कुछ ऐसे भी शब्द हैं, जिनके सम्बन्ध में यह निश्चय नहीं हो सकता कि वह कहाँ से लिए गये हैं, अथवा उनकी क्या उत्पत्ति है; जैसे—खिड़की, लोटा, तवा, आदि। ऐसे शब्दों को *देशज* कहते हैं। कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो किसी वास्तविक या कल्पित ध्वनि पर बने हैं, जैसे—खटखटाना, फड़फड़ाना, हिनहिनाना, फुस-फुस इत्यादि। इनको *अनुकरण* शब्द कहते हैं। उसके बाद मुसलमानों और अँगरेजों तथा अन्य विदेशी जातिओं के सम्पर्क से अँगरेज़ी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, फ़ारसी और अरबी आदि भाषाओं से भी हिन्दी-भाषा ने शब्द ग्रहण किये हैं; जैसे—आईना, चरखा, जाजरू आदि शब्द अर्बी-फ़ारसी से लिये गये हैं और स्टेशन, बटन, लेम्प, माचिस, इत्यादि अँगरेज़ी से लिये गये हैं। इसी प्रकार और भाषाओं से लिये गये शब्दों के उदाहरण आगे और दिये गये हैं।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास

लगभग आठवीं अथवा नवीं शताब्दि में अपभ्रंश शब्दों का रूप बदल कर हिन्दी होने लगा। यही हिन्दी के विकास का समय है। इस काल की हिन्दी को ही आदि-हिन्दी कहा जाता है। इस समय की हिन्दी में अपभ्रंश शब्दों और अपभ्रंश प्रयोगों की भरमार थी। हिन्दी का सब से पहला ग्रन्थ जिसका पता चलता है, वह 'खुमान रासो' है, जिसको किसी भाट कवि ने नवीं शताब्दि में लिखा था। इसमें अपभ्रंश शब्दों का बाहुल्य है। इसके बाद चन्द बरदाई के ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' में भी भाषा की यही दशा है। धीरे-धीरे भाषा बदलती गई। किसी स्थान पर भाषा में बहुत परिवर्तन हो गये और कहीं कम। हिन्दी भाषा ब्रज में ब्रज-भाषा के रूप में, अवध में अवधी के

रूप में और मेरठ तथा दिल्ली के आस-पास खड़ी-बोली के रूप में, शीघ्र ही अपभ्रंशों से बिल्कुल भिन्न होकर स्वतन्त्र हो गई। किन्तु राजपूताने और बुन्देलखण्ड की भाषा में बहुत दिनों तक अपभ्रंश शब्दों का प्राधान्य रहा। अब भी राजपूताना की डिंगल भाषा में ऐसे बहुत से शब्द ज्यों-के-त्यों प्रचलित हैं।

आठवीं या नवीं शताब्दि में हिन्दी का विकास मान लेने से आज तक का हिन्दी का लगभग ग्यारह या बारह सौ वर्ष का जीवन है। हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने वालों में से कुछ विद्वानों ने इस सारे समय को चार भागों में विभक्त किया है।

(१) आदि काल या वीर गाथा काल – सवत् १३७५ तक।

(२) पूर्वमध्य काल या भक्ति काल—१३७५ से सं० १७०० तक

(३) उत्तर मध्य काल या रीति काल—सं० १७०० से १६०० तक।

(४) आधुनिक काल या गद्य काल—सं० १६०० से आज तक।

(१) आदि काल

आठवीं या नवा से चौदहवीं की तीन-चौथाई शताब्दि पर्यन्त छः या सात सौ वर्ष का समय, हिन्दी का आदि-काल इसलिए कहा जाता है कि इसमें हिन्दी का विकास आरम्भ हुआ और धीरे-धीरे विकसित होकर उसने अपना अलग अस्तित्व स्थापित किया। इस काल में हिन्दी का रूप भली प्रकार निश्चित हो गया। उपर्युक्त खुमानरासो और पृथ्वीराज रासो तथा बीसल देव रासो के रचयिता कवियों के अतिरिक्त और भी बड़े-बड़े प्रसिद्ध कवियों ने इस काल में जन्म लिया; जैसे भुवाल कवि, अमीर खुसरो और विद्यापति। अमीर खुसरो मुसलमान थे। इन्होंने खड़ी बोली में भी कुछ कविता की है। विद्यापति को मैथिल कोकिल भी कहा जाता है। इन्हें बँगला भाषा-भाषी अपनी भाषा के भी आदि कवि मानते हैं।

इस काल में कई रासो रचे गये और वीररस की कविताओं का प्राधान्य रहा। इसीलिए इसे वीर-गाथा काल कहा जाता है।

(२) पूर्व मध्य काल

चौदहवीं शताब्दि के अन्तिम चरण से सत्रहवीं शताब्दि तक का सवा तीन सौ वर्ष का समय जिसे पूर्व मध्य काल कहते हैं, हिन्दी के लिए बड़े गौरव का समय है। इस समय हिन्दी भाषा अपनी प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुकी थी। भाषा में स्वाभाविक लालित्य व माधुर्य आगया था। इसी काल में कबीर, नानक सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, मीराबाई, तुलसीदास, रहीम, रसखान और केशवदास के समान महान् कवि उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त और भी अनेक सुकवि हुए, जिन्होंने अत्यन्त मनोहारिणी कविताएँ की हैं। उपरोक्त महाकवियों में सूर और तुलसी हिन्दी के सब से बड़े कवि हैं। संसार के किसी भी कवि के लिए यह बिल्कुल निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसने इनसे श्रेष्ठतर कविता की है। इनके साथ ही कबीरदास और केशवदासजी भी हिन्दी नवरत्नों में गिने जाते हैं। केशवदास संस्कृत के भी अच्छे पण्डित थे। कबीरदास बड़ी उच्च कोटि के कवि और महात्मा थे। इनका कवित्व बड़े ऊँचे दर्जे का है। इनकी गणना संसार के महाकवियों में है। इस समय के अधिकांश कवियों ने भक्ति के प्रवाह में कविताएँ कीं। ये सब एक से एक बढ़कर भक्त थे। इस समय देश में भक्ति का ही प्रभाव था। इसीलिए इसे भक्ति-काल कहा जाता है।

मलिक मुहम्मद जायसी और तुलसीदास ने अपनी कविता अवधी भाषा में की, और सूरदास, रसखान, मीराबाई आदि ने ब्रज-भाषा में। इनमें कबीर और नानक आदि भगवान् को निराकार मानकर ज्ञानमय भक्ति के उपासक थे किन्तु जायसी ऐसे कवि प्रेममय भक्ति के उपासक थे। और भक्ति कवियों में

सूर, मीरा आदि भगवान को साकार मानकर कृष्ण रूप के उपासक थे किन्तु तुलसीदास राम रूप के।

(२)
उत्तर-मध्य-काल

सत्रहवीं शताब्दि के बाद उन्नीसवीं शताब्दि तक का दो सौ वर्ष का समय हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उत्तर मध्य या रीति काल कहा जा सकता है। भाषा में प्रौढ़ता तो इसके पूर्व ही आ चुकी थी और भाषा की परिपक्वता में कोई कसर न थी। इस काल में अधिकतर शृङ्गार रस के कवि उत्पन्न हुए। कुछ कवियों ने वीर रस में भी कविताएँ कीं। इन कवियों में कुछ ऐसे भी हैं जिनकी बराबरी संसार में किसी भी बड़े-से-बड़े कवि से की जा सकती है। बिहारी और देव इस काल के ऐसे ही महाकवि हैं। हिन्दी नवरत्नों में इनका बड़ा ऊँचा स्थान है। वे शृङ्गार रस के कवि हुए हैं। इस समय इनके अतिरिक्त और भी अनेकों अच्छे-अच्छे कवि उत्पन्न हुए, जिन्होंने वास्तव में अपनी रचनाओं से भाषा को सजा दिया। इनमें अधिकांश ऐसे थे, जिन्होंने शृङ्गार रस की धूम मचा दी, हद कर दी। सेनापति मतिराम, भूषण, दास, गिरधर, सूदन, पद्माकर और ग्वाल इस काल के ख्यातिनामा कवि हैं। इनमें भूषण और सूदन वीर रस की कविताओं के लिए और गिरधर अपनी नीति विषयक कुण्डलियों के लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

इन दो सौ वर्षों के समय में काव्य के भिन्न-भिन्न अङ्गों का निरूपण करने वाले शास्त्रों की रचनाएँ की गईं। रस, अलंकार, नायक-नायिका भेद आदि विषयों पर देव, मतिराम, भूषण आदि अनेकों कवियों ने बहुत से ग्रन्थ लिखे। ऐसे ग्रन्थों को रीति ग्रन्थ कहते हैं। इन रीति ग्रन्थों का बाहुल्य होने के कारण इस काल को रीति-काल कहा जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दि के बाद से आज तक का समय दो भागों में विभक्त होता है, (१) परिवर्तन और (२) उत्तरपरिवर्तन। प्रारम्भ के चालीस वर्षों का समय 'परिवर्तन' और उसके बाद का उत्तरपरिवर्तन कहा जाना चाहिए। इन चालीस वर्षों में हिन्दी-भाषा का रूप बहुत बदल गया। अब तक पद्य की भरमार थी अब लोगों का विचार कुछ गद्य की ओर भी झुका। पहले भी कुछ गद्य रचनाएँ खड़ी बोली व ब्रज-भाषा में हुई थीं, परन्तु उनका प्रचार उस समय न हो सका। किन्तु अब खड़ी बोली में गद्य की ओर लोगों की रुचि दिन-पर-दिन बढ़ती गई, और जैसे-जैसे गद्य का प्रचार होता गया भाषा सुधरती गयी और धीरे-धीरे परिष्कृत और परिमार्जित हो कर उसका शुद्ध रूप निश्चित हो गया। इसका सब से बड़ा कारण अँग्रेजी शासन है। देश में विस्तृत साम्राज्य, संघर्ष का अन्त, प्रेसों की स्थापना तथा उनकी उत्तरोत्तर उन्नति ने इस परिवर्तन में बड़ी सहायता दी।

(४) आधुनिक काल

उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य में मुन्शी सदासुखराय ने भागवत् का हिन्दी गद्य में उल्था किया। इसके बाद इंशाअल्लाखाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र ने और भी कुछ परिमाजित भाषा में गद्य रचनाएँ कीं। ये लोग हिन्दी गद्य के आदि लेखक कहे जा सकते हैं। आगे चलकर राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह ने इससे भी अधिक परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया। इस प्रकार इस चालीस वर्ष के परिवर्तन काल में भाषा का रूप बिल्कुल बदल गया।

इसके बाद उत्तरपरिवर्तनकाल का प्रारम्भ श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से होता है। भारतेन्दुजी ने हिन्दीगद्य का आधुनिक रूप स्थिर किया। कुछ लोग इन्हें वर्तमान हिन्दी गद्य

का जन्मदाता कहते हैं। यह बड़े मार्के के कवि भी थे। कुछ विद्वान् इनकी भी गणना हिन्दी नवरत्नों में करते हैं। कवि के अतिरिक्त यह उच्च कोटि के नाटककार भी थे। वास्तव में इन्होंने हिन्दी में नाटकों को जन्म दिया।

भारतेन्दु के बाद से गद्य का प्रचार दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है। आजकल हिन्दी के प्रत्येक अङ्ग की पूर्ति की चेष्टा हो रही है। नाटक, वेदान्त, उपन्यास, गल्प, विज्ञान आदि सभी विषयों पर सुन्दर-से-सुन्दर पुस्तकें लिखी जा रही हैं। दूसरी भाषाओं के अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का अनुवाद भी प्रचुरता से हो रहा है। परन्तु इस समय कविता गद्य के सामने फीकी है, और जो कुछ होती भी है वह खड़ी-बोली में। सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ ऐसे पद्य और गद्य से भरी रहती हैं। आजकल ब्रज-भाषा में बहुत कम लोग कविता करते हैं।

खड़ी बोली

आज से छः सौ वर्ष पूर्व चौदहवीं शताब्दि में अमीर ख़ुसरो की भी कुछ फुटकर कविताएँ खड़ी-बोली में मिलती हैं, किन्तु उस समय उनका कुछ विशेष आदर नहीं हुआ। वह समय ब्रज-भाषा के उत्कर्ष का काल था। उस समय खड़ी बोली केवल देहली और मेरठ के आस-पास की भाषा थी। आज खड़ी-बोली सारे भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा मानी जाती है।

इस समय खड़ी-बोली को ही कुछ लोग "हिन्दुस्तानी" कहते हैं। विशुद्ध हिन्दी से यदि कठिन संस्कृत शब्द निकाल दिये जाएँ और बोलचाल की हिन्दी के फ़ारसी, अरबी या अँगरेज़ी प्रचलित शब्दों का समावेश करके भाषा को सरल बना दिया जाए तो वही

हिन्दुस्तानी

"हिन्दुस्तानी-भाषा" हो जाएगी। और इसी प्रकार हिन्दुस्तानी भाषा में फ़ारसी और अरबी शब्दों को भर देने से यह उर्दू बन जाती है। उर्दू हिन्दी-भाषा का ही एक रूप है, किन्तु अरबी लिपि में लिख देने से वह भिन्न भाषा प्रतीत होने लगती है।

उर्दू

हिन्दी, मराठी और संस्कृत जिस लिपि में लिखी जाती हैं, उसे नागरी लिपि कहते हैं। इसका लेखन-शैली बड़ी सरल और संसार में अनुपम है। अनेक विद्वानों का मत है कि नागरी ही भारतवर्ष को राष्ट्र लिपि हो सकती है।

नागरी लिपि

किसी भाषा के शुद्ध लिखने या बोलने तथा उसके पूर्ण के लिए उस भाषा का व्याकरण जानना आवश्यक है। व्याकरण का रचना से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। बोलने में जो काम हम ध्वनि से निकालते है लिखने में वह केवल शब्दों से निकलता है। बोलने में वाक्यों का गठन, शब्दों का चुनाव और उनका उपयुक्त स्थान ठोक न होने पर भी काम चल सकता है, किन्तु रचना में शब्दों का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया जाता है। शब्दों के वह रूप और प्रयोग जिनको भाषा के विद्वानों और शिष्ट समाज ने स्वीकार कर लिया है व्याकरण द्वारा सर्व साधारण को समझाये जाते हैं। व्याकरण यह भी समझाता है कि किन नियमों से ये रूप और प्रयोग बने हैं। संस्कृत में व्याकरण का अर्थ है 'भली भाँति समझाना।'

व्याकरण

हिन्दी हमारी मातृ-भाषा है। बचपन से हम इसी से अपना सारा काम चलाते रहे हैं। इसीलिए हिन्दी में बिना व्याकरण जाने हुए भी हम लोग लगभग शुद्ध ही लिखते और बोलते हैं।

व्याकरण के विषय में हमें बहुत ज़्यादा नहीं सीखना पड़ता। अनेक बातों का हमें इतना अभ्यास हो गया है कि किसी नियम विशेष का ज्ञान न होते हुए भी हमारे कान प्रायः बता देते हैं कि वह शुद्ध है या अशुद्ध। यह हमारे निरन्तर अभ्यास का फल है। रचना सीखने के पहले इसी प्रकार व्याकरण के उन सारे नियमों का पूरा अभ्यास कर लेना चाहिए जो लिखने में काम आते हैं। अच्छा अभ्यास हो जाने पर लिखते समय फिर इन नियमों को प्रति-क्षण सोचने की आवश्यकता न पड़ेगी। व्याकरण के नियमों को पग-पग पर सोचते हुए न कोई बात कर सकता है और न कोई लिख सकता है। इस से वर्णन के स्वाभाविक प्रवाह में बाधा होती है और सारी सुन्दरता नष्ट हो जाती है।

इस सम्बन्ध में एक बात और बतलाना आवश्यक है कि हिन्दी भाषा का व्याकरण संस्कृत भाषा के व्याकरण के सदृश कदापि नहीं हो सकता। संस्कृत भाषा व्याकरण के ऐसे कड़े नियमों से बँधी हुई है कि हजारों वर्ष बीतने पर भी उसमें न अधिक परिवर्तन हुए हैं और न आगे होने की सम्भावना है। परन्तु हिन्दी का इतिहास यह बतलाता है कि वह परिवर्तन से पैदा हुई है, और उसमें बराबर परिवर्तन होते रहे हैं, और इसलिए भविष्य में भी इसी प्रकार परिवर्तन होते रहेंगे। कारण यह कि हिन्दी-भाषा में नये-नये शब्द और नये-नये प्रयोग ग्रहण करने की शक्ति है। ऐसी अवस्था में व्याकरण में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यही जीवित-भाषा के लक्षण हैं। ऐसी भाषाएँ जब तक बिना व्याकरण के रहती हैं उनमें परिवर्तन जल्दी-जल्दी होते रहते हैं, किन्तु व्याकरण बन जाने पर वे परिवर्तन इतनी जल्दी नहीं होते और भाषा में अधिक काल तक समानता व स्थिरता रहती है।

व्याकरण भाषा पर शासन करता है। उसके नियन्त्रण में भाषा का प्रवाह निश्चित मार्ग पर बहता है।

व्याकरण की जानकारी से शुद्ध रचना का ज्ञान होता है, किन्तु रचना में लालित्य, सौन्दर्य, ओज, गम्भीरता, रस, आकर्षण और भाव उत्पन्न करने के लिए विस्तृत-ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है।

विस्तृत-ज्ञान

विस्तृत ज्ञान का अर्थ है, स्कूल में पढ़ी हुई किताबों के बाहर की अनेक बातों की जानकारी। जिस मनुष्य का विस्तृत-ज्ञान अच्छा है, जिसके मस्तिष्क-कोष में जानकारी की अनेक बातें भरी हैं, जो किसी प्रश्न पर देखी, सुनी, पढ़ी और अनुभव की हुई सैकड़ों बातें बता सकता है या सोच सकता है, उसे निबन्ध रचने या कोई लेख लिखने में बड़ी सुविधा होती है। ऐसा मनुष्य रचना के थोड़े से नियम जान कर अच्छी-से-अच्छी रचना कर सकता है।

विस्तृत-ज्ञान प्राप्त करने के मुख्य चार साधन हैं—(१) निरीक्षण, (२) पर्यटन, (३) सत्संग और (४) स्वाध्याय। इन चारों साधनों को काम में लाने से सच्चा लाभ तभी होगा जब उसके प्राप्त करने की सच्ची लगन होगी। वास्तव में इच्छा या जिज्ञासा ज्ञान प्राप्ति का मूल मन्त्र है।

निरीक्षण का अर्थ है 'भली भाँति देखना'। आँखें रखते हुए देखना मनुष्य का चौबीस घंटे का व्यापार है। किन्तु केवल भेद इतना है कि अधिकांश मनुष्य देख कर भी कुछ ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते। उठते-बैठते चलते-फिरते सैकड़ों ऐसी बातें हमारी दृष्टि के सामने पड़ती हैं जो हमारे लिए एक

रहस्य हैं, और जिनके सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत थोड़ी है। ये बातें ऐसी हैं कि उनके जाननेसे हमको आनन्द होगा और लाभ पहुँचेगा। किन्तु हम उन्हें जानने की कोई चेष्टा नहीं करते। हम सूर्य, चन्द्र, तारे आदि ब्रह्माण्ड की अनेक अद्भुद वस्तुओं को प्रायः नित्यप्रति ही देखते हैं, परन्तु यह जानने की चेष्टा नहीं करते कि ये सारी अद्भुत वस्तुएँ क्या हैं, और इनका क्या धर्म है। हम प्रायः चलते-फिरते अनेक प्रकार की वनस्पति, जीव-जन्तु तथा अन्य अद्भुत वस्तुओं को देखते हैं। परन्तु उनके विषय में ज्ञान प्राप्त करने का कष्ट उठाना आवश्यक नहीं समझते। फल यह होता है कि हम उनके गुणों और रहस्यों में प्राप्त होने वाले आनन्द से वञ्चित रह जाते हैं, और इस प्रकार मानव-जीवन को उतना सुखी तथा आनन्दमय नहीं बना पाते जितना कि बनाया जा सकता है।

अगर हम उनको जानने का कष्ट उठाएँ तो हमें अवश्य लाभ हो, परन्तु हमारे हृदय में उनके जानने की इच्छा का एक दम अभाव है। बहुतसे लोग तो ऐसे हैं कि वे देखते हुए भी नहीं देखते, अथवा देखकर और देखते हुए आँखें बन्द कर लेते हैं, जैसे अनेक लोग चोरी, डाका, जुआ, शराबखोरी आदि के अवगुणों और दुष्परिणामों को जानते हुए भी उन्हें नहीं छोड़ते।

ज्ञान बढ़ाने के लिए इन्द्रियाँ भगवान के दिये हुए सर्वोत्तम साधन हैं। उनसे यदि कोई मनुष्य काम न ले तो उसके लिए ज्ञान प्राप्त करने का दूसरा उपाय नहीं। हम निरीक्षण में तभी सफल हो सकते हैं जब आँख खोलकर चलें। कोई नई बात देखते ही अपने से प्रश्न करें कि उनके सम्बन्ध में हम क्या

जानते हैं तथा हमें क्या जानना है। फिर जितना उसके बारे में जान सकते हैं जानने का प्रयत्न करें यही निरीक्षण है।

(२) पर्यटन

विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने का दूसरा साधन पर्यटन है। पर्यटन अर्थात् घूमने से अच्छा लाभ तभी हो सकता है जब मनुष्य को निरीक्षण का अभ्यास हो। यह ज्ञान-वृद्धि का सर्वोत्तम उपाय है। इससे मनुष्य को वास्तविक ज्ञान और अनुभव होता है। वह स्वयं जाकर चीज़ों को अपनी आँखों से देखता और समझता है। पर्यटन या परिभ्रमण के सम्बन्ध में साधारणतया लोगों की यह धारणा है कि इसके लिए धन और अवकाश की बड़ी आवश्यकता है। यह धारणा बहुत अंशों में सत्य है, किन्तु बुद्धिमानी से काम लेने पर बिना कुछ व्यय किये या बहुत थोड़े व्यय से भी पर्यटन का आनन्द उठाया जा सकता है। इस के लिए कुछ अधिक समय की भी आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक नगर के आस-पास अनेक ऐसे स्थान हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से या प्राकृतिक सौन्दर्य के विचार से बड़ा महत्त्व रखते हैं। अवकाश मिलने पर हम वहा बड़ी आसानी से जा सकते हैं, ठहर सकते हैं और उस स्थान का भली भाँति निरीक्षण कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त आस-पास के मेलों और तमाशों में भी जाकर बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। पैदल या बाइसिकलों पर टोलियाँ बनाकर छोटी-छोटी यात्राएँ भी कर सकते हैं और निकटवर्ती प्रसिद्ध स्थानों को देख सकते हैं। इस प्रकार बहुत कुछ जानकारी बढ़ाई जा सकती है।

(३) सत्संग

ज्ञान बढ़ाने का तीसरा साधन सत्संग है। अपने से अधिक योग्यता और अनुभव रखने वाले व्यक्तियों के पास उठने-बैठने से मनुष्य दो-चार दिन में ही

अनुभव कर सकता है कि उसके ज्ञान में कुछ वृद्धि हुई है। मनुष्य सामाजिक जीव है। उसकी प्रकृति है कि वह बिना साथी के नहीं रह सकता। उसे मिलने-मिलाने और बातचात करने के लिए कोई न कोई अवश्य चाहिए। ऐसी अवस्था में बुद्धिमान, सदाचारी, ज्ञानवृद्ध और अनुभवी व्यक्तियों के पास उठने-बैठने से दोहरा लाभ होता है। साथी के साथी मिल जाते हैं, और उनकी प्रतिदिन की देखी, सुना, पढ़ी और अनुभव की हुई बातें सुनने को मिलती हैं। यह ज्ञान बढ़ाने का बहुत ही सुलभ साधन है। इससे बेपढ़ा आदमी भा बहुत कुछ जानकारी बढ़ा सकता है।

(४) स्वाध्याय

ज्ञान-वृद्धि का चौथा साधन है, स्वाध्याय। स्वाध्याय से आशय है ऐसी किताबें पढ़ना, जिनमें बड़े-बड़े विद्वान् और महात्माओं ने अपने ज्ञान की सारी बातें भर दी हैं। इन पुस्तकों के पढ़ने से बड़े-से-बड़े योग्य आदमी की संगति का, और दूर दूर के भ्रमण का आनन्द आ सकता है। इसमें न कहीं जाने की आवश्यकता है और न किसी को बुलाने से प्रयोजन। धन का भी कुछ अधिक प्रश्न नहीं। बहुत थोड़े दामों में अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं, और उनसे ऊँची-से-ऊँची बातें जानी जा सकती हैं। पुस्तकें मनुष्य के एकान्त के साथी और सखा हैं। जिन बातों को निजी अनुभव से सीखने में एक मनुष्य अपना सारा जीवन व्यतीत करेगा, वह पुस्तकों द्वारा थोड़े ही समय में सीखी जा सकती हैं। किन्तु सबसे कठिन बात है, पुस्तकों का चुनाव। अच्छी पुस्तकों से जितना लाभ होता है, गन्दी पुस्तकों से उतनी ही हानि होती है। 'कौन पुस्तकें पढ़ने योग्य हैं और कौन नहीं हैं', इसका निर्णय करने के लिए किसी समझदार विद्वान् से परामर्श लेना चाहिए।

इस प्रकार किसी विद्वान् के आदेश या परामर्श के अनुसार बहुत सी उत्तम पुस्तकें पढ़ जाने पर जानकारी के अतिरिक्त अच्छे-अच्छे लेखकों की लेखन-शैली का ज्ञान होगा। रचना सीखने के लिए इससे अधिक उत्तम रीति कोई नहीं हो सकती कि अच्छे लेखकों की रचनाओं को ध्यान-पूर्वक पढ़ा जाए और उनका मनन किया जाए।

इन चारों साधनों से समय-समय पर काम लो। जिस साधन से जब लाभ उठाने का अवसर मिले, उससे लाभ उठाने में मत चूको। थोड़े दिनों में ये सब बातें तुम्हारे अभ्यास का अंग बन जाएँगी, और तुम्हारा ज्ञान दिन-पर-दिन बढ़ता जाएगा। तुम बाहर की इतनी बातें जान जाओगे और तुम्हारा विस्तृत ज्ञान इतना बढ़ जायगा कि जिस विषय पर लेखनी उठाओगे, उसका चित्र खींच दोगे। जब हर विषय पर तुम्हें सैकड़ों बातें मालूम होंगी, तब तुम अपनी रचना में सजीवता, स्पष्टता और आकर्षण उत्पन्न कर दोगे। जिसके पास विचार बहुत होते हैं, उसे लिखते समय उनमें चुन-चुन कर अपना निबन्ध रूपी गुलदस्ता सजाने में बड़ी सुविधा होती है। वह अपने ज्ञानो-पवन से छाँट-छाँट कर सुन्दर-से-सुन्दर पुष्पों से उसे मनोहर बना सकता है।

जिन बातों का उल्लेख इस प्रकरण में किया गया है, वह रचना से गहरा सम्बन्ध रखती हैं। आगे के प्रकरणों में उन विषयों पर क्रमशः प्रकाश डाला जाएगा जो रचना के मुख्य अंग हैं।

प्रश्न

(१) रचना का क्या महत्त्व है ?

(२) निबन्ध से क्या समझते हो ? उसके कौन से मुख्य गुण हैं?

(३) सिद्ध करो कि भाषा हमारा और समाज का बन्धन है ?

(४) हिन्दी संस्कृत से उत्पन्न हुई या प्राकृत से ? प्राकृत और संस्कृत का क्या संबन्ध है ?

(५) ब्रजभाषा और अवधी में क्या भेद है ? खड़ी बोली किसे कहते हैं और वह पहले कहाँ बोली जाती थी ?

(६) प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी का संबन्ध बताओ ? उसके चार-चार उदाहरण दो ।

(७) तत्सम, तद्भव व देशज शब्द किसे कहते हैं ? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दो ।

(८) वर्तमान हिन्दी में फ़ारसी व अँग्रेज़ी के शब्द कैसे मिले ? उदाहरण देकर समझाओ ।

(९) हिन्दी साहित्य का इतिहास कितने भागों में बाँटा जा सकता है ? तुलसी व सूर किस काल के महाकवि थे ? बिहारी व देव किस समय पैदा हुए, और किस प्रकार के कवि थे ?

(१०) सिद्ध करो कि उर्दू, हिन्दुस्तानी और हिन्दी एक ही भाषा के भिन्न-भिन्न रूप हैं ।

(११) नागरी-लिपि किसे कहते हैं ?

(१२) व्याकरण जानने से क्या लाभ हैं ?

(१३) हिन्दी और संस्कृत के व्याकरण में क्या भेद है ?

(१४) विस्तृत ज्ञान किसे कहते हैं ? उसके प्राप्त करने के क्या क्या साधन हैं ?

(१५) सिद्ध करो कि परिभ्रमण और स्वाध्याय एक लेखक को उसकी रचना में बड़ी सहायता दे सकते हैं ?

पहला प्रकरण

शब्द

शब्द रचना के प्राण हैं। शब्दों से वाक्य बनते हैं, और वाक्यों को लिख कर अथवा बोल कर हम अपने भाव प्रकट करते हैं। शब्दों में बड़ा बल है। उन में ज़रा हेर-फेर कर देने से भाषा में ज़मीन-आसमान का भेद पड़ जाता है। अनेक ऐसे शब्द आते हैं जिनके अर्थों में हम साधारणतया कोई भेद नहीं समझते, किन्तु वास्तव में उनमें भेद होता है, जिसको जान कर उनका ठीक-ठीक प्रयोग करने से रचना में ओज उत्पन्न हो जाता है और यथार्थता आ जाती है। वास्तव में शब्द लेखक के सम्मोहन अस्त्र हैं, जिनके द्वारा वह किसी का भी मनमोहित कर सकता है। शब्दों के उपयुक्त चुनाव पर ही रचना की सुन्दरता निर्भर है।

शब्द सार्थक और निरर्थक दोनों ही प्रकार के होते हैं। लगभग सारे शब्द जो हम रात-दिन प्रयोग करते हैं सार्थक अर्थात् अर्थ रखने वाले ही होते हैं। कभी-कभी हमारे मुख से निरर्थक शब्द भी निकलते हैं। बाजों से निकलने वाले शब्द सब निरर्थक होते हैं, किन्तु रचना में केवल सार्थक शब्दों से ही काम पड़ता है। उत्पत्ति, व्युत्पत्ति, तथा अर्थ, रूपान्तर और प्रयोग के विचार से शब्दों के अनेक भेद हैं।

उत्पत्ति

हिन्दी भाषा के शब्द-भाण्डार में सारे शब्द कहाँ से आये? उनकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? इस सम्बन्ध में हिन्दी भाषा के इतिहास के साथ उपक्रम में बताया जा चुका है कि हिन्दी का शब्द-कोष पाँच प्रकार के शब्दों से भरा है—(१) तत्सम (२) तद्भव, (३) देशज, (४) अनुकरण, और (५) विदेशी।

(१) *तत्सम* वे शब्द हैं जो संस्कृत से हिन्दी में ज्यों-के-त्यों ले लिये गये हैं; जैसे—अग्नि, वायु, राजा, पिता, संस्कार आदि।

(२) *तद्भव* वे शब्द हैं जो प्राकृत से बिगड़ कर हिन्दी में आये हैं; जैसे—आग, बहिन, हाथ, बाप, बावला आदि।

(३) *देशज* वे शब्द हैं जिनके सम्बन्ध में यह नहीं निश्चय हो सकता कि वे कहाँ से लिये गये हैं, अथवा कैसे बने हैं, जैसे—खिड़की, टट्टू, लोटा, गिलास, पेट, पगड़ी, डोंगी इत्यादि।

(४) *अनुकरण* वे शब्द हैं जो किसी वास्तविक या कल्पित ध्वनि पर बने हैं, जैसे—मिमियाना, भोंकना, हिनहिनाना, खटखटाना, फड़फड़ाना, किलकिलाना, भड़भड़ाना आदि।

(५) *विदेशी* वे शब्द हैं जो संस्कृत या प्राकृत के अतिरिक्त फ़ारसी, अरबी, तुर्की, अँग्रेज़ी, यूनानी आदि भाषाओं से लिये गये हैं, जैसे:—

अरबी से—इम्तिहान, रद्दी, औरत, मुक़द्दमा, अदालत, हाल, हुक्म, ख़बर, असबाब, हिम्मत, हकीम, दफ्तर, ग़ुस्सा, हिसाब, फ़क़ीर, मुख्तार, फ़ुरसत, कसर, मालूम, क़रीब, हिफ़ाज़त, ख्याल आदि।

फ़ारसी से—दूकान, चाकू, चर्ख़ा (चर्ख़ से), चापलूस, दुश्मन, जहान, कमर, आदमी, दोस्त, सौदा, ख़ून, रास्ता, लाल, बराबर, होश, शर्म, बाग़ इत्यादि।

तुर्की से—तोप, लाश, उर्दू, बावर्ची, कुली, तमाशा, क़ाबू, क़ालीन आदि।

अँग्रेज़ी से—लालटेन (लैन्टर्न), बटन, कोट, स्टेशन, मास्टर, प्रेस, फ़ीस, रेल, लम्प, थेटर (थियेटर), कमीशन, इञ्ज, अरदली (आर्डरली), बकस (बाक्स) आदि।

पुर्तगाली भाषा से:—गोदाम, कमरा, नीलाम, मेज़, गिर्जा पादरी आदि।

अभ्यास

(१) शब्दों का रचना में क्या महत्त्व है ?

(२) सार्थक शब्द किसे कहते हैं ?

(३) शब्दों पर कितने प्रकार से विचार किया जा सकता है ?

(४) नीचे लिखे शब्द उत्पत्ति के नाते किस प्रकार के शब्द हैं ? कृष्ण, कोट, बटन, मुख्तार, हाथ, पग, लालटेन, मुँह, हुआ।

व्युत्पत्ति

व्युत्पत्ति से अभिप्राय शब्दों की गठन या बनावट से है। व्युत्पत्ति के विचार से शब्द दो प्रकार के होते हैं। (१) रूढ़, और (२) यौगिक।

(१) रूढ़ उन शब्दों को कहते हैं जो दूसरे शब्दों या उपसर्ग और प्रत्यय के योग से नहीं बने होते हैं। ऐसे शब्दों के खण्ड सार्थक नहीं होते, जैसे—नाक, कान, कुत्ता, गाय, पीला, भोजन, भाई आदि।

(२) यौगिक वे शब्द हैं, जो उपसर्ग, प्रत्यय या दूसरे शब्द मिलाने से बने हैं। ऐसे शब्दों के खण्ड सार्थक होते हैं, अर्थात् उनके खण्ड यदि अलग-अलग किये जाएँ तो उनका प्रथक-प्रथक अर्थ होता है और उनके खण्डार्थ और शब्दार्थ में पूर्ण सम्बन्ध रहता है, जैसे—सज्जन, शीलवान, दूधवाला, गाय-बैल, पाठशाला, विद्यार्थी आदि। इन शब्दों के यदि खण्ड किये

जाएँ तो उनके खण्डों के अलग-अलग भी अर्थ होते हैं; जैसे—सज्जन = सत् (अच्छा) + जन (आदमी), शीलवान् = शील (उत्तम आचरण) + वान (वाला) ।

(३) *योगरूढ़*—अर्थ के अनुसार यौगिक शब्दों का एक भेद योगरूढ़ कहलाता है । उस यौगिक शब्द को जिससे कोई विशेष अर्थ पाया जाए योगरूढ़ कहते हैं; जैसे—लम्बोदर (गणेश जी), गिरधारी (कृष्ण जी), पंकज (कमल), जलद (बादल), रघुकुल-तिलक (रामचन्द्रजी) इत्यादि ।

यौगिक शब्द-रचना—यौगिक शब्द पाँच प्रकार से बनते हैं:—

(१) शब्दों के पूर्व उपसर्ग लगाकर; जैसे—निर्जन, अभाव, अपवाद आदि ।

(२) शब्दों के अन्त में प्रत्यय लगाकर; जैसे—कर्तव्य, बुद्धिमान, लिखावट, राघव आदि ।

(३) दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर; जैसे—चार-पाई, भाई-बहिन, रुपया-पैसा, रात-दिन, गिरवर-धारी, त्रिपुरारी ।

(४) किसी शब्द या उसकी ध्वनि दुहराने से; जैसे—घर-घर, काम-धाम, काट-कूट । ये पुनरुक्त शब्द कहलाते है ।

(५) किसी वास्तविक या कल्पित ध्वनि पर; जैसे—फटाफट, धड़ाधड़, खटखट, चेंचें, ऊँआँ, हींहीं इत्यादि । इनको अनुकरण शब्द कहते हैं ।

उपसर्ग

वे अक्षर या अक्षर समूह जो शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं उप-सर्ग कहलाते हैं । ये शब्दों के पूर्व मिलकर उनका अर्थ बदल देते हैं या उनमें विशेषता उत्पन्न कर देते हैं; जैसे—अपयश, प्रबल, प्रताप, निरीक्षण, अनादर इत्यादि । उपसर्ग लगा कर एकही धातु से अनेकों शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों के बनाये जा सकते हैं; जैसे:—

(१) **हृ** धातु (हार, हारना, ले जाना, चुराना इत्यादि) से प्रहार (आघात), संहार (नाश), आहार (भोजन), विहार (घूमना), प्रत्याहार (हटाना), उपहार (भेंट), प्रतिहार (द्वारपाल), परिहार (त्यागना), अपरिहार (दूर करने के उपाय का अभाव), अपहार (चोरी), व्यवहार (आचरण) ।

(२) **कृ** धातु (करना) से संस्कार (सुधार), अपकार (बुराई), उपकार (भलाई), विकार (परिवर्तन), प्रतिकार (बदला), अधिकार (हक़), प्रकार (ढंग), आकार (रूप), दुष्कर (कठिन), अनुकरण (नक़ल), उपकरण (साधन, सामान) ।

(३) **भू** धातु (होना) से अनुभव (तजुर्बा), पराभव (हार), विभव (ऐश्वर्य्य), उद्भव (जन्म), प्रभाव (असर) ।

(४) **वद्** धातु (बोलना) से विवाद (झगड़ा), प्रतिवाद (जवाब), अनुवाद (उल्था), परिवाद (निन्दा), संवाद (ख़बर), प्रवाद (जनश्रुति, बदनामी), अभिवादन (प्रणाम, नमस्कार आदि) ।

(५) **ई** धातु (देखना) से परीक्षा (जाँच), प्रतीक्षा (राह देखना), अपेक्षा (प्रतीक्षा, बनिस्बत), उपेक्षा (निरादर), इत्यादि ।

संस्कृत उपसर्ग

संस्कृत में कुल बाइस उपसर्ग हैं:—अति, अधि, अनु, अप, अपि, अभि, अव, आ, उत्, उप, दुर, दुस् नि, निर्, प्र, प्रति, परा, परि, सम्, सु, वि ।

(१) **अति से** उत्कर्ष, बहुत आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—अतिकाल, अतिगुप्त आदि ।

(२) **अधि** से प्रधानता का भाव प्रकट होता है; जैसे—अधिकार, अधिराज, अध्यक्ष आदि।

(३) **अनु** से पीछे और सादृश्य आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—अनुचर, अनुगामी, अनुरूप आदि।

(४) **अप** से निरादर व दीनता का भाव प्रकट होता है; जैसे—अपमान, अपकार, अपहरण आदि।

(५) **अपि** से निश्चय का भाव प्रकट होता है; जैसे—अपिहित (ढका हुआ), अपिधान (ढक्कन) आदि।

(६) **अभि** से अधिकता व इच्छा का भाव प्रकट होता है; जैसे—अभिमान, अभिप्राय आदि।

(७) **अव** से अनादर, हीनता आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—अवगुण, अवनति आदि।

(८) **आ** से अल्प, सीमा, खिंचाव, चढ़ाव, ग्रहण आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—आसमुद्र, आकर्षण, आदान, आरोहण आदि।

(९) **उत्** से उच्चता का भाव प्रकट होता है; जैसे—उत्कर्ष, उद्भव आदि।

(१०) **उप** से समीपता, सहायता आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—उपस्थिति, उपकार आदि।

(११-१२) **दुर** या **दुस्** से निन्दा, कठिनता आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे दुर्गुण, दुस्साहस, दुर्गम आदि।

(१३) **नि** से निषेध वा अधिकता आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—निवारण, निषेध, नियोग आदि।

(१४-१५) **निर** या **निस्** से निषेध या अभाव आदि का भाव प्रकट होता है, जैसे निर्भय, निर्जीव, निर्धन आदि ।

(१६) **प्र** से उत्कर्ष का भाव प्रकट होता है जैसे—प्रभा, प्रबल, प्रताप, प्रसिद्ध आदि ।

(१७) **प्रति** से विरोध, समानता, प्रत्येक आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—प्रतिवाद, प्रत्याशा, प्रतिवर्ष आदि ।

(१८) **परा** से विरुद्ध, अनादर, हीनता आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे——पराधीन, पराजय, परास्त आदि ।

(१९) **परि** से अत्यन्त, सब प्रकार से त्याग आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—परिजन, परिहार, परिपूर्ण आदि ।

(२०) **सम** से सहित, उत्तमता आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—संस्कार, संताप आदि ।

(२१) **सु** से भी उत्तमता, सुगमता और श्रेष्ठता आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे—सुजन, सुगम, सुकुल आदि ।

(२२) **वि** से विशेषता, हीनता भिन्नता आदि का भाव प्रकट होता है; जैसे —विशेष, विकार, विलाप, संयोग आदि ।

इस प्रकार इन उपसर्गों से अनेकों संस्कृत शब्दों की सृष्टि हुई है, जो हिन्दी में काम आते हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत के कुछ शब्दांश, अव्यय और विशेषण भी ऐसे हैं जो उपसर्ग का काम देते हैं। जैसे—**कु** से कुपुत्र, कुपात्र आदि; **सह** से सहयोग, सहपाठी आदि **अ** से अभाव, अपवित्र. आदि; **अन्** से अनादि, अनन्त आदि;

अधः से अधःपतन, अधस्तात आदि; **चिर** से चिरकाल, चिरंजीव आदि; **सत** से सज्जन, सद्गुरु आदि।

हिन्दी उपसर्ग

संस्कृत की भाँति हिन्दी ने भी थोड़े से उपसर्गों को अलग जन्म दिया है। यह वस्तुतः संस्कृत उपसर्गों या शब्दों के रूपान्तर हैं। जैसे—क, औ, आदि। **क** से कपूत, **औ** से औगुन, औघट आदि।

संस्कृत के उपसर्गों को हिन्दी के तद्भव और देशज शब्दों में भी जोड़ा जाता है, जैसे—**अ** से अपढ़; **सु** से सुडौल, सुघड़ आदि।

फ़ारसी उपसर्ग

कुछ फ़ारसी के उपसर्ग भी हैं, जिनके बने हुए शब्द अधिकांश उर्दू में प्रयुक्त होते हैं; जैसे—**ला** से लाजवाब, लाचार आदि। **बे** से बेशक, बेशुमार, आदि; **हर** से हर रोज़, हर साल आदि; **दर** से दर असल, दर हक़ीक़त आदि। हिन्दी में भी उनका कभी-कभी प्रयोग किया जाता है।

एक से अधिक उपसर्गों का प्रयोग

कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनमें एक से अधिक दो, तीन या चार उपसर्ग एक साथ आते हैं; जेसे—वि + अव + हार = व्यवहार, सु + वि + अव + स्थित = सुव्यवस्थित।

प्रत्यय

यौगिक शब्द बनाने का दूसरा साधन प्रत्यय है। जैसे उपसर्ग शब्दों के आगे लगाये जाते हैं, वैसे ही प्रत्यय अन्त में लगाये जाते हैं। धातुओं और क्रियाओं के अन्त में प्रत्यय लगा कर जो शब्द बनाये

जाते हैं, उन्हें **कृदन्त** कहते हैं। अन्य किसी शब्द के अन्त में प्रत्यय लगा कर जो शब्द बनाए जाते हैं, **तद्धित** कहलाते हैं। संस्कृत में प्रत्यय बहुत हैं। हिन्दी ने भी अनेकों प्रत्ययों की सृष्टि की है, जिनसे कृदन्त और तद्धित शब्द गढ़े जाते हैं नीचे कृदन्त शब्दों के उदाहरण अलग-अलग दिये जाते हैं, जो संस्कृत तथा हिन्दी प्रत्ययों के योग से बने हैं। इन शब्दों के बनने में क्रियाओं और प्रत्ययों के रूप अनेक प्रकार से बदलते हैं। मूल प्रत्यय कुछ होता है और वह कट-छँट कर कुछ हो जाता है। जैसे—'घञ' प्रत्यय का केवल 'अ', 'लयुट्' का 'अन', 'क्तिन्' का 'ति' रह जाता है।

संस्कृत प्रत्यय के योग से बने हुए कृदन्त शब्दः—

संस्कृत प्रत्यय के योग से बने हुए कृदन्त शब्दः—

सेवा = सेव् धातु + अङ् (आ) प्रत्यय।
शय्या = शी धातु + क्यप् (य) प्रत्यय।
मथुरा = मथ् धातु + उर् + आ प्रत्यय।
मनु = मन् धातु + उ प्रत्यय।
मदन = मदि धातु + ल्युट् (अन) प्रत्यय।
मुग्ध = मुह् धातु + क्त (त) प्रत्यय।
स्थान = स्था धातु + ल्युट् (अन) प्रत्यय।
दृष्ट = दृश् धातु + क्तिन् (ति) प्रत्यय।

हिन्दी प्रत्ययों के योग से बने हुए कृदन्त शब्दः—

मार = मारना धातु + अ प्रत्यय।
गढ़न्त = गढ़ना धातु + अन्त प्रत्यय।
बिकाऊ = बिकना धातु + आऊ प्रत्यय।
चिल्लाहट = चिल्लाना धातु + आहट प्रत्यय।

धमकी = धमकाना धातु + ई प्रत्यय ।
लुटेरा = लूटना धातु + एरा प्रत्यय ।
गवैया = गाना धातु + वैया प्रत्यय ।

संस्कृत प्रत्ययों के योग से बने हुए तद्धित शब्दः—

प्रभुत्व = प्रभु + त्व प्रत्यय ।
प्रभुता = प्रभु + ता प्रत्यय । } भाववाचक संज्ञा

वासुदेव = वसुदेव + अण् (अ) प्रत्यय ।
पुत्र + अञ् (अ) = पौत्र } अपत्यवाचक

बुद्धिमान् = बुद्धि + मतुप (मत्) प्रत्यय ।
तेजस्वी = तेजस् + विन् प्रत्यय । } विशेषण ।

एकदा = एक + दा प्रत्यय ।
कदा = किम् + दा प्रत्यय । } अव्यय

हिन्दी प्रत्ययों से बने हुए तद्धित शब्दः—

ऊँचान = ऊँचा + आन प्रत्यय ।
लम्बान = लम्बा + आन प्रत्यय । } भाववाचक संज्ञा

राजपूताना = राजपूत + आना प्रत्यय ।
तिलंगान = तिलंग + आना } स्थान वाचक संज्ञा

खेलाड़ी = खेल + आड़ी प्रत्यय
अगला = आगे + ला प्रत्यय } विशेषण

कटोरी = कटोरा + ई प्रत्यय
पलंगड़ी = पलंग + ड़ी प्रत्यय } ऊनवाचक संज्ञा

डिबिया = डिब्बा + इया प्रत्यय
चौबाइन = चौबे + आइन प्रत्यय
सिंहनी = सिंह + नी प्रत्यय } स्त्रीलिंग

समास

यौगिक शब्द बनाने का तीसरा साधन समास है। जब दो या दो से अधिक शब्दों का संयोग करके एक शब्द बनाया जाता है तो उसे सामासिक-पद या समास-पद कहते हैं; जैसे—राज और कुमार दो शब्दों का परस्पर सम्बन्ध बताने वाले 'का' कारक चिह्न का लोप करके एक शब्द राजकुमार बना है। इसे समस्त पद कहेंगे। जब दो पदों को मिला कर संस्कृत में समस्त पद बनाया जाता है तो उस में संधि के नियमों का पालन किया जाता है। किन्तु हिन्दी और दूसरी भाषाओं के शब्दों के साथ ऐसा नहीं होता। समासों के मुख्य चार भेद हैं:—अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व और बहुब्रीहि।

(१) **अव्ययीभाव** जिसका पहला पद प्रधान होता है और जो पूरा शब्द अव्यय होता है, उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं; जैसे यथाशक्ति, प्रतिदिन, अनुरूप आदि। इन शब्दों के पूर्व पद (पहला शब्द) यथा, प्रति, अनु इन पदों के प्रधान भाग हैं। इन्हीं का इनमें महत्व है। हाथों-हाथ, एकाएक, मन-ही-मन, घर-घर, बे-खटके, हररोज़; धीरे-धीरे, अनजाने, निधड़क, यथा-स्थान, आजन्म आदि सब अव्ययीभाव समास हैं।

(२) **तत्पुरुष** समास में दूसरा पद या अंश प्रधान होता है, जैसे—गंगा-जल, देश-निकाला, इत्यादि। तत्पुरुष समास के पूर्व पद में कर्त्ता-कारक और सम्बोधन को छोड़कर किसी न किसी कारक के चिह्न का लोप होता है। जिस कारक या विभक्ति के चिह्न का लोप होता है उसी के अनुसार इस समास का नाम होता है; जैसे—स्वर्ग प्राप्त (स्वर्ग को प्राप्त) में

'को' विभक्ति का लोप है। इसलिए यह कर्म या द्वितीया तत्पुरुष कहा जाएगा। इसी प्रकार तुलसीकृत, देशहित, ऋण-मुक्त, विद्यालय, कार्यकुशल में क्रम से तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी तत्पुरुष समास हैं।

उपपद समास—यह तत्पुरुष समास का एक भेद है। जब तत्पुरुष समास का दूसरा पद कृदन्त होता है और ऐसा कृदन्त होता है कि उसका अलग कोई प्रयोग या उपयोग नहीं हो सकता तब उसे उपपद समास कहते हैं; जैसे—चिड़ीमार, मुँहतोड़, ग्रन्थकार, कृतज्ञ आदि।

नञ् तत्पुरुष—अभाव व निषेध के अर्थ में जब किसी शब्द के पूर्व 'अ' या 'अन' या 'न' लगाकर समस्त पद बनाया जाता है तो उसे नञ् तत्पुरुष कहते हैं; जैसे—अनाथ, अनन्त, अनबन, अनजान, नाराज़ आदि।

कर्मधारय—कर्मधारय भी तत्पुरुष का भेद है। जिस तत्पुरुष समास का पहला पद या दोनों पद विशेषण हों अथवा जिसका पहला या दूसरा पद उपमान हो, उसे कर्मधारय समास कहते हैं। इस समास के पदों को अलग-अलग करने में उसके दोनों पदों में एक ही कर्त्ता कारक की विभक्ति आती है; जैसे—पीताम्बर = पीत (वि०) + अम्बर, श्यामसुन्दर = श्याम (वि०) + सुन्दर (वि०) चरण + कमल (उपमान), चन्द्रमुख = चन्द्र (उपमान) + मुख।

द्विगु—यह कर्मधारय का एक भेद है। जिस कर्मधारय का पूर्व पद संख्यावाचक विशेषण होता है उसे द्विगु समास कहते हैं; जैसे—त्रिलोक = त्रि + लोक, त्रिभुवन = त्रि + भुवन।

(३) **द्वन्द्व**—जिस समास पद के सब पद प्रधान होते हैं, उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। इस समास में दो पदों के बीच के संयोजक 'और', 'अथवा', 'या', 'वा' आदि का लोप होता है:—जैसे—हाथी-घोड़ा = हाथी और घोड़ा; पाप-पुण्य = पाप और पुण्य; जात-कुजात; स्वर्ग-नर्क आदि

(४) **बहुब्रीहि**—जिस समस्त पद का कोई पद प्रधान नहीं रहता और जिसके अर्थ उसके पदों से निकलने वाले अर्थ से भिन्न या विशेष होते हैं उसे बहुब्रीहि समास कहते हैं; जैसे—दशानन = दश हैं सिर जिसके अर्थात् रावण, गजानन (श्रीगणेशजी) आदि।

कभी-कभी ऐसे भी समस्त पद सामने आ जाते हैं, जिनमें यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कौन समास है। ऐसी स्थिति में प्रसङ्ग के अनुसार अर्थों पर ध्यान देना चाहिए; जैसे—घनश्याम शब्द के अर्थ हैं (१) काले बादल, (२) कृष्ण। यदि किसी स्थान पर यह पद कृष्ण के अर्थ में प्रयोग किया गया है, तो वह बहुब्रीहि समास है, और यदि काले बादल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तो वह कर्मधारय समास है।

किसी समस्त-पद के पदों या शब्दों को अलग-अलग
विग्रह करके उनके परस्पर सम्बन्ध दिखाने की रीति को उस शब्द का विग्रह करना कहते हैं।

कोई-कोई समस्त-पद ऐसे होते हैं, जिनमें एक से अधिक प्रकार के समास होते हैं। उनमें प्रधान वही माना जाता है जो अन्त में आता है; जैसे:—

(१) सास-श्वसुर-पद-पूजा = (विग्रह) सास और ससुर (द्वन्द्व) के पद (तत्पुरुष) की पूजा (तत्पुरुष)। इसे द्वन्द्व गर्भित **तत्पुरुष** कहेंगे, अर्थात ऐसा तत्पुरुष जिसके गर्भ में अथवा अन्तर्गत द्वन्द्व समास भी है। (२) समाज-सरोज बन-सविता = समाज-सरोज (कर्मधारय) के बन (तत्पुरुष) के सविता (तत्पुरुष) इसे कर्मधारय गर्भित तत्पुरुष कहेंगे।

नीचे कुछ कठिन समासों के विग्रह सहित उदाहरण दिये जाते हैं:—

पद	*विग्रह*	*नाम समास*
पुरुषोत्तम	पुरुषों में उत्तम	तत्पुरुष
गोबर-गणेश	गोबर के गणेश	प० तत्पुरुष
गोबर-गणेश-संहिता—	गोबर-गणेश (व्यक्ति वाचक संज्ञा) की संहिता	प० तत्पुरुष
वज्र-देह	वज्र के समान (उपमान) देह (उपमेय)	कर्मधारय
तुलसीकृत	तुलसीदास की बनाई हुई	तृ० तत्पुरुष
कृतज्ञ	किये हुए को जानने वाला	उपपद
वाचस्पति	विद्या का पति	तत्पुरुष
यावज्जीवन	यावत् (अव्यय) + जीवन	अव्ययीभाव
यथा-स्थान	यथा (अव्यय) + स्थान	अव्ययीभाव
दाल-रोटी	दाल और रोटी	द्वन्द्व
पाप-पुण्य	पाप और पुण्य	द्वन्द्व

नवरात्रि	नव (संख्या वाचक विशेषण) + रात्रि	द्विगु
त्रिदेव	त्रि (संख्यावाचक विशेषण) + देव	द्विगु
दशानन	दश हैं आनन जिसके, अर्थात् (रावण)	बहुब्रीहि
पतझड़	पत्ते हैं झड़ते जिसमें, अर्थात् ऋतु विशेष	बहुब्रीहि
कनफटा	कान हैं फटे जिसके, अर्थात् व्यक्ति विशेष	बहुब्रीहि
अज्ञान	अ (नहीं) + ज्ञान	नञ् तत्पुरुष

द्विरुक्त, पुनरुक्त, सजातीय आदि शब्द

द्विरुक्त, पुनरुक्त, सजातीय आदि शब्द भाषा में ज़ोर पैदा कर देते हैं। इनसे रचना में ओज आ जाता है, और वह मनोहर हो जाती है। जैसे मैं **घर-घर** गया; उसने **मन ही मन** मेरी प्रशंसा की; उसके **मीठे-मीठे** वचन किसे अच्छे नहीं लगते। 'घर-घर', 'मन ही मन', 'मीठे-मीठे' शब्दों को **द्विरुक्त शब्द** कहते हैं। इनमें **अव्ययीभाव समास** है।

नीचे थोड़े से द्विरुक्त-शब्द लिखे जाते हैं:—

दो-दो, बन-बन, सुनते-सुनते, ला-ला कर, चार-चार, तीन-सवा-तीन-घंटे, नये-नये, कानों-कान इत्यादि।

पुनरुक्त

पुनरुक्त, विपरीतार्थ और सजातीय शब्दों में **द्वन्द्व समास** होता है। पुनरुक्त वे शब्द हैं जिनमें एक ही अर्थ का दूसरा शब्द जोड़ कर एक शब्द बनाया जाए; जैसे—जीव-जन्तु, मान-मर्यादा, क्रिया-कर्म, आमोद-प्रमोद, मारपीट, हँसी-खुशी, धन-धान्य, बल-वीर्य्य, श्रद्धा-भक्ति आदि।

विपरीतार्थ

बहुत से ऐसे शब्द भी बनाये जाते हैं, जिनमें एक शब्द के साथ उसके विरुद्ध अर्थ वाला दूसरा शब्द मिलाया जाता है। ऐसे शब्दों को विपरीतार्थ शब्द कहते हैं; जैसे–मैंने **रात-दिन** यत्न किया, उसे **आगे-पीछे** का कोई ध्यान नहीं, तुमने तो **आकाश-पाताल** एक कर दिया आदि। इनमें रात-दिन, आगे-पीछे, आकाश-पाताल ऐसे ही शब्द हैं। नीचे कुछ विपरीतार्थ शब्द दिये जाते हैं:—

शुभ-अशुभ, सार-असार, जीवन-मरण, हार-जीत, कहना-सुनना, हँसना-रोना, उदय-अस्त, उत्कृष्ट-अपकृष्ट, घात-प्रतिघात, आय-व्यय, हर्ष-विषाद, सुख-दुख, हित-अहित, जाग्रत-सुप्त उत्थान-पतन, अनुकूल-विपरीत, हिंसा-अहिंसा, शान्ति-अशान्ति, स्वतन्त्र-परतन्त्र, प्रकाश-अन्धकार आदि।

सजातीय शब्द

सजातीय शब्द भी इसी प्रकार दो शब्दों से बना हुआ शब्द होता है। उसके दोनों शब्दों में बड़ी समानता रहती है। दोनों शब्द लगभग एक ही ढंग के होते हैं। किन्तु दूसरे शब्द का अ॰ पहले शब्द से भिन्न होता है; जैसे—हमें तो भगवान ही **अन्न-वस्त्र** देते हैं; संसार में मैंने क्या **वर-कन्या** देखे ही नहीं? **दूध-दही** खाने वाले के विचार शुद्ध होते हैं, इत्यादि।

यहाँ अन्न-वस्त्र, वर-कन्या, दूध-दही सजातीय शब्द हैं। ऐसे ही कुछ और शब्द दिये जाते हैं—रंग-ढँग, हँसी-खेल, खेल-कूद, हाथ-पाँव इत्यादि।

अभ्यास

(१) रूढ़ और यौगिक शब्दों में क्या भेद है ?

(२) रूढ़ शब्द यौगिक शब्दों से किस प्रकार भिन्न हैं ? उदाहरण देकर समझाओ।

(३) समस्त पद यौगिक शब्द हैं या नहीं ? यौगिक शब्द किस-किस प्रकार से बनाये जाते हैं ?

(४) उपसर्ग और प्रत्यय, तथा कृदन्त और तद्धित में क्या भेद है ? उदाहरणार्थ प्रत्येक के चार-चार शब्द लिखो।

(५) निम्न लिखित शब्दों की व्युत्पत्ति बताओ—कर्तव्य, ग्रामीण, स्थायी, अग्रसर, मिठास, बुढ़ापा, विषैला, पराजय, अवतार, पौराणिक, लौकिक, मधुरता।

(६) नीचे लिखे शब्दों में समास बताओ और विग्रह करो—

अनाथ, पढ़ना-लिखना, आत्मशुद्ध, रातों-रात, चक्र-पाणि, चतुर्भुज चन्द्र-मुखी, पद-च्युत, मुँह-जोर, कमल-नयन, लखपती।

(७) सजातीय व पुनरुक्त शब्दों में क्या भेद है ? चार-चार शब्द उदाहरणार्थ लिखो।

(८) बताओ कि निम्न लिखित शब्दों में कौन से सजातीय हैं। और कौन से पुनरुक्त :—
भाई-बहन, सोते-जागते, बार-बार, क्रिया-कर्म, रात-दिन ?

(९) नीचे लिखे प्रत्येक शब्द के तीन समानार्थक शब्द लिखो:—
आकाश, चन्द्र, सुन्दर, कमल, वृक्ष।

(१०) आदि, मरन, राग, सजीव, सुलभ और आदान के विपरीतार्थक शब्द लिखो।

———

अर्थ

उत्पत्ति और व्युत्पत्ति के अतिरिक्त शब्दों पर अर्थ की दृष्टि से भी विचार करना चाहिए। इस दृष्टि से शब्द तीन प्रकार के होते हैं (१) **वाचक** (२) **लाक्षणिक और** (३) **व्यञ्जक**। इनसे निकलने वाले अर्थ क्रम से (१) वाच्यार्थ (२) लक्ष्यार्थ और (३) व्यङ्गार्थ कहे जाते हैं। इन शब्दों की जिन शक्तियों से यह अर्थ निकलते हैं उन्हें (१) अभिधा (२) लक्षणा और (३) व्यञ्जना कहते हैं।

वाचक

वाचक वे शब्द हैं, और अभिधा उनकी वह शक्ति है जिससे वही सीधे-सादे अर्थ निकलते हैं जिनके लिए वह प्रयोग किये गये हैं; जैसे—यह **आदमी सज्जन** है। मैं इस **राजकुमार** से बात करूँगा। **दशानन** की मृत्यु केवल सीता के कारण हुई। इन वाक्यों में आदमी, सज्जन, राजकुमार और दशानन शब्दों के एक निश्चित अर्थ हैं। जिन अर्थों के बोध कराने के लिए ये शब्द कहे गये हैं, ठीक उन्हीं अर्थों का बोध इन शब्दों द्वारा होता है। रूढ़, यौगिक और योगरूढ़ शब्द, जिनका इसके व्युत्पत्ति प्रकरण में वर्णन किया जा चुका है, सब वाचक शब्द हैं।

लाक्षणिक

जिन शब्दों से उनके सीधे-साधे अर्थ या कोई निश्चित अर्थ न लिये जाकर उनसे सम्बन्ध रखने वाला कोई भिन्न अर्थ समझा जाए उन्हें लाक्षणिक शब्द कहते हैं। उनकी अर्थ बतलाने वाली शक्ति को लक्षणा कहते हैं, जैसे—**बंगाल** एक बुद्धिमान देश है; मेरी

तलवार ने शत्रुओं को भगा दिया; यह आदमी पूरा **राक्षस** है। यहाँ बंगाल से 'बंगाल के निवासी', तलवार से 'तलवार का प्रहार', राक्षस से 'दुष्ट' अर्थ समझना चाहिए। इन शब्दों से उनके सीधे-साधे अर्थ न लेकर उनके सम्बन्ध से दूसरे अर्थ लगाये गये हैं। यही लक्षणा है।

इसी प्रकार "कौने तजी न कुलगली ह्वै मुरली सुर लीन" यहाँ पर कुलगली से मुख्य अर्थ अर्थात् वाच्यार्थ है—कुल का रास्ता। किन्तु कुल में गलियाँ नहीं होतीं, कुल कोई नगर नहीं, गाँव नहीं। अस्तु यहाँ लक्षणा से गली शब्द के अथ रीति लगाये जाएँगे। इसलिए इस का अर्थ यह हुआ कि कृष्ण की मुर्ली की ध्वनि सुन कर किस कुल-बधू ने अपने कुल की रीति का उल्लंघन नहीं किया।

व्यञ्जक

यह शब्द 'वि और अञ्जना' से मिल कर बना है। 'वि' के अर्थ हैं 'विशेप', अर्थात् व्यञ्जना एक विशेष अञ्जन है जिससे शब्द के छिपे हुए वह अर्थ दिखाई देते हैं, जो न तो उस शब्द से सीधे-साधे ढंग पर समझे जा सकते हैं और न उस शब्द से सम्बन्ध लगा कर ही कोई अर्थ निकाला जा सकता है, जैसे—अजी, **दस** बज गये; जापान से **रूस** हार गया; समुद्र को **बानर** फाँद गये; तुम बड़े मोटे हो, इस चारपाई पर **मत बैठो**। इन वाक्यों में 'दस', 'रूस', 'बानर', और 'मत बैठो' शब्दों में व्यङ्गार्थ छिपा हुआ है। जब कोई कहता है कि दस बज गये हैं, तो 'दस' शब्द बताता है कि तुम स्कूल जल्द जाओ, अथवा गाड़ी छूट जायगी, या ऐसी ही कोई और बात। इसी प्रकार 'जापान से रूस हार गया' वाक्य में रूस शब्द में व्यङ्ग है कि रूस इतना

बड़ा था और जापान इतना छोटा था, फिर भी रूस हार गया। 'समुद्र बानर लाँघ गये' यहाँ बानर शब्द में व्यङ्ग है कि इतने बड़े समुद्र को बानर जो साधारण पशु थे, लाँघ गये। चौथे वाक्य में 'मत बैठो' शब्द में यह अर्थ छिपा है कि यदि बैठोगे तो चारपाई टूट जायगी।

"चित्रकूट गिरि है वही, जहँ सिय लक्ष्मण साथ।
पास सरित मन्दाकिनी, वास कियो रघुनाथ॥"

इस दोहे से व्यङ्गार्थ निकलता है कि चित्रकूट अत्यन्त पवित्र स्थान है। यह बात इस वर्णन में स्पष्ट नहीं कही गई। और ही बातें बता कर कवि आशा करता है कि सुनने वाले इसकी छिपी हुई ध्वनि को सुन लेंगे कि चित्रकूट एक परम पवित्र स्थान है, क्योंकि वहीं गंगा के पावन तट पर भगवान् राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ निवास किया था।

समानार्थक या पर्यायवाची शब्द

वाचक शब्दों के अर्थ, समान अर्थ रखने वाले दूसरे शब्दों से बताये जा सकते हैं; जैसे—यह **मनुष्य** बड़ा **दुष्ट** है। यहाँ 'मनुष्य' और 'दुष्ट' शब्दों का अर्थ 'आदमी' और 'शरीर' शब्दों से समझा जा सकता है। इसी को दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, यह **आदमी** बड़ा **शरीर** है। इसी प्रकार 'किन्तु' के स्थान पर लेकिन, मगर, परन्तु आदि भी आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग किये जा सकते हैं। ऐसे शब्दों को समानार्थक शब्द कहा जाता है।

समानार्थक शब्द जानने से रचना में बड़ी सहायता मिलती है। ऐसे शब्दों को पर्यायवाची शब्द भी कहते हैं। एक ही शब्द बार-बार लिखने से वह कानों को बुरा लगता है। उस समय

पर्यायवाची शब्द जानने से रचना को इस दोष से बचाया जा सकता है, और रचना को सुन्दर बनाया जा सकता है।

नीचे कुछ शब्दों के *पर्यायवाची* शब्द दिये जाते हैं:—

आंख—लोचन, दृग, नयन, अक्षि, नेत्र, चक्षु, (चख) अम्बक, दीदा इत्यादि।

आकाश—व्योम, गगन, नभ, अम्बर, शून्य, अन्तरिक्ष, खं, दिव, पुष्कर, अनन्त, वियत इत्यादि।

कमल—अब्ज, अम्भोज, अम्बुज, अम्भोरुह, इन्दीवर, उत्पल (महोत्पल), कुवलय, कञ्ज, कोकनद, पुण्डरीक, पुष्कर, पङ्कज, पङ्करुह, पाथोरुह, तामरस, राजीव, वारिज, शतपत्र, सारग, सरोज, सरसीरुह, सहस्रपत्र, सरसिज इत्यादि।

कामदेव—अनङ्ग, अतनु, आत्मज, आत्मभू, कुसुम बाण, कुशमेश, काम, कबंध, पञ्चशर, पुष्प चाप, मदन, मनोभव, मार, मीनकेतु, रतिपति, वारिजकेतु, स्मर, विश्वकेतु, मन्मथ, मथन, मनोज इत्यादि।

घोड़ा—वाजी, बाह, तुरङ्ग, हय, सैन्धव, तुरग, घोटक, अश्व, गन्धर्व, रविसुत इत्यादि।

चन्द्रमा—सुधांशु, निशाकर, विधु, शशि, औषधेश, सोम, मयङ्क, शशाङ्क, इन्दु, राकेश, सुधाधर इत्यादि।

जल—अम्बु, पय, अमृत, घनरस, मेघपुष्प, सर्वमुख, कबंध सलिल, रस, तोय, उदक, पाथ, शम्बर, आप, सारङ्ग, वारि, इत्यादि।

तालाब—सरोवर, सर, सरवर, ह्रद, तड़ाग, पद्माकर, पुष्कर इत्यादि।

तीर—शर, विशिख, आशग, शिलीमख, बाण, नाराच, इषु इत्यादि।

फूल—कुसुम, मञ्जरी, फलपिता, पुष्प, प्रसून, लतान्त, सुमन इत्यादि।

बादल—धाराधर, जलधर, जलद, जीमूत, जगजीवन, तड़ित्पति इत्यादि।

बिजली—विद्युत, चपला, चंचला, सौदामिनी, घनदाम, तड़ित, छटा इत्यादि।

सूर्य—रवि, पतंग, दिनेश, ग्रहपति, भानु, प्रभाकर, आदित्य, सहस्रांशु, भास्कर, मार्तण्ड, दिनकर इत्यादि।

पर्यायवाची शब्दों का सूक्ष्म अर्थ-भेद

बहुत से पर्यायवाची शब्दों में परस्पर अर्थों का भेद होता है। कहीं यह भेद बहुत होता है और कहीं बहुत सूक्ष्म। इन भेदों का ज्ञान प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन यह है कि अच्छे-अच्छे लेखकों की रचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाए और उनके प्रयोगों पर ध्यान दिया जाए। ऐसे कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं:—

(१) अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, हृदय

अन्तःकरण—वह भीतरी इन्द्रिय जो संकल्प विकल्प, निश्चय, स्मरण तथा सुख-दुःखादि का अनुभव करती है; जैसे—मेरा *अन्तःकरण* कहता है कि मैं बीमार होऊँगा।

मन—अन्तःकरण का कार्य भेद से एक विभाग है जिससे संकल्प-विकल्प होता है; जैसे—मेरा *मन* चाहता है कि कलकत्ता जाऊँ।

बुद्धि—जिसका कार्य विवेक या निश्चय करना है; जैसे—मेरी *बुद्धि* कहती है कि यह काम ठीक नहीं।

चित्त—जिससे बातों का स्मरण होता है; जैसे—मेरे *चित्त* से यह बात बार-बार उतर जाती है।

हृदय—(१) छाती के भीतर बाईं ओर एक माँस कोष जिसमें धड़कन होती है।

(२) अन्तःकरण का वह रागात्मक अंग जिसमें प्रेम, हर्ष, शोक, करुणा, क्रोधादि मनोविकार उत्पन्न होते हैं; जैसे—उसका *हृदय* पत्थर है।

(२) अवस्था, वय

अवस्था—उम्र; जैसे—मेरी अब तेरह वर्ष की *अवस्था* है

वय—पूर्ण हुई अवस्था; जैसे—श्री गोखले जी की *वय* क्या थी ?

(३) अलौकिक, अस्वाभाविक

अलौकिक—जो लोक अथवा संसार में दुर्लभ हो; जैसे—वह *अलौकिक* विद्वान् हैं।

अस्वाभाविक—जो सृष्टि-नियम या प्रकृति के विरुद्ध हो; जैसे—मा के लिए पुत्र की हत्या करना *अस्वाभाविक* है।

(४) अस्त्र, शस्त्र

अस्त्र—वह हथियार, जो फेंक कर मारा जाए, या जिस से कोई चीज़ फेंक कर मारी जाए; जैसे—बन्दूक़, बम और बाण आदि उपयोगी *अस्त्र* हैं।

शस्त्र—वह हथियार, जिसे हाथ में लिए हुए प्रहार किया जाए; जैसे—तलवार एक उत्तम *शस्त्र* है।

(५) अज्ञान, अनभिज्ञ, मूर्ख

अज्ञान—स्वाभाविक बुद्धि या ज्ञान रहित; जैसे—बालक *अज्ञान* होते हैं।

अनभिज्ञ—किसी बात से अपरिचित या अनजान; सेजै—वह काव्य विषय से सर्वथा *अनभिज्ञ* है।

मूर्ख—जिसे ज्ञान कराने पर भी ज्ञान न हो; जैसे—यह तेरी समझ में न आयेगा, तू पूरा *मूर्ख* है।

(६) अभिवादन, प्रणाम, नमस्कार

अभिवादन—अपना परिचय देकर प्रणाम करना; जैसे—हनुमानजी ने वन में रामचन्द्र को देखते ही *अभिवादन* किया (अर्थात् अपना परिचय देकर प्रणाम किया)।

प्रणाम—अपने से बड़ों के प्रति; जैसे—माता-पिता को नित्य प्रातः-सायं *प्रणाम* करो।

नमस्कार—बड़ों के और बराबर वालों के प्रति; जैसे—विश्वामित्र ने वशिष्ठ को *नमस्कार* किया।

(७) अभिमान, अहंकार, गौरव

अभिमान—अपने को किसी बात में दूसरे से बड़ा समझना और दूसरे को छोटा; जैसे—अपने धन का उसे बड़ा *अभिमान* है।

अहंकार—अपने को उचित से बहुत अधिक समझना; जैसे—उसने केवल इंट्रेंस पास किया है, किन्तु उसे अपनी अँग्रेज़ी की योग्यता का *अहंकार* है।

गौरव—अपने बड़प्पन का यथार्थ ज्ञान; जैसे—राजपूत अपना *गौरव* भूल गये।

(८) आधि, व्याधि

आधि—मानसिक कष्ट; जैसे—चिन्ता एक *आधि* है।

व्याधि—शारीरिक कष्ट; जैसे—ज्वर एक *व्याधि* है।

(६) ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा

ईर्ष्या—दूसरे की उन्नति देखकर अकारण जलना; जैसे—दुर्जन सज्जनों को सम्पन्न देख कर *ईर्ष्या* करते हैं।

द्वेष—किसी हेतु से दूसरे से बैर मानना या घृणा करना; जैसे—फ्रान्सिस हेस्टिंज से *द्वेष* रखता था।

स्पर्धा—दूसरे से बढ़कर उन्नति करने की इच्छा; जैसे—मैं गामा पहलवान से अधिक बलवान होने की *स्पर्धा* नहीं कर सकता।

(१०) उत्साह, साहस

उत्साह—वह प्रसन्नता जो किसी आने वाले सुख को सोच कर होती है; उमङ्ग; जैसे—उसे पास होने पर इनाम दो, इससे उसका *उत्साह* बढ़ेगा।

साहस—वह मानसिक शक्ति का गुण, जिस के द्वारा मनुष्य यथेष्ट बल के अभाव में भी बड़े-से-बड़ा काम कर बैठता

है, या दृढ़ता-पूर्वक विपत्तियों का सामना करता है; जैसे—राणा प्रताप ने *साहस* पूर्वक अकबर का सामना किया।

(११) उद्योग और उद्यम

उद्योग—प्रयत्न या काम में लग जाने की अवस्था; जैसे—मैं *उद्योग* कर रहा हूँ कि मेरा उद्यम सफल हो जाए।

उद्यम—काम में लगे रहने की अवस्था, धंधा; जैसे—आजकल क्या *उद्यम* कर रहे हो ?

(१२) उपकरण, उपादान

उपकरण—वह सामग्री जिसकी सहायता से काम पूरा हो; जैसे—चाक, सूत, और दण्ड घड़ा बनाने के *उपकरण* हैं।

उपादान—वह पदार्थ जिससे कोई वस्तु बने; जैसे—मट्टी घड़े का *उपादान* है।

(१३) कृपा, दया, करुणा, सहानुभूति

कृपा—बिना किसी प्रतिकार की आशा से दूसरे की भलाई करने की इच्छा; जैसे—आज आप मेरे यहाँ आए, बड़ी *कृपा* की।

दया (करुणा)—मन का वह दुःख-पूर्ण वेग जो दूसरे के कष्ट को देख कर उत्पन्न होता है, और उस कष्ट को दूर करने की प्रेरणा करता है; जैसे—भगवान् को द्रौपदी की टेर सुन कर *दया* आ गई।

सहानुभूति—किसी को दुखी देख कर दुखी होना; जैसे—सुना आपकी नौकरी छूट गई, मुझे आप से बड़ी *सहानुभूति* है।

(१४) दम्भ, पाखण्ड

दम्भ—महत्त्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करने के लिए झूठा आडम्बर; जैसे—वह पढ़ा लिखा तो जैसा-तैसा है, किन्तु अपना *दम्भ* फैलाये है।

पाखण्ड—वह भक्ति और उपासना जो बिना निष्ठा के केवल दूसरे के दिखाने के लिए की जाए; जैसे—आजकल के साधु *पाखण्डी* होते हैं।

(१५) दुःख, शोक, शोच, क्षोभ, खेद, विषाद

दुःख—ऐसी अवस्था जिससे छुटकारा पाने की मनुष्य में स्वाभाविक इच्छा हो। दुःख मन का विषय है; जैसे—मुझे दरिद्रता का बड़ा *दुःख* है।

शोक—इष्ट के नाश अथवा अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न मनोविकार अथवा प्रिय के वियोग या उसकी पीड़ा पर या अन्य तत्सम्बन्धी किसी दुःखदायी घटना से उत्पन्न दुःख; जैसे—मुझे सोहन के मरने का *शोक* है।

शोच—वह दुःख जिसमें आगे की चिन्ता भी हो; जैसे—मुझे *शोच* है कि भारत की दशा कैसे सुधरेगी।

क्षोभ—चाही हुई वस्तु न मिलने पर क्षोभ होता है; जैसे—मुझे उस जगह नौकरी न मिलने का *क्षोभ* है।

खेद—निराशा, असमर्थता या साधारण बुद्धि के कारण मामूली दुःख का भाव खेद कहलाता है; जैसे—मुझे *खेद* है कि आप से नहीं मिल सका।

विषाद—अत्यन्त दुःख की अवस्था में किं-कर्त्तव्य विमूढ़ कर देने वाला दुःख विषाद कहलाता है; जैसे गोखले के परलोक वास से देश को बड़ा *विषाद* हुआ।

(१६) पुत्र, बालक

पुत्र—आत्मज; *जैसे राम दशरथ के पुत्र* थे।

बालक—कोई लड़का; जैसे—*यह बालक* किसका पुत्र है?

(१७) प्रमाद, भ्रम

प्रमाद—जान बूझ कर असावधानी से भूल; जैसे—उसने *प्रमाद* में यह काम किया।

भ्रम—मिथ्या ज्ञान; जैसे—संसार में धन को ही सार समझना लोगों का *भ्रम* है।

(१८) प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, स्नेह, प्रणय

प्रेम—किसी के साथ स्वाभाविक अनुराग; जैसे माता अपने पुत्र से *प्रेम* करती है।

श्रद्धा—किसी बड़े या पूज्य के प्रति भक्तिपूर्वक विश्वास के साथ उच्च या पूज्य भाव; जैसे—भगवान् बुद्ध में उनके भक्तों की बड़ी *श्रद्धा* थी।

भक्ति—किसी पूज्य व्यक्ति के प्रति पूजा के भाव के साथ अनुराग; जैसे—हमारी भगवान कृष्ण में बड़ी *भक्ति* है।

स्नेह—अपने से छोटे के प्रति प्रेम; जैसे—अध्यापकों को अच्छे विद्यार्थियों से बड़ा *स्नेह* होता है।

प्रणय—स्त्री-पुरुष का परस्पर प्रेम; जैसे सावित्री और सत्यवान का *प्रणय* सराहनीय था।

(१९) लोभ, लालसा

लोभ—दूसरे के पदार्थ लेने की कामना; जैसे—वह बड़ा *लोभी* है।

लालसा—किसी पदार्थ को प्राप्त करने की बहुत अधिक अभिलाषा; जैसे—एक बार मोहन को देखने की *लालसा* है।

(२०) श्रम, परिश्रम, आयास

श्रम—शरीर से मेहनत करना; जैसे—तुमने आज कुर्सियाँ झाड़ने में क्यों *श्रम* किया ?

परिश्रम—विशेष श्रम; जैसे—तुम्हारा यह *परिश्रम* सफल होगा।

आयास—मन लगा कर *श्रम* करना; जैसे—परीक्षा में सफलता केवल *आयास* से हो सकती है।

(२१) शुश्रूषा, सेवा

शुश्रूषा—दुखी या रोगी की परिचर्य्या; जैसे—उसने मेरी बीमारी में बड़ी *शुश्रूषा* की।

सेवा—बड़ों की परिचर्य्या; जैसे—अपने गुरु की *सेवा* करना हमारा परम धर्म है।

अनेक वाच्यार्थ-वादी वाचक शब्द

ऐसे भी वाचक शब्द हैं, जिन में एक-एक शब्द के अनेक वाच्यार्थ होते हैं। वे किस स्थान पर किन अर्थों में प्रयोग किये गये हैं, इस का ज्ञान केवल प्रसङ्ग के अनुसार हो सकता है। जैसे—१—'अर्थ', इस शब्द के तीन अर्थ हैं--(१) तात्पर्य, (२) धन, (३) प्रयोजन। तीन स्थानों पर यह तीन भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जा सकता है। प्रयोग--(१) 'सत्यमेव जयते' के *अर्थ* (तात्पर्य) हैं, 'सत्य की जय होती है।' (२) युवावस्था में *अर्थ* (धन) संचय करना चाहिए। (३) आप ने सहायता देने का वचन दिया था, *तदर्थ* (उस प्रयोजन से) आया हूँ।

२--'*कनक*'—इस शब्द के दो अर्थ हैं—(१) सोना (२) धतूरा।

प्रयोग—'कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
यह खाये बौरात है, वह पाये बौराय॥

अर्थात् सोने में धतूरे से सौगुना अधिक नशा होता है। इस (धतूरे) के खाने से आदमी पागल होता है किन्तु उस (सोने) के पाने ही से आदमी पागल हो जाता है।

इसी प्रकार के अन्य शब्द ये हैं:—

पुष्कर—जल, आकाश, कमल, तालाब।
आत्मज—पुत्र, कामदेव।

कबन्ध—जल, कामदेव, सिर कट जाने पर युद्धस्थल में लड़ने वाला व्यक्ति।

गन्धर्व—मृग, घोड़ा, देवताओं का एक भेद, प्रेत, विधवा का दूसरा पति।

छटा—शोभा, दीप्ति, बिजली।
पतङ्ग—कीट, काग़ज़ की पतङ्ग, सूर्य।
शशाङ्क—चन्द्रमा, मोर।
सारङ्ग—सूर्य, सिंह, मोर, घोड़ा।
सावित्री—यमुना नदी, कश्यप ऋषि की पत्नी, आँवला।
हिरण्य—सोना, ज्योति, अमृत।
ह्रद—सरोवर, ध्वनि, नाद।
हेम—सोना, घोड़ा।

'श्रुति सम-भिन्न-वाच्यार्थ वादी' शब्द

कुछ ऐसे भी शब्द हैं, जिनके उच्चारण में बड़ी समानता है, किन्तु उन के अर्थों में बड़ा भेद होता है। ऐसे शब्दों को "श्रुति सम-भिन्न वाच्यार्थवादी" शब्द कहा जा सकता है।

नीचे ऐसे ही कुछ शब्द अर्थ सहित दिये जाते हैं।

(१) अंश (हिस्सा), अंस (कंधा)
(२) अनभिज्ञ (अनजान); अभिज्ञ (जानने वाला)
(३) अपनीत (निकाला हुआ), उपनीत (उपस्थित)
(४) अपेक्षा (प्रतीक्षा करना), उपेक्षा (तुच्छ जानना)
(५) अपयोग (अपव्यवहार), उपयोग (व्यवहार)
(६) कुल (वंश), कूल (किनारा)
(७) चिर (दीर्घ), चीर (वस्त्र)
(८) दारा (स्त्री), द्वारा (हेतु)

(६) द्विप (हाथी), द्वीप (टापू)
(१०) नीड़ (घोंसला), नीर (जल)
(११) पाणि (हाथ), पानी (जल)
(१२) परुष (कठोर),पुरुष (मर्द)
(१३) प्रसाद (अनुग्रह), प्रासाद (महल)
(१४) प्रवाद (बातचीत), परिवाद (निन्दा)
(१५) प्रहार (मारना), परिहार (त्यागना)
(१६) बसन (वस्त्र), व्यसन (किसी विषय के प्रति विशेष रुचि)
(१७) बिना (बग़ैर), बीणा (बाजा)
(१८) भुवन (जगत), भवन (गृह)
(१९) मनोज (कामदेव), मनोज्ञ (मनोहर)
(२०) शम (शान्ति), सम (बराबर)
(२१) शंकर (शिव), संकर (मिला हुआ, जारज)
(२२) लक्ष (लाख), लक्ष्य (निशाना)
(२३) सुत (पुत्र), सूत (सारथि)
(२४) परिणाम (फल या नतीजा), परिमाण (मिक़दार)
(२५) ह्रद (सरोवर), हृद (हृदय)

अभ्यास

१—अर्थ की दृष्टि से शब्द कितने प्रकार के होते हैं ? उनका अर्थ बताने वाली शक्तियों को और उनके अर्थों को क्या कहते हैं ?

२—नीचे लिखे वाक्यों में जो शब्द मोटे टाइप में छपे हैं उनका क्या अर्थ है ।

देखो, उधर धुँआ उठता है। एक लोटा जल लाओ। किसके बत्तीस दाँत हैं, जो तुमसे लड़े । यह आदमी तो पूरा कंस है। अब शाम हो गई।

३—समानार्थक या पर्य्याय-वाची शब्द किसे कहते हैं ? नीचे लिखे शब्दों के तीन-तीन पर्य्याय लिखोः—

चन्द्र, कमल, सूर्य, कृष्ण, स्त्री, धन, पाठशाला-गृह ।

४—नीचे लिखे शब्दों का सूक्ष्म अर्थ-भेद बताओ और वाक्यों में प्रयोग करो:—

ईर्ष्या द्वेष, अस्त्र-शस्त्र, मन-चित्त, प्रेम-स्नेह, श्रम-परिश्रम ।

५—नीचे लिखे शब्दों के जो भिन्न-भिन्न अर्थ तुम जानते हो लिखो—

नाग, विधि, सारंग, कनक, हरि, पत्र ।

६—कोई चार श्रुति-सम-भिन्न-वाच्यार्थवाची शब्द लिखो, उनके अर्थ बताओ, तथा वाक्यों में उनका प्रयोग करो ।

रूपान्तर और प्रयोग

रूपान्तर

शब्दों के अर्थ बदलने के लिए या कोई विशेष अर्थ उत्पन्न करने के लिए शब्द के रूपों में जो हेर-फेर होता है, उसे रूपान्तर कहते हैं। रूपान्तर की दृष्टि से शब्दों के दो भेद हैं—(१) विकारी, (२) अविकारी ।

विकारी—विकारी वे शब्द हैं, जिनके रूप में लिङ्ग, वचन, कारक आदि के परिवर्त्तन के साथ कोई विकार उत्पन्न किया जा सकता है; जैसे—बच्चा—बच्चे; वह—उसने; अच्छा—अच्छे; गया—गये आदि

अविकारी—अविकारी वे शब्द हैं, जिनके रूप में कभी कोई परिवर्त्तन नहीं होता; जैसे—आज, अब, जल्दी आदि ।

प्रयोग

प्रयोग की दृष्टि से विकारी और अविकारी शब्द चार-चार प्रकार के होते हैं। (१) संज्ञा, (२) सर्वनाम, (३) विशेषण, और (४) क्रिया विकारी शब्द हैं; तथा (१) क्रिया-विशेषण (२) सम्बन्ध-सूचक (३) समुच्चय-बोधक, (४) विस्मयादि-बोधक अविकारी शब्द हैं। अविकारी शब्दों को *अव्यय* भी कहते हैं।

प्रयोग के अनुसार कभी-कभी एक शब्द जो संज्ञा है विशेषण हो जाता है और जो शब्द विशेषण है वह संज्ञा हो जाता है। नीचे कुछ ऐसे प्रयोगों के उदाहरण दिये जाते हैं:—

कृष्ण—संज्ञा—*कृष्ण* ने कंस को मारा।

विशेषण—अब तू *कृष्ण* मुख कर जा।

राम—संज्ञा— *राम* ने रावण का वध किया।

अव्यय—*राम-राम*, ऐसा मत कहो।

कोई—सर्वनाम—*कोई* जाय, मुझे क्या ?

विशेषण—तुम *कोई* बड़े बहादुर हो ?

क्रिया विशेषण—यहाँ *कोई* बीस आदमी मरे थे।

यह—सर्वनाम— *यह*, यहाँ कैसे ?

विशेषण—*यह* आदमी कैसा विद्वान है।

क्रिया विशेषण-देखो वह *यह* गया।

बुरा—विशेषण—तुम *बुरे* आदमी से मत बोलो।

संज्ञा—*बुरों* की बात मत करो।

गया—क्रिया—वह कल घर *गया*।

संज्ञा—*'गया'* क्यों कहते हो, वह यहीं है।

हँसना—क्रिया—विद्यार्थी *हँसते* हैं।

संज्ञा—पढ़ते समय *हँसना* बुरी बात है।
विशेष—*हँसनेवाले* लड़के पीटे गये।
क्रिया विशेषण—*हँस-हँस* कर पेट फूल गया।
और—अव्यय—राम *और* लक्ष्मण बन को गये।
विशेषण—*और* आदमी बुलाओ।

अभ्यास

१—विकारी और अविकारी शब्दों में क्या भेद है ?
२—'क्रिया-विशेषण' तथा 'क्रिया' विकारी हैं या अविकारी ?
३—मोहन, आप, सुन्दर, वचन, मन-ही-मन—ये शब्द-भेद के अनुसार कैसे शब्द हैं ? इनमें कौन विकारी हैं और कौन अविकारी ?
४—'अच्छा' का संज्ञा विशेषण के समान, 'लिखना' का विशेषण, क्रिया और संज्ञा के समान, तथा 'और' का अव्यय और विशेषण के समान प्रयोग करो।

शुद्धाशुद्ध शब्द

शुद्धाशुद्ध शब्द

हिन्दी भाषा में शुद्ध लिखने का प्रश्न इतना कठिन नहीं है जितना और भाषाओं में है। थोड़े पढ़े-लिखे मनुष्य भी अधिकांश शुद्ध ही लिखते हैं, किन्तु कुछ ऐसे शब्द हैं जो बहुधा लोग अशुद्ध लिखा करते हैं। ऐसे कुछ शब्दों के प्रचलित अशुद्ध और साथ में शुद्ध रूप नीचे दिये जाते हैं।

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
अस्मर्थ	असमर्थ
अस्वस्थ्य	अस्वस्थ
आधीन या अधीनस्थ	अधीन
आरोग्यता	आरोग्य
आवश्यकीय	आवश्यक
इत्ता	इच्छा
उन्नतशील	उन्नतिशील
उपयोगता	उपयोगिता
ऐक्यता	ऐक्य, एकता
क्रिपा	कृपा
कृतघ्नी	कृतघ्न
ग्राह्य, योग्य	ग्राह्य, ग्रहण योग्य
गृहण	ग्रहण
जग बन्धु	जगद्बन्धु
जागृत	जाग्रत
दुष्टताई	दुष्ट
द्वन्द	द्वन्द्व
द्वारिका	द्वारका
धीर्य, धैर्यता	धैर्य
निर्धनी	निर्धन
निरपराधी	निरपराध
निरोग या निरोगी	नीरोग
निःस्वार्थी	निस्स्वार्थ या निःस्वार्थ
परवर्तन	परिवर्तन

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
पहिला	पहला
पत्ती शावक	पत्तिशावक
पारितोषिक	पारितोषक
पिता-भक्ति	पितृ-भक्ति
पुरष्कार	पुरस्कार
पूज्यास्पद	पूज्यास्पद; पूज्य
प्रक्रति	प्रकृति
प्रचिलित	प्रचलित
प्रथक	पृथक
पृथ्वी, पृथवी	पृथिवी या पृथ्वी
बहुब्रीह	बहुव्रीहि
बिपरीत	विपरीत
बिशारद	विशारद
वुद्धिवान	बुद्धिमान
वृज	व्रज
भाग्यमान	भाग्यवान
भाष्कर	भास्कर
मनहर	मनोहर
मनोकष्ट	मन:कष्ट
मनोर्थ	मनोरथ
मान्य नीय	मान्य:माननीय
यौवनावस्था	यौवन; युवावस्था
वास्तविक	वास्तव में
बेद	वेद
सदोपदेश	सदुपदेश

सन्मान	सम्मान
सन्मुख	सम्मुख
सम्बन्धनीय	सम्बन्धी
स्मर्ण	स्मरण
स्मसान	स्मशान
सामत्व या साम्यता	साम्य
सामिग्री	सामग्री
संसारिक	सांसारिक
सम्वत्	संवत्
स्त्रि	स्त्री
स्त्रीयों	स्त्रियों
शशीभूपण	शशिभूपण
श्रोत	स्रोत
हुवा	हुआ
सूचनाऐं	सूचनाएँ
मुर्ली	मुरली

इस प्रकार की बहुत अशुद्धियों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ हैं, जो साधारणतया विद्यार्थी किया करते हैं। इस सम्बन्ध में नीचे कुछ नियम दिये जाते हैं जिनका पालन करना चाहिए।

१—प्रत्येक समस्त पद के बीच में योजक का चिह्न (-) लगाना चाहिए; जैसे—रात-दिन, राम-लक्ष्मण, घर-घर, रघु-कुल-मणि। इनमें कुछ शब्द ऐसे हैं जो एक में मिला कर भी लिखे जाते हैं और ऐसी दशा में योजक का चिह्न नहीं लगाया जाता; जैसे—आजकल, रातदिन इत्यादि।

२—एक ही शब्द यदि एक स्थान पर दो बार आये, तो उसे अलग-अलग दो बार लिखना चाहिए। बहुधा लोग भूल में एक बार लिखकर उसके पीछे "२" का अङ्क लिख देते हैं; जैसे—मैं एक २ आदमी से अलग २ बातें करूँगा। इस को पढ़ने वाले इस प्रकार भी पढ़ सकते हैं—मैं एक दो आदमी से अलग दो बातें करूँगा। चूँकि इसमें संख्याओं से भ्रम उत्पन्न हो सकता है, इसलिए उचित यह है कि शब्द अलग-अलग लिखे जाएँ; जैसे—मैं एक-एक आदमी से अलग-अलग बातें करूँगा। ऐसे शब्दों को 'योजक' से जोड़ देना चाहिए।

३—बहुधा विद्यार्थी 'ए' के स्थान पर 'ऐ' का प्रयोग करते हैं; जैसे—बैल के स्थान पर बेल, एक के स्थान पर ऐक, बातें के स्थान पर बातैं।

४—बहुधा विद्यार्थी 'व' के स्थान पर 'ब' और 'ब' के स्थान पर 'व' का प्रयोग बड़ी असावधानी-पूर्वक करते हैं। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि संस्कृत में 'ब' वाले शब्द थोड़े हैं और 'व' वाले अधिक हैं। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं दिया जा सकता। पढ़ते-लिखते समय थोड़ा ध्यान रखने से और अपना उच्चारण शुद्ध रखने से यह भूल सुधारी जा सकती है। 'बल', 'बिम्ब', 'बहिष्कार', बीभत्स' आदि में 'ब' है, और 'वन्हि', 'विशारद', 'वनिता', 'वेद' विद्या' आदि में 'व' है।

५—कुछ ऐसे भी शब्द हैं कि जिनके रूपों का निर्णय बड़ा कठिन है। उनके सम्बन्ध में हिन्दी के विद्वानों में परस्पर बड़ा मत-भेद है; जैसे—हुआ, हुवा; हुई, हुयी; हुए, हुये; खाओ, खावो; खाइये, खाइए; चाहिए, चाहिये; खाएगा, खायेगा;

खायगा, खावेगा; संख्याएँ, संख्यायें; लिये, लिए; मुनियों, मुनिओं आदि।

इनमें इस बात का निर्णय करना कि कौन सा रूप बिल्कुल शुद्ध है आसान काम नहीं। फिर भी एक न एक निश्चित नियम का पालन करना आवश्यक है। कुछ विद्वानों का कहना है कि वे शब्द जिनके अन्त में केवल स्वर लगाने से काम चल सके, उनके अन्त में व्यञ्जन के साथ उसी स्वर को लगाने की आवश्यकता नहीं है। उनकी युक्ति यह है कि एक मनुष्य जो अपने पैरों से चल सकता है, उसका वैशाखी लगा कर चलना अनुचित मालूम होता है; जैसे—'गयी' और 'गई' में जब 'ई' लगाना दोनों में आवश्यक है, तो केवल 'ई' लगा कर क्यों न काम चलाया जाए। इस मत के मानने में 'य' के साथ 'ई' लगाना व्यर्थ की क्रिया है। इसलिए केवल 'ई' लगा कर 'गई' को बिना सहारे चलने दिया जाए। यह एक मत हुआ।

दूसरी ओर कुछ लोग 'गया' से 'गयी' और 'हुआ' से 'हुई' लिखा जाना पसन्द करते हैं। उनका कहना है कि जिन शब्दों के एक बचन या पुल्लिङ्ग के अन्त में स्वर आता है, उन का रूप बदलने में अन्त में स्वर लाना चाहिए, जैसे—'हुआ' से 'हुई' और जिन शब्दों के एक वचन या पुल्लिङ्ग के अन्त में व्यञ्जनयुक्त स्वर आता है, उन का रूप बदलने में अन्त में उसी व्यञ्जन को लेकर स्वर बदलना चाहिए, जैसे—'गया' से 'गयी'।

इस प्रकार कुछ लोग गया से 'गई' और कुछ लोग 'गयी' लिखना पसन्द करते हैं। कुछ शब्दों में दोनों ही नियम एक से हैं। इस लिए उनके रूपों में कोई मतभेद नहीं हो सकता, जैसे—हुई, हुए, खाओ आदि। दूसरे शब्दों के सम्बन्ध में एक

नियम का पालन पूरे तौर पर करना चाहिए, कहीं पर किसी ढंग से और कहीं पर किसी ढंग से लिखना ठीक नहीं। ऊपर जो शब्द लिखे गये हैं उनमें 'चाहिये' को 'चाहिए' खाइये को खाइए, 'खायेगा' को 'खाएगा', संख्यायें को संख्याएँ मातावों को माताओं लिखना अधिक उचित होगा। 'लिए' के दो रूप हैं; एक कारक चिह्न; जैसे; राम के लिए, दूसरे 'लेना' क्रिया का रूपान्तर। इसलिए दोनों में भेद बनाए रखने के लिए अच्छा होगा कि लिए और लिये दोनों ही रूप स्थिर रक्खे जाएँ। जहाँ वह लेना क्रिया का भूत काल में रूपान्तर है, वहाँ 'लिये' और जहाँ कारक का चिह्न है वहाँ 'लिए' लिखना उचित होगा; जैसे— मैं ने तुम्हारे लिए (कारक का चिह्न) आज फल नहीं लिये, (भूतकालिक क्रिया), इस लिए (अव्यय) फल लाओ। बहुत से विद्वान् 'इसलिये' और 'इसलिए' दोनों ही प्रकार लिखते हैं, परन्तु एक रूप स्थिर कर लेना अच्छा है।

'मुनियों' और 'मुनिओं' में 'मुनियों' ही लिखना चाहिए; जैसे—'ऋषि' से 'ऋषियों', 'घोड़ी' से 'घोड़ियों'।

(६) कारक चिह्नों के लगाने के सम्बन्ध में भी कुछ मत-भेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि वे चूंकि स्वयं स्वतंत्र एक प्रकार के अव्यय हैं, इसलिए उन्हें अलग लगाना चाहिए; जैसे—राम को, उस ने आदि। परन्तु कुछ विद्वानों का कहना है कि संस्कृति-विभक्तियों की तरह उनको शब्दों से मिलाकर लिखना चाहिए; जैसे राम को उसने आदि।

इस सम्बन्ध में अधिकांश लोगों का मत यह है कि कारक-चिह्न सर्वनाम शब्दों से तो भले ही मिला कर लिखे जाएँ

किन्तु अन्य शब्दों से मिलाना अनावश्यक है; जैसे—राम को, उसने आदि।

(७) चन्द्रबिन्दु (ँ), अनुस्वार (ं) और अनुनासिक वर्णों (ङ्, ञ, ण, न्, म्) के सम्बन्ध में नियम सरल है। जहाँ खींच कर बोला जाए, वहाँ अनुस्वार या अनुनासिक वर्ण तथा जहाँ हल्का बोला जाए, वहाँ चन्द्र बिन्दु लगाना चाहिए; जैसे—हंस, कंस, दण्ड आदि; तथा हँसना, पाँव, जाएँ, गेहूँ, नदियाँ आदि।

अनुस्वार और अनुनासिक वर्ण बहुधा एक ही प्रकार लगाये जाते हैं; जैसे—गंगा और गङ्गा, चिंता और चिन्ता आदि। इस में भी एक नियम यह पालन किया जा सकता है कि अनुनासिक वर्ण के परे यदि य, र, ल, व, श, ष, स, ह, में से कोई वर्ण आए तो अनुस्वार का प्रयोग किया जाए; जैसे—हंस, कंस, वंश आदि; और जिन अनुनासिक वर्णों के परे इनके अतिरिक्त अन्य किसी वर्ग का वर्ण आए तो उसी वर्ग के अनुनासिक वर्ण का प्रयोग किया जाए; जैसे—पङ्खा, चञ्चल, पन्थ, चम्पा आदि।

(८) 'सकता' तथा 'आवश्यकता' आदि में भी बहुधा विद्यार्थी भूल करते हैं। वे उन्हें सक्ता तथा आवश्यक्ता लिखते हैं।

(९) 'ऋ' का प्रयोग केवल संस्कृत शब्दों में होना चाहिए। अन्य शब्दों में 'रि' का ही प्रयोग होना चाहिए; जैसे—संस्कृत शब्द—कृषि, वृष्टि, वृहत् होने चाहिएँ और अन्य शब्द-ब्रिटिश क्रिकिट आदि होने चाहिएँ।

(१०) दोहरे भाव वाचक शब्द नहीं बनाने चाहिएँ। असंस्कृत शब्द; जैसे—दुष्टता से दुष्टताई, सज्जनता से सज्जनताई, शुद्धताई आदि।

(११) पूर्वकालिक क्रियाओं को कुछ लोग भूल से दो भागों में विभक्त करके लिखते हैं; जैसे—जा कर, हँस कर इत्यादि। इन्हें मिलाकर ही लिखना चाहिए; जैसे—खाकर, हँसकर, जाकर इत्यादि।

(१२) क्रियाओं में 'गया है', 'जाता था' आदि अलग-अलग लिखना चाहिए, जैसे—गया है, जाता था आदि।

अभ्यास

१—नीचे लिखे वाक्यों में अशुद्ध शब्दों के शुद्ध रूप लिखो:—

क—भगवान शिव ने अपने त्रितीय नेत्र से कामदेव को भस्म किया।

ख—कृष्ण का अवतार कंस को मार कर पुण्य की ब्रिद्धि करने के लिये हुआ था।

ग—जब से भारत में वृटिश शासन स्थापित हुआ तभी से रेल और तार जारी हुये।

२—नीचे लिखे हुए शब्दों का शुद्ध रूप लिखो:—

अस्नान, स्मर्ण, स्पताल, अस्मर्थ, शुद्धताई, सचाईपन, वास्तविक में, हंसना, परम्परा, ऐकादशी।

३—नीचे लिखे शब्दों में कौन शुद्ध हैं और कौन अशुद्ध, कारण सहित उत्तर दो:—

परम्परा, घरघर, रातदिन, चंगुल, आई, हुयी, खावो।

दूसरा प्रकरण

वाक्य

वाक्य ऐसे शब्दों का समूह है जिनसे पूरा भाव प्रकट हो। वाक्य घड़ी के समान हैं। शब्द उसके भिन्न-भिन्न पुर्जे हैं। जिस प्रकार पुर्जे ढंग से रख देने से घड़ी तैयार हो जाती है और उससे स्वतः एक ध्वनि निकलने लगती है। उसी प्रकार शब्दों को क्रम से रख देने से वाक्य बन जाता है और उससे पूरी भाव रूपी ध्वनि निकलने लगती है। जिस प्रकार पुर्जे घड़ी के प्राण हैं, उसी प्रकार शब्द भी वाक्य के आधार हैं। किन्तु जिस प्रकार केवल पुर्जे से ही घड़ी का काम नहीं निकल सकता, उसी प्रकार केवल शब्दों से ही भावों के आदान-प्रदान का काम नहीं लिया जा सकता। अस्तु, वाक्य ही भाषा के वे साधन हैं जिनसे हम एक दूसरे को समझ सकते हैं। वाक्यों पर बहुत कुछ निर्भर है। वाक्यों की सुन्दर गठन और उनकी सरलता ही भाषा को सुन्दर बना देती है। जो दूकानदार अपनी चीज़ों को सुव्यस्थित रूप से सजा कर रखना नहीं जानता, वह बहुत सामग्री होने पर भी सफलता-पूर्वक व्यापार नहीं कर सकता। इसी प्रकार शब्दों का प्रचुर कोष मस्तिष्क में होने पर भी उनसे अच्छे वाक्यों की सृष्टि का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

वाक्य-पृथक्करण

वाक्यों के भेद, उनके भिन्न-भिन्न अङ्ग, उनका परस्पर सम्बन्ध आदि का ज्ञान होना रचना सीखने के लिए अनिवार्य है।

उद्देश्य व विधेय

एक वाक्य से पूरे भाव प्रकट होते हैं। उनसे कोई न कोई बात जानी जाती है और वह बात किसी न किसी के सम्बन्ध में कही जाती है। इस विचार से वाक्य के दो अङ्ग होते हैं—(१) उद्देश्य और (२) विधेय।

उद्देश्य

विधेय

जिस वस्तु के सम्बन्ध में वाक्य में विधान किया जाता है उसे सूचित करने वाले शब्द को उद्देश्य कहते हैं। और उद्देश्य के सम्बन्ध में विधान करने वाले शब्दों को विधेय कहते हैं। जैसे—ठंडे देश के रहने वाले मोटे कपड़े पहनते हैं।

इस वाक्य में "ठंडे देश के रहने वाले" उद्देश्य, और "मोटे कपड़े पहनते हैं" विधेय है।

समापिका क्रिया

उद्देश्य और विधेय दोनों प्रत्येक वाक्य में अवश्य पाये जाते हैं, चाहे उस वाक्य में केवल दो ही शब्द हों; जैसे—राम गया। इसमें 'राम', 'गया' क्रिया का कर्त्ता है, और उद्देश्य है; और गया मुख्य क्रिया है और इसलिए विधेय है। मुख्य क्रिया को *समापिका क्रिया* भी कहते हैं। कर्त्ता से सम्बन्ध रखने वाले शब्द या शब्दांश उद्देश्य या विधेय में जोड़ कर उद्देश्य या विधेय बढ़ाये जा सकते हैं।

विस्तार

इन्हें क्रम से उद्देश्य तथा विधेय का विस्तार कहते हैं। जैसे—'डी० ए० वी० कालिज में पढ़ने वाला त्रिभुवन कल प्रातःकाल सवेरे की गाड़ी से कानपुर गया।' इस वाक्य में 'डी० ए० वी०

कालिज में पढ़ने वाला' उद्देश्य और 'कल प्रातःकाल सवेरे की गाड़ी से कानपुर' विधेय का विस्तार है।

उद्देश्य के दो भाग होते हैं—(१) मुख्य उद्देश्य, और (२) उद्देश्य का विस्तार।

इसी प्रकार विधेय के तीन भाग होते हैं—(१) विधेय या समापिका क्रिया, (२) कर्म और (३) पूरक।

रचना की दृष्टि से वाक्यों के भेद गठन या रचना की दृष्टि से वाक्य के तीन भेद हैं—(१) साधारण (२) मिश्र और (३) संयुक्त।

(१) साधारण

जिस वाक्य में एक ही उद्देश्य और विधेय हो उसे *साधारण वाक्य* कहते हैं। ऐसे वाक्य को सरल वाक्य भी कहते हैं; जैसे—मैंने सिंह मारा।

(२) मिश्र वाक्य

मिश्र वाक्य उसे कहते हैं जिसमें एक साधारण वाक्य के अतिरिक्त उसके आश्रित अन्य उपवाक्य भी हों; जैसे—मैं कहता हूँ कि वह न जाएगा। इसमें 'मैं कहता हूँ' साधारण वाक्य है, और 'वह न जाएगा' साधारण वाक्य का आश्रित उपवाक्य है। मिश्र वाक्य में साधारण वाक्य को मुख्य उपवाक्य कहते हैं।

(३) संयुक्त वाक्य

संयुक्त वाक्य उसे कहते हैं जिसमें एक से अधिक साधारण वाक्य हों। साथ में अनेक आश्रित उपवाक्य भी हो सकते हैं; जैसे—(१) मुसलमानों के प्रार्थना स्थान को मसजिद कहते हैं, किन्तु ईसाइयों का प्रार्थना-स्थान गिरजाघर कहलाता है। इसमें दो साधारण वाक्य हैं। (२) मैंने जब उसे देखा, मैं डर गया और अपने प्राण ले कर भागा। इस वाक्य में

(१) मैं डर गया—यह साधारण वाक्य है।

(२) मैं प्राण लेकर भागा—यह दूसरा सम वाक्य है।

(३) जब मैंने उसे देखा—यह दोनों का आश्रित उपवाक्य है।

संयुक्त वाक्यों में साधारण वाक्यों को *स्वतन्त्र उपवाक्य* कहा जाता है।

वाक्य प्रथक्करण

वाक्य के भिन्न-भिन्न अंगों को अलग करने और उनके परस्पर सम्बन्ध बताने की क्रिया को '*वाक्य-पृथक्करण*' कहते हैं।

उपवाक्य

संयुक्त व मिश्र वाक्यों के अन्तर्गत जो वाक्य होते हैं, जिनकी अलग-अलग समापिका क्रियाएँ होती हैं, उन्हें *उपवाक्य* कहते हैं। उपवाक्य दो प्रकार के होते हैं:—

(१) स्वतन्त्र, और (२) आश्रित

स्वतन्त्र उपवाक्य उसे कहते हैं जो बिना दूसरे उपवाक्य की सहायता के अपने अर्थों को स्वतन्त्र रूप से प्रकट कर सके; जैसे—"मोहन खेलता है" और "मदन पढ़ता है"। ये दोनों वाक्य एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक अपने पूरे अर्थों का स्वतन्त्र रीति से ज्ञान कराता है।

आश्रित उपवाक्य किसी अन्य उपवाक्य के अधीन होता है। वह बिना उसकी सहायता के स्वतन्त्र रीति से अर्थ नहीं दे सकता जैसे—'मोहन जिसने मुझे डूबने से बचाया था, आज विलायत गया'। इसमें दो उपवाक्य हैं:—

(१) मोहन आज विलायत गया।

(२) जिसने मुझे डूबने से बचाया था।

इसमें प्रथम उपवाक्य के अर्थ दूसरे उपवाक्य को बिना साथ लिए पूरे-पूरे निकलते हैं। किन्तु दूसरा उपवाक्य पहले उपवाक्य पर अवलम्बित है और स्वतन्त्र रीति से अर्थ नहीं दे सकता।

आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) संज्ञा उपवाक्य।
(२) विशेषण-उपवाक्य।
(३) क्रिया-विशेषण-उपवाक्य।

संज्ञा उपवाक्य—संज्ञा का कार्य करता है, जैसे—'मैंने कहा था कि वह मूर्ख है'। इसमें 'वह मूर्ख है' संज्ञा उपवाक्य है और 'कहा था' क्रिया का कर्म है।

विशेषण उपवाक्य—विशेषण का कार्य करता है, जैसे—श्री मदनलाल जी जैन एम० ए०, जो गवर्नमेंट हाई स्कूल मथुरा में अध्यापक हैं, इतिहास व भूगोल के अच्छे विद्वान् हैं। इसमें 'जो गवर्नमेंट हाई स्कूल, मथुरा में अध्यापक हैं' विशेषण उपवाक्य है, जो 'श्री मदनलाल जी जैन, एम० ए०' की विशेषता बताता है।

क्रिया-विशेषण-उपवाक्य, क्रिया के समय, स्थान, कारण, ढंग आदि की व्याख्या करता है, जैसे—'जब यमुना में बाढ़ आई थी, तभी बाबू रामनाथ मुख्तार का घर गिरा था।' इसमें 'जब यमुना में बाढ़ आई थी' क्रिया-विशेषण-उपवाक्य है जो गिरने के समय का निर्देश करता है।

साधारण वाक्य का पृथक्करण

साधारण वाक्य का पृथक्करण नीचे दी हुई रीति पर कोष्टक बना कर किया जाता है:—

वाक्य	उद्देश्य		विधेय				
	मुख्य उद्देश्य	उद्देश्य का विस्तार	समापिका क्रिया	कर्म		विधेय पूरक	विधेय-विस्तारक
				मुख्य कर्म	कर्म का विशेषण		
(१) राम के भाई, मोहन ने मुझे एक किताब दी।	मोहन ने	राम के भाई	दी	(१) मुझे (२) किताब	एक	...	...
(२) रास्ते में एक भयानक सिंह है।	सिंह	एक भयानक	है				रास्ते में
(३) तुम निरे पशु हो।	तुम		हो			निरे पशु	

मिश्र व संयुक्त वाक्यों का पृथक्करण

इसी प्रकार कोष्ठक बना कर मिश्र और संयुक्त वाक्यों का पृथक्करण किया जा सकता है। किन्तु ऐसी अवस्था में तीन कोष्ठक उद्देश्य के पूर्व और बनाने चाहिएँ—(१) उपवाक्य, (२) भेद, (३) संयोजक । उपवाक्य के कोष्ठक में उपवाक्य अलग-अलग लिखे जाते हैं। भेद के कोष्ठक में यह लिखा जाता है कि उपवाक्य स्वतंत्र है या आश्रित, संज्ञा है या विशेषण। संयोजक के कोष्ठक में उपवाक्यों को जोड़ने वाले शब्द—और, कि जो, किन्तु इत्यादि लिखे जाते हैं।

संक्षिप्त पृथक्करण

संयुक्त और मिश्र वाक्यों के पृथक्करण की दूसरी संक्षिप्त रीति यह है कि उस में उपवाक्यों को अलग-अलग करके उन का परस्पर सम्बन्ध बता दिया जाता है। इसे *संक्षिप्त पृथक्करण* कहा जा सकता है; जैसे— (१) रमेश, जिसने उस वृद्धा को कल रुपये दिये थे, आज एक राहगीर से लड़ते हुए पकड़ा गया। इस वाक्य का संक्षिप्त पृथक्करण इस प्रकार होगा:—

(अ) रमेश आज एक राहगीर से लड़ते हुए पकड़ा गया—मुख्य उपवाक्य।

(इ) जिसने उस वृद्धा को कल रुपये दिये थे—आश्रित विशेषण उपवाक्य 'अ' का, और रमेश का विशेषण।

यह पूरा वाक्य मिश्र है।

(२) मनोरमा, सुखदा से छोटी और बुद्धिमती है।

(अ) मनोरमा सुखदा से छोटी है—मुख्य उपवाक्य।

(इ) (मनोरमा सुखदा से) बुद्धिमती है—मुख्य उपवाक्य।
यह पूरा संयुक्त वाक्य है।

संयुक्त को *यौगिक* या *संसृष्ट* और मिश्र को *जटिल* या *संकीर्ण* वाक्य भी कहते हैं।

वाक्यांश किसी वाक्य के दो या दो से अधिक शब्द, जो परस्पर सम्बन्ध रखते हैं, और जिन से पूरा भाव व्यक्त न होकर केवल भाव का अंश जाना जाता है, *वाक्यांश* कहलाते हैं, जैसे—शान्ति और सरला घोर विवाद कर रही हैं। इस में 'शान्ति और सरला' तथा 'घोर विवाद' आदि वाक्यांश हैं।

अभ्यास

१—संयुक्त और मिश्र वाक्य में क्या भेद है!

२—वाक्य पृथक्करण किसे कहते हैं? इस से क्या लाभ है?

३—वाक्यांश और उपवाक्य में क्या अन्तर है?

४—आश्रित उपवाक्य के कितने भेद हैं?

५—निम्न लिखित वाक्यों का वाक्य-पृथक्करण करोः—

(१) विशालकाय भीम, जिस ने राक्षसों का संहार किया था, द्रौपदी चीर-हरण के समय कुछ न कर सका।

(२) तुम और रामप्रसाद बाज़ार जाओ और देखो कि अमर कहाँ घूमता है।

(३) जो जाति बहुत दिनों तक पराधीन रहती है उसके अनेकों सद्गुण नष्ट हो जाते हैं और फिर उसे स्वाधीन होने में लोहे के चने चबाने पड़ते हैं।

(४.) जब मैं उधर निकला, मैंने देखा कि मौलाना अकड़े बैठे हैं और सैकड़ों भक्तों की भीड़ लगी है, जिन्हें वह बार-बार यही समझा रहे हैं कि भाई यह संसार असार है।

(५) जाओ।

आकांक्षा, योग्यता और क्रम
तथा
वाक्यों के आठों भेद

प्रत्येक वाक्य में आकांक्षा, योग्यता और क्रम, ये तीनों बातें होती हैं। उन के न होने से वाक्य के कोई अर्थ नहीं हो सकते।

आकांक्षा

एक वाक्य में प्रत्येक शब्द के बाद दूसरे किसी न किसी शब्द की योजना अवश्य होती है और अर्थ समझने के लिए एक-एक शब्द सुन कर उसके आगे आने वाले शब्द के सुनने की स्वाभाविक इच्छा होती है। इसी को *आकांक्षा* कहते हैं; जैसे—'आप मेरे यहाँ क्यों आये?' इस वाक्य में केवल 'आप', 'आप मेरे', 'आप मेरे यहाँ' आदि शब्दों को सुन कर उन के आगे के शब्दों को अन्त तक सुनने की स्वाभाविक इच्छा होती है और बिना इस के अर्थ भी पूरे समझ में नहीं आ सकते; यही आकांक्षा है।

योग्यता

प्रत्येक वाक्य में यह आवश्यक है कि शब्द इस प्रकार चुन कर रक्खे जाएँ कि वे अर्थों में विरोध न उत्पन्न करें। इसी को वाक्य की *योग्यता* कहते हैं; जैसे—

"मैं पानी पर चल सकता हूँ।' इस वाक्य में 'चलना' शब्द 'पानी पर' के साथ अयोग्य है, अथवा 'पानी पर' शब्द 'चल सकने' के साथ अयोग्य है। इस से अर्थों में विरोध उत्पन्न होता है, अर्थात् पानी पर चलना असम्भव है। इसी वाक्य में यदि चलने के स्थान में तैरना कर दिया जाए या पानी के स्थान में 'भूमि' कर दिया जाय, तो अर्थों का विरोध मिट जायगा और वाक्य में योग्यता उत्पन्न हो जाएगी। इसी प्रकार '*गत वर्ष* उसकी परीक्षा *होगी; आगामी वर्ष* वह फ़ेल *होगया*' आदि वाक्य हैं।

वाक्य में यथा-स्थान शब्दों की योजना को *क्रम* कहते हैं।

क्रम यदि किसी वाक्य का क्रम ठीक न हो अथवा बदल दिया जाए तो उस के अर्थ में विप्लव हो जाएगा, अर्थ कुछ के कुछ निकलने लगेंगे, और ऐसा भी हो सकता है कि कोई अर्थ ही समझ में न आए; जैसे—'मोहन पानी पर तैरने लगा।'—इस वाक्य में आकांक्षा को पूरा करने वाले सारे शब्द हैं और उनमें ठीक अर्थ बताने की पूरी योग्यता है और इनका क्रम भी ठीक है, किन्तु इन्हीं का यदि क्रम बदल दिया जाए तो अर्थ बदल भी सकते हैं और अर्थ नष्ट भी हो सकते है; जैसे—'(१) पानी तैरने लगा मोहन पर', या '(२) पर लगा मोहन पानी तैरने'। इनमें पहले वाक्य में क्रम बदल जाने पर अर्थ बदल गये। लोग समझेंगे कि पानी मोहन पर तैरने लगा। किन्तु दूसरे में क्रम बदल जाने से अर्थ नष्ट हो गया, अब इस वाक्य के कोई भी अर्थ नहीं निकल सकते। अस्तु, वाक्य में क्रम का ठीक होना परम आवश्यक है।

अर्थ भेद के अनुसार वाक्यों के भेद इस प्रकार क्रम आदि के योग से बने हुए वाक्य अर्थभेद के अनुसार आठ प्रकार के होते हैं:—

(१) **विधानार्थक या विधि वाक्य,** जिसमें किसी बात का होना पाया जाए; जैसे—वह सोता है।

(२) **निषेधार्थक वाक्य,** जिससे किसी बात का अभाव या निषेध-प्रकट हो; जैसे—मैं खाना न खाऊँगा; मोहन बिना कौन घूमने जाए।

(३) **आज्ञार्थक,** जिससे विनती या उपदेश सूचित होता हो; जैसे—सुबह चले जाओ; चलो; खाना खाओ; गुरू को प्रणाम करो; या गुरू को प्रणाम करना चाहिए।

(४) **प्रश्न बोधक,** जिससे प्रश्न का बोध हो; जैसे—तुम कहाँ से आते हो?

(५) **विस्मयादि बोधक,** जिससे आश्चर्य अथवा सन्देह का भाव प्रकट हो; जैसे—अरे वह सेठ बन गया; हा रमेश मर गया; अहाहा! यह क्या हुआ?

(६) **इच्छा बोधक,** जिससे इच्छा या आशीष सूचित हो; जैसे—सुखी रहो।

(७) **सन्देह सूचक,** जिससे संदेह या संभावना का भाव प्रकट हो; जैसे—कदाचित् वह आज मेरे घर पर आए।

(८) **संकेतार्थक**—जिससे संकेत या शर्त पाई जाती हो; जैसे—वह न आता तो मैं न जाता।

अभ्यास

१—आकांक्षा किसे कहते हैं?

२—यदि वाक्य में क्रम न हो, तो क्या कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं? उदाहरण देकर समझाओ।

३—विधि वाक्य किसे कहते हैं?

४—नीचे लिखे हुए वाक्य अर्थ की दृष्टि से किस प्रकार के वाक्य हैं? इन्हें क्रम से निषेधार्थक, आज्ञार्थक, प्रश्न बोधक, और संकेतार्थक में बदल दो।

१—वह भला आदमी है। २—क्या तुम अभी पाठशाला जाओगे? ३—तुम कलकत्ते जाते तो अच्छा था। ४—उसके आने पर फ़ौरन साथ जाओ। ५—क्या वह अच्छा हो गया?

वाच्य परिवर्तन

वाच्य

सकर्मक क्रिया वाले वाक्यों के दो रूप होते हैं—(१) कर्तृ-प्रधान, (२) कर्मप्रधान। इन्हें कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य भी कहते हैं। इसी प्रकार अकर्मक क्रिया वाले वाक्यों के भी दो रूप होते हैं (१) कर्तृवाच्य (२) कर्मवाच्य। अर्थात् कर्मवाच्य अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं में होता है, कर्मवाच्य केवल सकर्मक क्रियाओं में और भाववाच्य केवल अकर्मक क्रियाओं में।

(१) कर्तृवाच्य

जिस वाक्य में वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता होता है, उसे कर्तृवाच्य कहते हैं; जैसे—यादव ने मदन से कुछ कहा। इस वाक्य में यादव कर्ता ही वाक्य का उद्देश्य है।

(२) कर्मवाच्य

जिस वाक्य में कर्ता के स्थान पर कर्म वाक्य का उद्देश्य होता है, उसे कर्म-वाच्य कहते हैं; जैसे—स्काउट द्वारा समाचार भेजा गया।

भाव वाच्य

अकर्मक क्रिया वाले वाक्य में क्रिया के रूप से जब यह जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता या कर्म नहीं है, तो उस रूप को भाव वाच्य कहते हैं; जैसे—मैं नहीं सोता हूँ' (कर्तृ-वाच्य); 'मुझ से नहीं सोया जाता' (भाववाच्य)।

एक वाक्य का वाच्य बदल देने से बहुधा अर्थों में भी भेद हो जाता है; जैसे—मोहन खाता नहीं है (कर्तृवाच्य); मोहन से नहीं खाया जाता (भाव वाच्य)।

वाच्य परिवर्त्तन से अर्थ-भेद

इन दोनों वाक्यों के अर्थों में स्पष्ट भेद है। पहले वाक्य में इच्छापूर्वक कार्य और दूसरे में विवशता झलकती है। भाववाच्य साधारणतया इसी प्रकार विवशता प्रकट करता है।

कुछ वाक्य ऐसे भी होते हैं कि जिनका वाच्य-परिवर्तन भद्दा मालूम होता है; जैसे—'महेश ने पुस्तक पढ़ी' (कर्तृवाच्य); महेश से पुस्तक पढ़ी गई (कर्मवाच्य)

इन दोनों वाक्यों में दूसरा भद्दा मालूम होता है।

अभ्यास

१—नीचे लिखे वाक्यों का वाच्य-परिवर्तन करो, और बताओ कि तुमने किस वाच्य को किस वाच्य में परिवर्तित किया।

१—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सन् १६२१ में विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना बोलपुर में की।

२—तुम से किसी के गिरने पर कैसे हँसा जाता है?

३—महर्षि स्वामी दयानन्द द्वारा देश का बड़ा उपकार हुआ।

४—मिट्टी से घड़ा बनता है।

२—नीचे लिखे वाक्यों के अर्थों में कोई भेद है या नहीं? यदि है, तो क्या?

राम हँसता है। राम से हँसा नहीं जाता। रोटी कौन खाता है? रोटी किससे खाई जाती है? हम काम पड़ने पर, दौड़े जाते हैं। हम से काम पड़ने पर दौड़ा नहीं जाता।

३—वाक्य-परिवर्तन के दो ऐसे उदाहरण दो जो भद्दे मालूम होते हों।

एकार्थवाची, विस्तृत और संकुचित वाक्य

एकार्थवाची वाक्य

रचना में एक ही भाव कई प्रकार के वाक्यों द्वारा प्रकट किया जा सकता है; जैसे—महात्मा गोखले मर गये· महात्मा गोखले का स्वर्गवास हो गया; महात्मा गोखले की आत्मा स्वर्ग को पधार गई; महात्मा गोखले के प्राण पखेरू उड़ गए; महात्मा गोखले की इह लीला समाप्त हो गई; महात्मा गोखले इस असार संसार से चल बसे—इन वाक्यों को एकार्थ-वाची वाक्य कह सकते हैं। इस प्रकार वाक्यों की रचना का अभ्यास निबंध-रचना में बड़ी सहायता दे सकता है।

विस्तृत व संकुचित वाक्य

कई छोटे-छोटे साधारण वाक्यों में कही गई बातों को केवल एक मिश्र या संयुक्त वाक्य में कहा जा सकता है। तथा एक लम्बे संयुक्त या मिश्र वाक्य के स्थान पर अनेक छोटे-छोटे साधारण वाक्यों की रचना की जा सकती है। इसे क्रम से संकुचित और विस्तृत वाक्य की रचना कहा जा सकता है; जैसेः—

(१) लक्ष्मण राम के छोटे भाई थे। सीता जी के स्वयंवर में परशुराम जी कुछ अनर्गल बकने लगे। लक्ष्मण को क्रोध आ गया। उन्होंने परशुराम जी की अच्छी ख़बर ली।

इन छोटे-छोटे वाक्यों का एक वाक्य बन जाता है; जैसे—राम के छोटे भाई लक्ष्मण ने सीता जी के स्वयंवर में परशुराम जी के अनर्गल बकने पर उनकी अच्छी ख़बर ली।

इसे संकुचित वर्णन कह सकते हैं।

(२) युद्ध में रावण की मृत्यु से अखिल विश्व में शान्ति की स्थापना, सीता का उद्धार और सत्य की विजय हुई।

इसे छोटे-छोटे वाक्यों में इस प्रकार कह सकते हैं:—युद्ध में रावण मारा गया। अखिल विश्व में शांति स्थापित हो गई। श्री सीता जी का उद्धार हुआ। सत्य की विजय हुई।

इसे विस्तृत वर्णन कह सकते हैं।

अभ्यास

१—नीचे लिखे संयुक्त और मिश्र वाक्यों को सरल छोटे-छोटे वाक्यों में बदल दो:—

(१) पढ़ने के समय बातचीत न करो। इससे पढ़ने में हर्ज होता है।

(२) जैसा तुम कहोगे, मैं वैसा ही करूँगा।

(३) मैंने बड़े-बड़े पाप किये, जिससे मेरा जीवन बड़ा कष्टमय है।

(४) जीवन एक उलझी हुई गुत्थी है, उसे सुलझाना कोई आसान काम नहीं है।

(५) अफ़ज़ल खाँ, जो अपने बादशाह से यह कह कर आया था कि "मैं पहाड़ी चूहे को मूसेदानी में बन्द कर लाऊँगा" और जिसके साथ इतनी बड़ी फ़ौज थी; उस पहाड़ी आदमी से कैसे हार गया?

२—नीचे लिखे हुए छोटे-छोटे वाक्यों को मिला कर एक मिश्र या संयुक्त वाक्य बनाओ? प्रत्येक दशा में बताओ कि वह मिश्र वाक्य है वा संयुक्त:—

(१) श्री डाक्टर ईश्वरी प्रसाद जी इतिहास के अच्छे विद्वान् हैं। वह इस समय प्रयाग विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफ़ेसर हैं। सुना जाता है कि वह अब प्रोफ़ेसर होने वाले हैं।

(२) श्री शिवमंगलसिंह मथुरा में रहते हैं। वह बी० ए० पास हैं। उन्हें राजनीति और क़ानून का अच्छा ज्ञान है। राय साहब जीवाराम उन के पिता का नाम था। अब की बार वह छोटे लाट की कौंसिल की मेम्बरी के लिए खड़े होंगे।

(३) संसार माया है। इसमें जिन का मोह है वे मूर्ख हैं। भगवान का भजन करना ही बस सार धर्म है।

(४) पं० रामचरनलाल बड़े देश-भक्त हैं। पं० श्रीनिवास शास्त्री भी बड़े देश-भक्त हैं। देश भक्ति ही उनका जीवन है।

(५) आप पढ़ लिख जाएँगे। समाज को आप के समान विद्वानों की ज़रूरत है। समाज की अवस्था अच्छी नहीं है। आप लोग बहुत कुछ कर सकते हैं।

३—इन वाक्यों के चार-चार एकार्थकवाची वाक्य लिखोः—

मनोहर का जन्म हुआ। मैं शोक से पागल हूँ। तुम विद्वान् हो।

वाक्यों के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें

शुद्ध वाक्य-रचना के सम्बन्ध में कुछ ऐसे नियम नीचे दिये जाते हैं, जिनके बिना विद्यार्थी अनेक अशुद्धियाँ करते हैं।

१—*संगति*—एक वाक्य में एक स्थान पर एक ही व्यक्ति के लिए मैं और हम, उन्होंने और उसने, आप और तुम आदि असङ्गत मालूम होते हैं; जैसे—मैंने उनसे कहा था कि वह आज पाठशाला न जाए, किन्तु *उन्होंने हमारा* कहना नहीं माना। इसमें 'उन्होंने' के स्थान पर 'उसने' और 'हमारा' के स्थान पर 'मेरा' होना चाहिए।

(२) आप तो नित्य ठीक समय पर भोजन करते हो, आज तुम्हें देर कैसे हो गई। इसमें 'हो' के स्थान पर हैं' और तुम्हें के स्थान पर 'आपको' होना चाहिये।

१—अनेक कर्त्ता और एक क्रिया:—

(१) एक ही लिंग के अनेक कर्त्ता और एक ही क्रिया होने पर क्रिया बहुवचन में होगी और उसका कर्त्ता के समान ही लिंग होगा; जैसे—घोड़ा और गदहा साथ साथ दौड़ेंगे।

(२) एक ही क्रिया के अनेक ऐसे कर्त्ता होने पर जिन के भिन्न-भिन्न लिंग हों क्रिया का रूप अन्तिम कर्त्ता के लिंग व वचन के अनुकुल होगा; जैसे—(क) स्त्रियाँ और पुरुष साथ-साथ गाते हैं। (ख) पुरुष और स्त्रियाँ साथ-साथ गाती हैं।

(३) भिन्न भिन्न लिंग के अनेक कर्त्ता तथा उनके अन्त में कोई समुदाय बाचक शब्द होने पर क्रिया बहुवचन और पुल्लिंग में होगी; जैसे—भाई, बहिन, दोस्त, स्त्री और बालक सब अन्त में धोखा देते हैं।

(४) एक ही भाव प्रदर्शित करने वाले अनेक कर्त्ता होने पर क्रिया एक वचन में और लिंग में अन्तिम कर्त्ता के अनुकूल होती है। जैसे—यह रुपया, पैसा, धन, दौलत सब आप ही की दी हुई है।

(५) अनेक सर्वनाम कर्त्ताओं में पहले प्रथम पुरुष, फिर मध्यम पुरुष और अन्त में उत्तम पुरुष रक्खा जाता है और क्रिया अन्तिम कर्त्ता के अनुकूल होती है, जैसे—राम, तुम और हम साथ-साथ खाएँगे।

३—कारकः—

(१) एक वाक्य के अनेक शब्दों में एक ही कारक होने पर विभक्ति अन्तिम शब्द में लगाई जाती है; जैसे—राम, मोहन, और मैंने इस व्यक्ति को दस रुपये देने का वचन दिया है।

(२) सर्वनाम शब्दों में प्रत्येक शब्द के साथ पृथक्-पृथक् विभक्तियाँ लगाई जाती हैं; जैसे—उसने, तुमने और मैंने उस को दस रुपये देने का वचन दिया है।

अर्थ विपर्यय—

१—वाक्यों में जिन शब्दों का जिनसे सम्बन्ध हो, उनको उन्हीं के पास रखना चाहिए। ऐसा न होने पर अर्थों में बड़ी विपरीतता उत्पन्न हो जाती है; जसेः—

(क) उसके पास *केवल* चार पैसे हैं।	*केवल* उसके पास चार पैसे हैं।
(ख) मैंने *फील्ड पर खेलते हुए* बच्चे को गिरने से बचाया।	*फील्ड पर खेलते हुए* मैंने बच्चे को गिरने से बचाया।
(ग) मैंने *आँगन में* खेलते हुए एक साँप देखा।	मैंने खेलते हुए *आँगन में* एक साँप देखा।

इन तीनों वाक्यों में क्रम से 'केवल', 'फील्ड पर खेलते हुए' और 'आँगन में' शब्दों के स्थान बदल देने से अर्थों में भी बड़ा भेद हो गया।

(क) पहिले 'केवल' के अर्थ हैं, दो नहीं, तीन नहीं, केवल चार पैसे देखे। दूसरे 'केवल' के अर्थ हैं और किसी व्यक्ति के पास नहीं केवल उसके पास।

(ख) पहले वाक्य में 'फील्ड पर खेलते हुए' बच्चे का विशेषण है। कौन बच्चा ? जो फील्ड पर खेलता था। किन्तु दूसरे वाक्य में यही वाक्यांश 'मैंने' का विशेषण है।

(ग) पहले वाक्य में 'आँगन में' के अर्थ हैं कि मैं आँगन में खेलता था और मैंने साँप देखा। साँप आँगन में भी हो सकता है और कहीं अन्यत्र भी। किन्तु दूसरे वाक्य में 'आँगन में' के अर्थ हैं कि मैंने साँप देखा जो आँगन में था। खेलना आँगन में भी हो सकता है और अन्यत्र भी।

२—कहीं-कहीं एक ही प्रकार के वाक्य में केवल क्रिया का रूप बदल देने से अर्थों में बड़ी विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है; जैसे—

लोहा जल कर राख हो गया।	लोहा जल कर *राख* हो गई।

ये दोनों वाक्य अशुद्ध नहीं हैं। पहले वाक्य में लोहा पर ज़ोर दिया गया है। लोहा ऐसी कड़ी वस्तु जल कर राख हो गया। दूसरे वाक्य में राख पर ज़ोर है, अर्थात् जैसा तुम चाहते थे लोहे की राख हो गई।

अभ्यास

१—पाँच ऐसे उदाहरण दो, जिनमें शब्दों का स्थान बदल देने से अर्थों में भेद पड़ गया हो। साथ में अर्थों का भेद भी समझाओ।

२—निम्नलिखित वाक्यों में कारण सहित अशुद्धियाँ बताओ:—

मैंने, रामने और तुमने उसे इसलिए नहीं बुलाया था। गाय और बैल चरता है। मैं, राम को, मोहन को, विनोद को किताब दूँगा।

तीसरा प्रकरण

काव्य और रचना

(रस, अलंकार आदि)

सारी रचनाएँ, जिनमें रस हो, *काव्य* कहलाती हैं।

काव्य — काव्य गद्य और पद्य दोनों में हो सकता है। उसके लिए यह अवश्यक नहीं कि केवल छन्दों में हो।

गद्य काव्य — गद्य में भी काव्य हो सकता है। वह गद्य-रचना, जिसमें रस हो *गद्य काव्य* कही जाती है।

कविता — काव्य मय रचना को छन्दोबद्ध कर देने से वह कविता कहलाती है।

पद्य — कोरी छन्दोबद्ध रचना जिसमें काव्य के गुण न हों पद्य कहलाती है।

छन्द — जिस पद्य में वर्णों, मात्राओं और गणों आदि की गिनती और यति, विरामादि के नियमों का विचार किया जाए उसे छन्द कहते हैं।

रस काव्य की जान है। बिना रस के काव्य हो ही नहीं सकता। यही बात ऊपर कही जा चुकी है।

रस — रस से हृदय में भाव उत्पन्न होते हैं। यदि किसी रचना से हृदय में प्रेम के भाव उत्पन्न होते हैं, तो समझना चाहिए कि उसमें शृङ्गार-रस है। इसी प्रकार जिन रचनाओं में वीर-रस होता है वे हमारी भुजाओं को फड़का देती हैं और करुणा रस वाली रचनाएँ हृदय को करुणा से पिघला देती हैं।

हिन्दी में कुल नव रस माने गये हैं:—

(१) शृङ्गार, (२) करुणा, (३) शान्त, (४) हास्य, (५) वीर, (६) वीभत्स, (७) भयानक, (८) रौद्र, (९) अद्भुत।

१—**शृङ्गार रस** प्रेम के भाव उत्पन्न करता है; जैसे:—

(१) देख सीय सोभा सुख पावा, हृदय सराहत बरन न आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई, बिरचि विश्व कहँ प्रगट देखाई॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई, छबि गृह दीप शिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरउँ विदेह कुमारी॥

(२) यह बालक कैसा, मनोहर, कोमल और चंचल है।

२—**करुणा रस** से दया या शोक उत्पन्न होता है;

जैसे—(१) मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, सोक न हृदय समाइ।
मनहु करुण रस कटकई, उतरी अवध बजाइ॥

(२) भारतवर्ष कितना दुखी है। उसकी सैकड़ों सन्तानें नित्य भूख से तड़पती हैं और एक फटा सा वस्त्र भी न होने से नंगी डोलती हैं।

३—**शान्त रस** से मन में भक्ति और त्याग आदि के भाव जाग्रत होते हैं; जैसे—

१—नर-तन सम नहिं कवनिउ देही, जीव चराचर जाचत जेही।
नरक-स्वर्ग-अपवर्ग-निसेनी, ज्ञान विराग भक्ति सुख देनी॥

४—**हास्य रस** से विनोद और हँसी के भाव उदय होते हैं; जैसे:—

कर त्रिशूल अरु डमरु विराजा, चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा।
देखि सिवहिं सुरतिय मुसकाहा, बर लायक दुलहिन जग नाहीं॥

५—**वीर रस** वीरता के भाव जगा देता है; जैसे—

निसिचर भट महि गाड़हिं भालू, ऊपर डारि देहिं बहु बालू।
बीर बली मुख जुद्ध विरुद्धे, देखिअत विपुल काल जनु क्रुद्धे॥

६—**वीभत्स रस** घृणा के भाव उत्पन्न करता है। मरघट या हत्या आदि के वर्णनों में वीभत्स रस होता है; जैसे—

खैंचहिं आँत गीध तट भये, जनु बनसी खेलहिं चित दये।
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं, जनु नावरि खेलहिं सर माहीं॥

७—**भयानक रस** वाले वर्णनों में भय उत्पन्न होता है; जैसे—

कहिय-कहा कहि जाइ न बाता, जम कर धारि किधौं बरि आता।
बर बौराह बरद असबारा, व्याल कपाल विभूषण धारा॥

८—**रौद्र रस** क्रोध उत्पन्न करता है, अथवा क्रोध के भाव प्रकट करता है; जैसे—

व्याकुल कटक कीन्ह घन नादा, पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा।
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा, सुनिकर ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥

९—**अद्भुत रस** वाले वर्णनों से आश्चर्य उत्पन्न होता है; जैसे—

देखे जहँ तहँ रघुवर जेते, सक्तिन सहित सकल सुर तेते।
जीव चराचर जो संसारा, देखे सकल अनेक अकारा॥

अलंकार

अलंकार के अर्थ हैं 'आभूषण'। मनुष्य के दो प्रकार के आभूषण हैं, जिनसे उसकी शोभा बढ़ती है। एक तो उसके गुण, दूसरे सोने और चाँदी के अलंकार। इसी प्रकार भाषा के दो प्रकार के

अलंकार हैं, एक अर्थों का दूसरा शब्दों का। मनुष्य के रूप की स्वाभाविक सुन्दरता को जिस प्रकार उसके सद्गुण और बाहरी आभूषण बढ़ा देते हैं, उसी प्रकार भाषा की सुन्दरता और उसके रस को शब्दालंकार और अर्थालंकार उत्कर्ष प्रदान करते हैं, उसकी शोभा को दूना और चौगुना बढ़ा कर रसों में जान डाल देते हैं।

जब हम कहते हैं 'कैसा प्यारा बच्चा है', तो हमारे हृदय में शृङ्गार रस से प्रेम उत्पन्न होता है*। इसी बात को यदि दूसरे ढग से कुछ अलंकृत करके यों कहा जाए, 'सुन्दर पुष्प के समान कैसा प्यारा बच्चा है।' तो उससे शृङ्गार रस के भाव उत्पन्न होने के साथ ही कुछ रचना में विशेष आनन्द आ जाता है। इसी को अलंकार या अलंकारयुक्त रचना कहते हैं। एक विद्वान् का कहना है कि "अलंकार का उद्देश्य है शैली को सुन्दर और मनोहर बनाना, उसमें आकर्षण और प्रभाव उत्पन्न करना।" अंग्रेजी विद्वान् बेकन के शब्दों में "रचना में गौरव उत्पन्न करने के लिए, बात किसी असाधारण ढंग से कुछ घुमा-फिरा कर कहना ही अलंकारयुक्त या अलंकृत-रचना कहलाती है।"

अलंकार के मुख्य दो भेद — जैसा पहले कहा जा चुका है अलंकार दो प्रकार के होते हैं—शब्दालंकार, अर्थालङ्कार। जिसमें शब्दों की सुन्दर योजना से चमत्कार उत्पन्न हो, उसे शब्दालंकार कहते हैं; जैसे—'चारु चन्द्र'।

(१) शब्दालंकार — 'चारु' के स्थान पर 'सुन्दर' शब्द रख देने से अर्थों में कोई भेद नहीं होता, किन्तु वह सुन्दरता

---

*बच्चे के प्रति प्रेम उत्पन्न करने वाले शृङ्गार रस को वात्सलय रस कहते हैं।

जो चारु और 'चन्द्र' शब्दों को साथ-साथ रखने से उत्पन्न होती है, नष्ट हो जाती है।

शब्दालङ्कार के बहुत थोड़े से भेद हैं उनमें तीन नीचे दिये जाते हैं:—

(क) **अनुप्रास**, जिसमें एक ही अक्षर या एक ही पद एक से अधिक बार आए; जैसे:—

(१) सन्ध्या का सुन्दर सुहावना समय था।

इसमें 'स' अक्षर बार-बार आया है।

(२) 'चतुर चकोर चारु लोचन कर अचल देखता चाह भरे'—इसमें 'च' की आवृत्ति है।

(३) औरन के जाचे कहा, जो जाच्यो शिवराज।
औरन के जाचे कहा, नहिं जाच्यो शिवराज॥

अर्थात्—जिसने शिवाजी से कुछ माँग लिया उसे औरों से क्या माँगना, और जिसने शिवाजी से नहीं माँगा उसे औरों से माँगने ही से क्या मिलेगा।

इस दोहे में 'औरन से जाचे कहा', और 'जाच्यो शिवराज' पदों की आवृत्ति है।

(ख) **यमक,** यदि एक ही शब्द या पद अधिक बार आए या ध्वनि से ऐसा मालूम हो कि एक से अधिक बार आया है और ऐसी अवस्था में उसके प्रत्येक स्थान पर अलग-अलग अर्थ हों, तो उसमें यमक-अलंकार होता है।

जैसे—(१) कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
यह खाये बोरात है, वह पाये बौरात॥

इसमें कनक शब्द दो बार आया है; एक स्थान पर अर्थ है 'सोना' और दूसरे स्थान पर अर्थ है 'धतूरा'।

अर्थात् सोने में धतूरे से सौ गुना नशा होता है। धतूरा के खाने से नशा होता है, किन्तु सोना के केवल पाने से नशा होता है।

(२) हरिनी के नैनान ते हरिनीके ये नैन।—इसमें 'हरिनीके' पद की आवृत्ति हुई है। एक के अर्थ हैं 'हिरन के' दूसरे के अर्थ हैं 'हरि नीके' अर्थात् हे हरि, अच्छे हैं।

(ग) **वक्रोक्ति** उसे कहते हैं जिसमें कही हुई बात को सुनकर सुनने वाला तोड़ मरोड़ कर उसके दूसरे ही अर्थ निकाले; जैसे—'को तुम ? हैं घन श्याम हम, तो बरसो किन जाय'।

इसमें राधा ने कृष्ण से पूछा 'को तुम ?' उत्तर मिला 'घन-श्याम'। राधा ने घनश्याम के सीधे-साधे अर्थ न लेकर चतुरता-पूर्वक काले बादलों के अर्थ लगा कर कहा, "तो कहीं जाकर बरसो।"

(२) अर्थालंकार

जिससे अर्थों में कोई चमत्कार या सुन्दरता उत्पन्न होजाए, उसे *अर्थालंकार* कहते हैं। जैसे आप विद्या में वृहस्पति के समान हैं। इस वाक्य में विद्वता के अर्थ का गौरव वृहस्पति से तुलना किये जाने से बढ़ गया। इसलिए इसमें अर्थालंकार है।

अर्थालंकार अनेक प्रकार के होते हैं; इसके सौ से भी अधिक भेद हैं। नीचे उसके कुछ भेद दिये जाते हैं:—

(१) **उपमा**, जब एक वस्तु की दूसरी से समानता दिखाई जाती है तो उसमें उपमालंकार होता है; जैसे—यह मनुष्य सिंह के समान बली है। इस वाक्य में बल में मनुष्य की समता सिंह से दिखाई गई है।

उपमा अलंकार में चार बातें होती हैं:—

(१) उपमेय—जिनकी समानता ढूँढ़ी जाए; जैसे—यह *मनुष्य* सिंह के समान बली है, इसमें 'मनुष्य' उपमेय है।

(२) *उपमान*—जिससे समता दी जाए, जैसे—यह मनुष्य *सिंह* के समान बली है। इसमें 'सिंह' उपमान है।

(३) *धर्म*—जिस बात में समता दिखाई जाए; जैसे—यह मनुष्य सिंह के समान *बली* है। यहाँ 'बली' बाचक है।

(४) *बाचक*—जिस बात से समता का परिचय दिया जाए; जैसे—यह मनुष्य सिंह के *समान* बली है। यहाँ समान बाचक है।

पूर्णोपमा

जिस रचना में ये चारों बातें मौजूद होती हैं, उसे *पूर्णोपमा*, और जिसमें इन चारों में एक या दो बातें लुप्त होती हैं उसे *लुप्तोपमा* कहते हैं; जैसे—'यह मनुष्य सिंह के समान है' में लुप्तोपमा है। इसमें बली, धर्म का लोप है।

लुप्तोपमा

सम, समान, ज्यों, जैसे आदि इस अलंकार के बाचक शब्द हैं। अंगरेजी में इसे Simile कहते हैं।

उपमा के अन्य भेद

इनके अतिरिक्त कुछ और अलंकार नीचे दिये जाते हैं, जो उपमा के ही एक प्रकार के भेद हैं।

(२) **मालोपमा** में एक उपमेय की अनेक उपमानों से समता की जाती है; जैसे:—

(१) कामिहि नारि पियार जिमि, लोभिहि जिमि प्रिय दाम।
तिमि रघुवंश निरन्तरहि, प्रिय लागहु मोहि राम।

(२) तुम सिंह के समान बली, कामदेव के समान सुन्दर और वृहस्पति के समान विद्वान् हो।

(३) **उपमेयोपमा** में उपमेय और उपमान की परस्पर समता की जाती है: जैसे: —

(१) 'अमल कमल से नैन हैं, कमल नैन से स्वच्छ।' इसमें नेत्रों की कमल से और कमल की नेत्रों से उपमा दी गई है।

(२) वे तुम सम तुम उन सम स्वामी।

३—**अनन्वयोपमा** में उपमेय की उपमा अन्य उपमान से न देकर उसी उपमेय से दी जाती है; जैसे:—

'राम से राम, सिया सी सिया'

राम राम ही के समान और सीता सीता ही के समान हैं। दूसरे शब्दों में, राम राम ही हैं और सीता सीता ही हैं।

नीचे कुछ ऐसे अलंकार दिये जाते हैं जो उपमा से बहुत कुछ समानता रखते हैं। एक उपमा अलंकार युक्त बात को थोड़ा बदल कर इनमें से किसी अलंकार का रूप दिया जाता है।

उपमा के सदृश दूसरे अलंकार

रूपक में एक वस्तु को दूसरी वस्तु कहा जाता है, **अर्थात्** उपमेय और उपमान को एक कर दिया जाता है।

जैसे—बिनती करि मुनि नाय शिर, कह कर जोरि बहोरि।
चरन-सरोरुह नाथ! जिन, कबहुँ तजै मति मोरि॥

इसमें चरन-सरोरुह अर्थात् सरोरुह रूपी चरण में रूपक है, क्योंकि चरण उपमेय को सरोरुह (कमल) उपमान का रूप दे दिया गया है, दोनों एक कर दिये गये हैं।

अपन्हुति में उपमेय को छिपाकर उपमान बताया जाता है।

जैसे—आकाश में चन्द्रमा देखकर कोई कहता है—
'नहिं सुधांश यह, है सखी, नभ गंगा को कंज'

अर्थात्, हे सखी यह चन्द्रमा नहीं, आकाश गंगा का कमल है।

अथवा, किसी वीर मनुष्य को देख कर कोई कहे कि 'यह मनुष्य नहीं सिंह है।'

प्रतीप में उपमेय से आदरणीय उपमान का अपमान कराया जाता है, या उपमान की उपमेय से उपमा दी जाती है; जैसे:—

(१) किसी सफ़ेद वस्तु को देख कर कोई कहे 'यह तो चाँदनी से भी साफ़ है', या 'यह मुख तो चन्द्रमा से भी सुन्दर है।'

(२) चन्द्रमा इस मुख के समान है।
(३) 'श्री रघुवीर सिया छवि सामुहैं,
स्याम घटा बिजुरी परै फीकी।'
(४) बहुरि विचार कीन मन माँही।
सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥

उत्प्रेक्षा में उपमेय को संदिग्ध रूप में उपमान समझा जाता है, जैसे:—

(१) लता भवन ते प्रकट भे, तेहि अवसर दोय भाय।
निकसे जनु युग विमल विधु, जलद पटल विलगाय॥

अर्थात्, जिस समय राम लक्ष्मण लताओं से निकले तो ऐसा मालूम होता था कि मानों बादलों को हटा कर दो चन्द्रमा निकल पड़े।

मनु, जनु मानो, जाना, निश्चय, प्रायः बहुधा, इव, खलु आदि इस अलंकार के वाचक शब्द हैं।

स्मरण, जहाँ उपमेय को देख कर उपमान की या उपमान को देखकर उपमेय की याद आती है; जैसे:—

सघन कुँज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा यमुना के तीर॥

अर्थात् यह सब देख कर कृष्ण की याद आती है।

प्राची दिशि शशि उग्यो सोहावा,
सिय मुख सरिस देख सुख पाया॥

अर्थात् पूर्व दिशा में सुन्दर चन्द्रमा को देख कर सीता के मुख की समता होने के कारण मुझे बड़ा सुख हुआ।

सन्देह में सन्देह प्रकट किया जाता है; जैसे—

जैसे—(१) कै तुम तीन देव माहँ कोऊ. नर नारायण कै तुम दोऊ।

(२) सुन कै पुकार धायो द्वारका ते यदुराई, बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल हारी है। सारी बीच नारी है, कि नारी बीच सारी है, कि सारी ही की नारी है, कि नारी ही की सारी है।

अर्थात् द्रौपदी की पुकार सुन कर भगवान् द्वारका से दौड़े और साड़ी इतनी बढ़ा दी कि खींचते-खींचते दुःशासन के हाथ थक गए। उस समय यह नहीं कहा जा सकता था कि द्रौपदी साड़ी के भीतर है, या द्रौपदी के भीतर साड़ी है या द्रौपदी की ही साड़ी है।

धौं, कि, किधौं, की, या, अथवा आदि इसके बाचक हैं।

इन अर्थालंकारों में बड़ी समानता है। एक ही वाक्य में थोड़ा परिवर्तन करके किस प्रकार अलंकार बदले जा सकते हैं, । इसके लिए नीचे एक वाक्य का उदाहरण दिया जाता है।

१—यह मुख चन्द्रमा के समान है। *उपमा*

२—यह मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर और
कमल के समान कोमल है। *मालोपमा*

३—यह मुख चन्द्रमा के समान है और
चन्द्रमा इस मुख के समान है। — *उपमेयोपमा*

४—यही मुख तो मुख है। — *अनन्वयोपमा*

५—उनके चन्द्र-मुख को देख कर मेरा
हृदय प्रसन्न हो गया। — *रूपक*

६—क—चन्द्रमा इस मुख की क्या समता कर सकता है
ख—चन्द्रमा इस मुख के समान है। } *प्रतीप*

७—यह मुख मानो चन्द्रमा है। — *उत्प्रेक्षा*

८—इस मुख को देखकर चन्द्रमा की
याद आती है। या चन्द्रमा को देख
उस मुख की याद आती है। } *स्मरण*

९—यह मुख है या चन्द्रमा ? — *सन्देह*

नीचे कुछ और महत्वपूर्ण अर्थालंकार दिये जाते हैं।

श्लेष, एक ही शब्द जब दो अर्थों में प्रयोग किया जाए; जैसे—

अजौं तरयौना ही रह्यौ, श्रुत सेवत इक अंग।
नाक बास बेसर लह्यौ, बसि मुक्तन के संग॥

इसमें तरयौना (१–कर्णफूल २–नहीं तरा), श्रुत (१–कान २–वेद), नाक (१–नासिका, २–स्वर्ग), बेसर (१–नथ, २–गधा), मुक्तन (१–मोती २–मोक्ष प्राप्त), के दो-दो अर्थ हैं। (१) हे कर्णफूल तू कान की सेवा करते हुए भी कर्णफूल ही रहा, परन्तु नथ मुक्ताओं के साथ रह करके नाक पर पहुँच गया। (२) वेदों की सेवा करते हुए भी तू नहीं तरा, परन्तु मुक्त प्राणियों के सत्संग से गधा स्वर्ग पहुँच गया।

विरोधाभास, जिस में एक बात प्रत्यक्ष में दूसरे के विरुद्ध कथन की जाए, किन्तु उसका वस्तुतः परस्पर विरोध नहीं हो; जैसेः—

(१) या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै श्याम रंग, त्यों-त्यों ऊजर होय॥

इस प्रेम करने वाले हृदय की बात कुछ समझ में नहीं आती। वह ज्यों-ज्यों श्याम (काला) के रंग में डूबता जाता है, त्यों-त्यों साफ़ होता जाता है। यहाँ 'श्याम रंग में डूब कर उज्ज्वल होना' विरोधाभास है। इस श्याम शब्द में श्लेष भी है।

(२) उसने मर कर अपने मुर्दा देश को जिला दिया।

अत्युक्ति, जहाँ रूप, गुण, वीरता, कोमलता आदि का बहुत बढ़ाकर वर्णन किया जाए; जैसेः—

(१) भूषण भार सँभारि है, क्यों वह तन सुकुमार।
सूधे पाँय न परत हैं, शोभा ही के भार॥

किसी स्त्री की कोमलता का अत्युक्ति पूर्ण वर्णन है, कवि कहता है कि सुन्दरता भी उसके लिए एक बोझ है, उस बोझ के कारण उसके पैर पृथ्वी पर सीधे नहीं पड़ते, भला वह आभूषणों का बोझ उन्हें पहन कर कैसे सहेगी? यहाँ 'सुन्दरता का बोझ' में अत्युक्ति है।

(२) जासु त्रास डर का डर होई।

(३) जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप।

अभ्यास

१—काव्य किसे कहते हैं? गद्य-काव्य क्या है?

२—काव्य और कविता में क्या भेद है?

३—छन्द की क्या परिभाषा है।

४—नव रसों के नाम लिखो। अद्भुत और करुणा रस से युक्त दो काव्य बनाओ।

५—रहीम के दोहों से शृङ्गार, शान्त और हास्य रस का एक-एक दोहा छाँट कर लिखो।

६—अलंकार किसे कहते हैं? उससे क्या लाभ है? अर्थालंकार और शब्दालंकार में क्या भेद है?

७—यमक, वक्रोक्ति, श्लेष और विरोधाभास अलंकार किसे कहते हैं? सोदाहरण उत्तर दो।

८—नीचे लिखे पद्यों और अवतरणों में कौन अलंकार है:—

(क) 'साहि के सपूत, सिवसाहि दानि तेरो कर,
सुर तरु सोहै, सुर तरु तेरे कर सों।'

(ख) इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुल राज है।'

(ग) चरण धरत काँपत हृदय, नहिं चाहत अति शोर।
ढूँढ़त, फिरत सुवर्ण को, कवि व्यभिचारी चोर॥

(घ) काल करत कलिकाल में, नहिं तुरकन को काल।
काल करत तुरकान को, सिव सरजा कर बाल॥

(ङ) मित्र, आज आपके दर्शनों से मेरा तो मानों हृदय-कमल खिल गया।

(च) भगवान् बुद्धदेव के जीवन-प्रदीप-निर्वाण ने संसार में ज्ञान का दिव्य दीपक जला दिया।

९—नीचे लिखे वाक्यों को अलंकृत वाक्यों में बदल दो।

(१) मेरे मित्र का विवाह हो गया।

(२) सूर्य अस्त हो रहा है।

(३) यमुना में लहरें कैसी कलकल करती हैं।

(४) तुम बहुत तेज़ दौड़ते हो।

(५) कैसा सुन्दर बालक है?

उदाहरण:—

साधारण वाक्य—तुम बड़े सुन्दर हो।
अलंकृत वाक्य—तुम सुन्दरता में तो मानो कामदेव हो।

साधारण वाक्य—तुम्हारे दर्शनों से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ।
अलंकृत वाक्य—तुम्हारे मुखचन्द्र को देखकर मेरे हृद्सरोवर की कुमुदिनी खिल उठी।

साधारण वाक्य—तुम बड़े सज्जन मनुष्य हो।
अलंकृत वाक्य—तुम मनुष्य नहीं देवता हो।

मुहाविरे और कहावतें

कहावतें

मुहाविरे और कहावतें प्रत्येक भाषा में पाये जाते हैं। इनकी रचना विचित्र होती है और इनके विशेष अर्थ होते हैं। कोई-कोई अर्थ ऐसे हैं कि जिनके गठन और अर्थ की व्युत्पत्ति भी आसानी से नहीं की जा सकती। इनके एक निश्चित अर्थ होते हैं। इनका प्रयोग बच्चा-बच्चा करता है और इनके समझने की सभी को आवश्यकता पड़ती है। इनका ज्ञान उसी को अच्छा हो सकता है जो नित्य बातचीत और पठन-पाठन में इनका ध्यान रखता है। यही इनके जानने की सर्वोत्तम रीति है। इनके प्रयोग से वाक्यों में आकर्षण और स्पष्टता उत्पन्न हो जाती है। अनेक स्थानों पर एक मुहाविरा या कहावत के प्रयोग से जो काम चलता है वह अनेक शब्दों से नहीं चल सकता। किन्तु कोई मुहाविरा या कहावत उसके अर्थों के शुद्ध ज्ञान के बिना प्रयोग में न लाना चाहिए।

'सिर उठाना', 'कान भरना', 'आँखें लाल करना'
'लोहू के घूँट पीना', 'आकाश कुसुम तोड़ना'
मुहाविरे आदि मुहाविरे हैं, जिनका हम रात-दिन उठते-
बैठते प्रयोग करते हैं; जैसे—

(१) "सिर उठाना" (उपद्रव करना)— रावण ने जब बहुत *सिर उठाया* तब भगवान् राम ने उसका नाश कर दिया।

(२) "कान भरना" (चुगली करना)—मैं जानता हूँ, तुमने मेरे मालिक के ख़ूब *कान भरे* हैं।

(३) "आँखें लाल करना" (क्रोध करना)—मेरे ऊपर क्यों *आँखें लाल करते* हो ?

(४) "मुँह चढ़ाना" (ढीठ बनाना)—नीचों को *मुँह चढ़ाने* से सदा क्लेश होता है।

(५) "लोहू के घूँट पीना" (कष्टपूर्वक सहन करना)—उसकी बातें देखकर मुझे अत्यन्त क्रोध हुआ, परन्तु मैं *लोहू के घूँट पीकर* रह गया।

(६) "आकाश कुसुम तोड़ना" (असम्भव बातें करने की चेष्टा करना) तुम्हारे लिए एम० ए० पास करने की चेष्टा करना वस्तुतः *आकाश कुसुम तोड़ना* है।

नीचे कुछ और मुहाविरे, उनका आशय तथा उदाहरण दिये जाते हैं:—

(७) **आँखें बदलना**— व्यवहार में परिवर्तन करना या लड़ने को तैयार हो जाना; जैसे—मुझसे आँखें क्यों बदलते हो ?

(८) **आँख मारना**— किसी बात के लिए इशारा करना; जैसे—आँख मत मारो।

(९) **आँख चुराना**—सामने न आना; जैसे—वह मुझ से आँख चुरा कर निकल गया।

(१०) **आँखों में चर्बी छाना**—घमण्ड होना; जैसे—तेरी आँखों में चर्बी छाई है।

(११) **उल्टे उस्तरे से मूँड़ना**—खूब बेवक़ूफ़ बनाना, ठगना; जैसे—मैंने उसे उल्टे उस्तरे मूँड़ा।

(१२) **कान का कच्चा होना**—सबकी बात मान लेना; जैसे—रईस लोग कान के कच्चे होते हैं।

(१३) **कान में तेल डालना**—ध्यान न देना; जैसे—वह तो अब कान में तेल डाले बैठे हैं।

(१४) **कुँआ खोदना**–दूसरे को हानि पहुँचाने का यत्न करना, या रोटी कमाने का प्रयत्न करना; जसे—(क) जो दूसरे के लिए कुँआ खोदता है, वह आप गिरता है। (ख) मेरे खाने की क्या पूछते हो? यहाँ तो नित्य कुँआ खोदना और पानी पीना।

(१५) **कुठाराघात करना**—नाश करने वाला काम करना; भारी सदमा पहुँचाना; जैसे—उसने मेरे सुख स्वप्न पर कुठाराघात किया।

(१६) **कुप्पे लुढ़काना**—अधिक व्यय करना; जैसे—अपनी गृहस्थी देखो, इस तरह कुप्पे क्यों लुढ़काते हो?

(१७) **कुप्पा सा मुँह होना**—रूठना, मुँह फुलाना; जैसे—ज़रा सी बात में उनका कुप्पा सा मुँह हो जाता है।

(१८) **खटका होना**—भय; चिन्ता; आहट; जैसे—(क) मुझे खटका (भय) है कि वह मरेगा।

(ख) खटका (आहट) होते ही वे घुस आएँगे।

(१६) **चूड़ियाँ पहनना**—कायरता दिखाना; जैसे--तुम युद्ध-क्षेत्र में नहीं जा सकते हो चूड़ियाँ पहन लो।

(२०) **छाया पड़ना**--प्रभाव पड़ना; जैसे--उन पर तुम्हारी छाया पड़ गई है।

(२१) **जमाई बनाना**--बहुत सम्मान करना; जैसे--थानेदार को तुम लोग जमाई क्यों बना लेते हो ?

कहावतें या लोकोक्तियाँ

"सात-पाँच की लाठी, एक जने का बोझ", "जब घर खीर तो बाहर खीर", "धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का", "नाच न आए आँगन टेढ़ा", "विनाश काले विपरीति बुद्धिः"--ये सब कहावतें हैं। इन्हें *लोकोक्ति* भी कहते हैं। मुहाविरे वाक्यांश होते हैं। किन्तु कहावतें पूरा वाक्य होती हैं।

यह भी हमारे नित्य के व्यवहार में आती हैं। बहुधा लम्बी बातचीत के बाद एक कहावत का प्रयोग करना, सारी बात का निष्कर्ष एक वाक्य में निकाल कर रख देता है। कहावतें सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में प्रचलित हैं। जैसे—१—"सात पाँच की लाठी और एक जने का बोझ"--एक काम कई आदमियों के मिलकर करने पर कुछ नहीं मालूम होता और वही यदि एक आदमी पर पड़ जाए तो बोझ मालूम होता है। उदाहरण--भाई, सब मिल कर चाहो तो यह काम चार दिन में हो सकता है और उसे अकेले करने को कहो तो महीने

भर में भी न कर पाएगा। बात तो यह है कि *"सात पाँच की लाठी और एक जने का बोझ"* ।

२—"घर खीर तो बाहर खीर"—जिसके पास धन होता है, उसका बाहर भी सम्मान होता है; अथवा जब आदमी को एक चीज़ की आवश्यकता नहीं होती तो वह वस्तु बीसों जगह से मिलती दिखाई देती है। उदाहरण—जब से मैं नौकर हो गया हूँ, मेरी बीसों जगहों से माँगें आती हैं। ठीक है, *"घर खीर तो बाहर खीर"* ।

३—"धोबी का कुत्ता घर का न घाट का"—किसी काम का नहीं। उदाहरण—तुम न तो दूकान पर बैठ सकते हो और न घर का काम ही कर सकते हो। तुम्हारी तो वही दशा है कि *"धोबी का कुत्ता घर का न घाट का"* ।

४—"नाच न आए आँगन टेढ़ा"—कोई काम न कर सकने पर अपनी अयोग्यता को छिपा कर दूसरी बातों पर दोष मढ़ना। उदाहरण—कैसी दुर्दशा है, आजकल के नेता स्वयं काम लेना नहीं जानते और कहते हैं कि जनता निकम्मी है। *"नाच न आए आँगन टेढ़ा"* वाली गति है।

५—"विनाश काले विपरीति बुद्धिः"—जब अनिष्ट होने वाला होता है तो बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है। उदाहरण—हिन्दू और मुसलमान लड़ते हैं। हमारा तो विश्वास है कि देश की और भी अधोगति होने वाली है। इन्हें इतनी समझ नहीं कि गृह-कलह से भी कहीं किसी देश की उन्नति हुई है। सच है *"विनाश काले विपरीति बुद्धिः"* ।

नीचे कुछ और कहावतें तथा उनका भाव दिया जाता है:—

६—**तीन लोक से मथुरा न्यारी**—किसी असाधारण बात का होना।

७—**गाँडर आनी ऊन की बाँधी चरै कपास**—लाभ के स्थान पर हानि होना।

८—**होम करते हाथ जले**—भलाई के बदले में बुराई हो।

९—**राई से पर्वत करै पर्वत राई माँहि**—चाहे जो करे।

१०—**चार दिना की चाँदनी फिर अँधियारा पाख**—थोड़े दिन की मौज और अन्त में वही दशा।

११—**घर का भेदी लंका ढावे**—अपना ही आदमी शत्रु हाने पर सर्वनाश कर सकता है।

१२—**मन चंगा तो कठौती में गंगा**—हृदय में पवित्रता है तो सभी स्थान तीर्थ समान हैं।

१३—**मढ़े दमामे जात हैं कहुँ चूहे के चाम**—बड़े काम बड़ी ही सामग्री से होते हैं।

१४—**सौ चूहे खा कर बिल्ली हज्ज को चली**—अनेकों पाप करने के बाद सज्जनता का ढोंग करना।

१५—**टके की बुलबुल नौ टके हुसकाई**—*थोड़ी सी बात पर बहुत व्यय कर देना।*

अभ्यास

१—नीचे लिखे मुहाविरों का भाव बताओ और उन्हें वाक्यों में प्रयोग करो:—

"सावन हरे न भादों सूखे", "आकाश कुसुम तोड़ना", "गाल बजाना", "नानी याद आना", "तिनके को पहाड़ बनाना", "पगड़ी उछालना", "फूँक-फूँक-कर पैर रखना", "शीश कटाना", "जन्म गँवाना", "चुटकी लेना" ।

२—नीचे लिखी कहावतों का आशय बताओ, और उनका प्रयोग दिखाओ:—

"नाम पृथ्वीराज और भूमि बित्ता भर नहीं ।"

"स्वारथ के सब ही सगे बिन स्वारथ कोउ नाहिं ।"

"राम न जाते हरिण सँग सीय न रावण साथ ।"

"हम डूबे तो जग डूबा ।"

"मुँह में राम, बग़ल में छुरी ।"

"घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं ।"

"जाके पाँव न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई ।"

"मारे और रोवन न देय ।"

"आम के आम और गुठली के दाम ।"

३ (अ)—कहावतों और मुहाविरों में क्या भेद है ?

(इ)—इनका अच्छा ज्ञान कैसे हो सकता है ? तथा इनके जानने से क्या लाभ है ?

———

लेख-चिह्न

लेख-चिह्न

विरामादि-चिह्नों का, जिन्हें अँगरेज़ी में Punctuation कहते हैं, रचना में ऊँचा स्थान है। इन चिह्नों के बिना एक मिश्र या संयुक्त-वाक्य दुर्बोध हो जाता है। सारे शब्द एक-दूसरे से इस प्रकार मिल जाते हैं कि उनका समझना दुष्कर हो जाता है।

हम बोलने में अपने भावों को जैसे चाहें व्यक्त करें। एक बात समाप्त होते ही रुक सकते हैं। आवश्यकतानुसार एक बात ज़ोर से, धीरे से, समझा कर, या डाट कर कह सकते हैं। किन्तु लिखने में ऐसी ही और बातों के लिए विरामादि चिह्नों का प्रयोग करना पड़ता है। इन्हीं का लेख-चिह्न कहा जाता है। ये वाक्यों में पदों, वाक्यांशों और उपवाक्यों का सम्बन्ध स्थापित करते हैं और यह भी बताते हैं कि एक वाक्य में कहाँ और कितना ठहरना चाहिये, अथवा वह वाक्य प्रश्नबोधक है या विस्मयादिबोधक।

हिन्दी में पहले केवल एक-ही-दो चिह्न काम में आते थे, किन्तु अब अँगरेज़ी से अनेक उपयोगी चिह्न हिन्दी में ले लिये गये हैं।

निम्नलिखत चिह्न विशेष रीति पर काम में आते हैं:—

हिन्दी नाम	अँगरेज़ी नाम	चिह्न
(१) अल्प विराम या पाद विराम	(Comma)	,
(२) अर्द्ध विराम	(Semicolon)	;
(३) पूर्ण विराम या विराम	(Full-stop)	।
(४) उद्गार चिह्न या विस्मयादि-बोधक	(Note of Exclamation)	!

(५) प्रश्नचिह्न	(Note of Interrogation)	?
(६) अवतरण या उद्धरण चिह्न	(Marks of Quotations)	"
	(Inverted Commas)	"
(७) कोष्टक	(Brackets)	( )
(८) योजक या विभाजक	(Hyphen)	-
(९) अपूर्ण विराम	(Colon)	:
(१०) आदेशक	(Dash)	—
(११) संक्षेप सूचक		०

इनके प्रयोग के कुछ थोड़े से नियम नीचे दिये जाते हैं:—

(१) अल्प विराम (,)

अल्प विराम के शब्दार्थ हैं, 'थोड़ी देर ठहरना'। इसका प्रयोग निम्नलिखित अवस्थाओं में होता है: –

१—यदि दो या दो से अधिक शब्द, वाक्यांश या उपवाक्य एक वाक्य में एक ही हैसियत से आएँ और वे परस्पर किसी अन्य संयोजक शब्द–'और', 'या', 'तथा' आदि–से न जोड़े गये हों, तो उनके बीच में अल्प-विराम का प्रयोग करना चाहिए।

जैसे -(क) राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, शंकर और दयानन्द भारत के महापुरुष थे।

(ख) मैं पाप,अत्याचार और नृशंसता का अन्त करूँगा।

२—प्रसंग, कारण, समय आदि बताने वाले क्रियाविशेषण, अव्ययीभावात्मक (Parenthetical, or Adverbial)

तथा समानाधिकरण (Appositional) शब्द या वाक्यांश, एक वाक्य में अल्प विराम द्वारा अलग किये जाते हैं।

जैसे, (क) वह, चलते-फिरते, ऐसी बातें कह देता है।

(ख) वह हैं स्वराज्यवादी, किन्तु खद्दर नहीं पहनते।

(ग) पं० हरिप्रसाद शर्मा बी० ए०, मथुरा के रहने वाले भूगोल के अच्छे अध्यापक हैं।

३—बहुधा सम्बोधन या उद्‌गार के बाद अल्प विराम भी लगाया जाता है।

जैसे, (क) साहब, आप मेरी बातें सुनें।

(ख) हाय, यह कैसी आपत्ति।

४—किसी वाक्यांश या उपवाक्यांश के कर्त्ता या कर्म होने पर, उसे अल्प विराम से अलग कर देते हैं।

जैसे, (क) आज पानी बरसेगा, कौन कह सकता है।

(ख) जीवन की साध, न मिटी।

५—जिन उपवाक्यों का प्रारम्भ 'जब', 'जैसे', 'अन्यथा', 'किन्तु' और 'यदि' आदि से होता है, उन्हें दूसरे उपवाक्यों से अल्प विराम द्वारा अलग कर दिया जाता है।

जैसे—जब तुम मुझे स्टेशन पर मिले थे, मैं तभी से मारा-मारा फिरता हूँ।

६—महीना, वर्ष, दिन आदि समय के विभागों को भी अल्प विराम से अलग कर दिया जाता है।

जैसे—७ जनवरी, रविवार के दिन, ठीक ३ बजे शाम को, मैं बाराबंकी पहुँचा।

(२) अर्द्ध विराम (;)

१—संयुक्त तथा मिश्र वाक्यों में उपवाक्यों को अलग करने में इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

जैसे—बा० शिवकृपालु एक होनहार नवयुवक थे; आज उनकी मृत्यु हो गई।

२—जब अल्प विराम से अलग किये हुए शब्दों, वाक्यांशों या उपवाक्यों को परस्पर या किसी दूसरे अंश से अलग किया जाता है, तो अल्प विराम का प्रयोग होता है।

जैसे—(क) बंगाल, पंजाब आदि हिन्दुस्तान में; वेल्स, स्काटलेंड आदि ग्रेट ब्रिटेन में एक प्रकार के सूबे हैं।

(ख) आप कौन हैं, कहाँ रहते हैं; क्या करते हैं; ये सारी बातें मैं पूछ कर क्या करूँगा ?

(३) पूर्ण विराम (।)

किसी वाक्य के पूरे हो जाने पर अन्त में विराम चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

जैसे—श्री सुभद्रा देवी मेरी धर्म की बहिन हैं।

नोट—पूर्ण विराम को 'खड़ी पाई' भी कहते हैं।

(४) उद्गार या विस्मयादि बोधक-चिह्न (!)

१—साधारणतया आश्चर्य, निराशा, भय, चिन्ता, आवेश, जुगुप्सा आदि भावों तथा सम्बोधन को स्पष्ट करने के लिए इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

जैसे—(क) अहा ! यह कैसी अद्भुत रचना है। (आश्चर्य)

(ख) हाय ! अब भारत ऐसे कौशल नहीं दिखा सकता। (निराशा)

(ग) हे भगवान् ! क्या ये दु ख न मिटेंगे ?(चिन्ता)

२—यदि 'हाय' 'महा', इत्यादि शब्दों के पीछे और भी उद्गार सूचक शब्द हों, तो यह चिह्न अन्तिम शब्द के अन्त में लगाया जाता है और हाय या महा आदि के बाद अल्पविराम।

जैसे—हाय-हाय, राम और कृष्ण की सन्तानों की यह दशा!

३—यह चिह्न कभी-कभी व्यङ्ग में कहे गये शब्दों के आगे भी कोष्ठक में घेर कर लगाया जाता है।

जैसे—हम जानते हैं कि वह बड़े बुद्धिमान् (!) हैं।

(५) प्रश्न-चिह्न (?)

१—किसी प्रश्नबोधक वाक्य के अन्त में लगाया जाता है।

जैसे—क्या आप मथुरा के कविरत्न श्री नवनीतजी चतुर्वेदी को जानते हैं ?

२—यह चिह्न कभी-कभी संदेहात्मक वाक्य या शब्द के अन्त में लगाया जाता है।

जैसे—(१) मोहन बहरा है ?

(२) लोग उन्हें बुद्धिमान् (?) कहते हैं।

(५) अपूर्ण विराम (:)

आदेशक का जिन स्थानों में प्रयोग होता है, बहुधा उन्हीं स्थानों पर अपूर्ण-विराम का भी प्रयोग किया जाता है। हिन्दी में अपूर्ण-विराम से विसर्ग का सन्देह होता है, इसलिए इस चिह्न का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए। बहुधा अपूर्ण-विराम के आगे आदेशक का भी प्रयोग किया जाता है, ये दोनों मिलकर ऐसा(: —) चिह्न हो जाता है—यह निर्देश करता है कि नीचे या आगे देखो।

जैसे—व्याख्यान दाताओं के नामः—

(१) पं० रामप्रसाद

(२) ला० भोलानाथ

(३) श्री० भवानीदयाल

(४) मुं० अमानुल्ला खाँ

(७) आदेशक (—)

१—वाक्य के बीच में उसके कहीं एक-दम टटने पर यह चिह्न लगाया जाता है।

जैसे—राजा जनक के दूत—एलची नहीं धावक, हरकारे—
राम-लक्ष्मण के समाचार ले कर अयोध्या में आये।

२—कोई बात प्रसंग में स्पष्ट करने के लिए बहुधा दूसरी बात कही जाती है; ऐसी अवस्था में उसे वाक्य में दोनों ओर से आदेशक चिह्नों में घेर देते हैं।

जैसे—मान लो कि तुम्हारे पिता के पास बड़ा रुपया—दस-
पाँच लाख—है, तो क्या वह किसी को दे देंगे ?

३—वाक्य के किसी अंश पर यदि ज़ोर देना होता है, तो कभी-कभी उसके आगे आदेशक का प्रयोग किया जाता है।

जैसे—माता पिता के साथ जो द्रोह करेगा—अवश्य नष्ट होगा।

४—जब कोई किसी से कई बातें कहता है, तो उसकी कही हुई बातों को उद्धरण या अवतरण चिह्नों से न घेर कर बहुधा उनके पूर्व आदेशक का प्रयोग भी होता है।

जैसे—(क) मैं तुम से कहता हूँ—मैले वस्त्र मत पहनो,
गन्दे उपन्यास मत पढ़ो, सादा जीवन रक्खो
और सब की सेवा करो।

(ख) सत्य बोलो, हिंसा मत करो, माता पिता की
आज्ञा मानो, गुरू का आदर करो—ये ही
भगवान बुद्ध के उपदेश हैं।

५—उदाहरणार्थ दिये गये वाक्यों में, 'जैसे', 'यथा', आदि के बाद आदेशक का प्रयोग होना चाहिये

जैसे—(क) दो और दो चार होते हैं, जैसे—२ + २ = ४
(ख) महात्मा लोग धर्म के लिए प्राण देते हैं; यथा—
गुरू गोविन्दसिंह।

(८) अवतरण या उद्धरण चिह्न (“ ”)

१—किसी व्यक्ति के कहे हुए या लिखे हुए अथवा किसी पुस्तकादि से लिए हुए शब्दों को, ज्यों का त्यों लिखते समय इन चिह्नों से घेरकर लिखना चाहिये।

जैसे—(क) मोहन ने कहा, “आज हम न आवेंगे।”
(ख) “सत्य की सदा विजय होती है”—ये एक महात्मा के वचन हैं।

२—किसी शब्द, वाक्यांश या उपवाक्य पर ज़ोर देने के लिए, उसे कभी कभी इन चिह्नों से घेर कर रक्खा जाता है।

जैसे—“यह जीवन क्षणिक है” इसका तुम्हें कोई ज्ञान नहीं।

(९) कोष्टक ( )

१—एक वाक्य के अन्तर्गत उन शब्दों, वाक्यांशों या उपवाक्यों को, जो उसकी गठन के बाहर हैं, कोष्टक के अन्दर रखते हैं।

जैसे—रामेश्वर (कोई-कोई उसे रमेश भी कहते हैं) एक विचित्र (अजीब) आदमी है।

२—क्रम-बोधक संख्याएँ आदि भी कोष्टक में रक्खी जाती हैं।

जैसे—(१) भोलानाथ कक्षा १०—व्याख्यानदाता
(२) चन्द्रभान ,, — कवि

(१०) योजक (-)

समास वाले शब्दों या पदों को परस्पर जोड़ने के लिए, उनके बीच में यह चिह्न रक्खा जाता है।

जैसे—रघु-वंश-मणि, दो-दो, रात-दिन आदि ।

(११) संक्षेप सूचक (०)

हिन्दी में कभी-कभी किसी शब्द को संक्षेप में लिखने के लिए, उसके एक-दो प्रारम्भ के अक्षर लिख कर आगे यह चिह्न लगा दिया जाता है ।

जैसे—१—छ० शिवाजी (छत्रपति शिवाजी)

२—म० बुद्ध (महात्मा बुद्ध) ।

अभ्यास

१—नीचे लिखे वाक्यों में यथास्थान उचित लेख-चिह्न का प्रयोग करो:—

(१) आप मुझे कब से जानते हैं मैं तो आपके यहाँ कभी आया-गया नहीं—

(२) आपने वह पुस्तक आद्योपान्त पढ़ ली—

(३) आश्चर्य है विद्याभूषण न्याय भूषण का भाई पास हो गया ।

(४) राम को मारना मोहन को गाली देना श्री निवास से लड़ना ये क्या अच्छी बातें हैं ।

(५) कविता कामिनी कान्त नाथूराम शंकर शर्मा इस कवि-सम्मेलन के सभापति होंगे—

(६) आजकल घर घर जाने के लिए मेरे पास समय नहीं ।

२—आदेशक व योजक चिह्नों में क्या भेद है ?

३—उदाहरण देकर दिखाओ कि एक ही बात के लिए आदेशक, अपूर्ण विराम और उद्धरण चिह्नों का प्रयोग किया जा सकता है ।

४—लेख-चिह्नों से क्या लाभ है ।

५—एक वाक्य बनाओ जिसमें कम से कम कोई पाँच लेख-चिह्न आजाएँ ।

अनुच्छेद

एक पूरे भाव का प्रकट करने के लिए कुछ शब्दों को क्रम से रखने से वाक्य बनता है। इसी प्रकार एक भाव से सम्बन्ध रखने वाले उसकी पुष्टि या स्पष्ट करने वाले, क्रम से एक जगह रक्खे हुए वाक्य-समूह को अनुच्छेद कहते हैं। इसी को कुछ लोग परिच्छेद भी कहते हैं।

जब हम कोई पुस्तक लिखते हैं तो उसको भिन्न-भिन्न प्रकरणों, परिच्छेदों या भागों में बाँटते हैं। एक-एक भाग में एक-एक विषय पर अलग-अलग प्रकाश डालते हैं। इसी प्रकार जब हम कोई निबन्ध या प्रकरण लिखें तो हमें चाहिए कि उस निबन्ध या प्रकरण को भी उसके अन्तर्गत आने वाले भिन्न-भिन्न विचारों के अनुसार भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों में बाँट दें। अनुच्छेदों को अँगरेज़ी में पैराग्राफ़ या पैरा कहते हैं। मान लो, तुम्हें "घोड़े" पर निबन्ध लिखना है। घोड़े के सम्बन्ध में विचार करने पर दो तीन मोटे-मोटे प्रश्न तुम्हारे हृदय में अवश्य उठेंगे, जिन्हें तुम समझने को चेष्टा करोगे। जैसे:--

(१) घोड़ा कैसा जानवर है ?

(२) अच्छे घोड़े कहाँ पाये जाते हैं ?

(३) घोड़ा कितना समझदार होता है ?

इस एक निबन्ध में तीन भिन्न-भिन्न प्रश्नों पर विचार करना होगा। इसलिए प्रत्येक विचार को अलग-अलग अनुच्छेदों में लिखो।

अनुच्छेद एक प्रकार के भावों और विचारों को दूसरे प्रकार के भावों और विचारों में मिल जाने से अलग

करता है। वह यह स्पष्ट बताता है कि तुम आगे बढ़ो, नये अनुच्छेदों में घुसो और दूसरे प्रकार के विचारों को पाओगे।

अनुच्छेदों का पारस्परिक सम्बन्ध

अनुच्छेद अलग-अलग होते हुए एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। जैसे वाक्य अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। एक अनुच्छेद में एक भाव होता है, परन्तु वह अपने पहले आये हुए और आगे आने वाले भावों से स्पष्ट सम्बन्ध रखता है। जैसे घोड़े वाले प्रत्येक अनुच्छेद परस्पर एक दूसरे से मिले हुए हैं। वे एक ही बात के भिन्न-भिन्न अंगों पर प्रकाश डालते हैं।

बहुधा ऐसा होता है कि एक अनुच्छेद का दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग किया जाता है; जैसे—'पहली बात यह है', 'दूसरी बात यह है', 'पहले', 'दूसरे', 'इसके अनन्तर', 'अस्तु', 'फिर', 'आगे', 'किन्तु', 'तथापि', 'कारण यह है', 'अन्त में', 'अतएव', 'सारांश यह है', 'अन्यथा', 'इस दशा में' इत्यादि।

अनुच्छेदों के आदि और अंत के वाक्य

बहुधा ऐसा होता है कि प्रत्येक अनुच्छेद के पहले वाक्य में सारे अनुच्छेद में आगे आने वाली बातों का सारांश आ जाता है, या उसका संकेत मिल जाता है। इसी प्रकार अन्त का वाक्य भी दूसरे वाक्यों से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। उस अन्तिम वाक्य का कर्त्तव्य यह है कि वह अनुच्छेद को पढ़कर आगे बढ़ने वाले पाठक पर सारे अनुच्छेद का प्रभाव जमा दे। सारांश यह है कि अनुच्छेद के आदि और अन्त के वाक्य जोरदार होने चाहिएँ।

अनुच्छेद की लम्बाई

अनुच्छेद की लम्बाई के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते। केवल यह ध्यान रक्खो कि जिस विचार का स्पष्टीकरण तुम एक परिच्छेद में कर रहे हो, उसमें उसी से सम्बन्ध रखने वाली बातें आएँ—विषयान्तर न होने पाये। केवल एक विचार को लिए हुए तुम्हारा अनुच्छेद यदि कुछ लम्बा हो जाए तो कोई चिन्ता की बात नहीं। तथापि यह न भूलना चाहिए कि बहुत लम्बे-लम्बे अनुच्छेद पढ़ने वाले को थका देते हैं, उसका जी ऊब जाता है, पढ़ने में अरुचि उत्पन्न हो जाती है।

इसलिए अनुच्छेद बहुत लम्बे न होने चाहिए। साथ में यह भी नहीं हो सकता कि सारे अनुच्छेद बराबर लम्बाई के हों। कारण यह है कि किसी में हमारे पास थोड़े विचार होते हैं और किसी में अधिक। किसी-किसी विचार पर हम अधिक जोर देते हैं और किसी पर कम। इस प्रकार अनुच्छेद की लम्बाई का निर्णय, विषय या विचार की गम्भीरता और गौरव से किया जा सकता है।

अनुच्छेद के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बातें नीचे क्रमशः दी जाती हैं।

(१) एक अनुच्छेद में एक विचार हो।

(२) उसके आदि और अन्त के वाक्य जोरदार हों।

(३) उसका दूसरे अनुच्छेदों से स्वाभाविक सम्बन्ध हो

(४) वह आवश्यकता से अधिक लम्बा न हो।

ये सारी बातें सीखने की सरल रीति यह है कि तुम दो-चार अच्छे लिखने वालों के निबन्ध या पुस्तकों को देखो और पूर्ण

मनोयोग पूर्वक समझने का यत्न करो कि उन्होंने इन नियमों का कैसे पालन किया है।

अभ्यास

१—निम्न लिखित शब्दों से, उनके नीचे दिये गये उदाहरण के समान एक अनुच्छेद की पूर्ति करोः—

(अ) ज़मींदार, हत्या, अभियोग, उत्सव, जीवन, मृत्यु।

(इ) हँसना, अनिष्ट, दुखी होना, प्रसन्न होना, मूर्खता करना।

(उ) अच्छाई, बुराई, भला, सेवा, भक्ति, सिद्धान्त।

(ऊ) यमुना तट, मन, समीर, आनन्द, मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर, नौका, उस पार, डेढ़ घण्टा।

(ए) विद्यार्थी-जीवन, परिश्रम, फ़ेल होना, निरुत्साह, पीछे रहना।

उदाहरणः—

शब्दः—धर्मात्मा, दृढ़, रुष्ट, निश्चय, प्रयत्न, तपस्या।

अनुच्छेद—भरत बड़े धर्मात्मा और दृढ़ स्वभाव के व्यक्ति थे। उनको अयोध्या लौटने पर जब रामचन्द्र जी के बन गमन की बात मालूम हुई तो वह अपनी माता कैकेयी से बड़े रुष्ट हुए। उन्होंने निश्चय किया कि "मैं रामचन्द्र जी को खोज कर उन्हें वापिस कर लाने का प्रयत्न करूँगा, और यदि उन्होंने लौटना स्वीकार न किया तो सारा जीवन तपस्या में व्यतीत कर दूँगा।

२—निम्न लिखित मुहाविरों को उनके नीचे दिये हुए उदाहरणों के समान प्रयोग में लाकर एक अनुच्छेद की पूर्ति करोः—

(अ) सिर चढ़ाना, आँखें लाल करना, कान में तेल डाल कर बैठना; नाक रगड़ना, नाक में दम आना।

(इ) मुँह खोलना, गला घोटना, हाथ खींचना।

(उ) तूती बोलना, दम मारना, नाक रगड़ना, पाया टेकना, आस्मान से बातें करना।

(ए) पाँव फूँक-फूँक कर रखना, नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़, भेड़िया-धसान, पिण्ड छुड़ाना, नानी याद आना।

(ओ) दिन दहाड़े लूट, तिल का पहाड़, चुटकी लेना, गाल बजाना।

उदाहरणः—नाक काटना, पानी उतरना, सिर चढ़ना, सिर मारना।

"सम्मान युक्त जीवन ही जीवन है। जिसका सम्मान नष्ट हो गया उसकी मानो नाक कट गई। फिर क्या है। जिस का पानी उतर गया वह मनुष्य ही क्या। उससे कुत्ते और बिल्ली अच्छे। ऐसे आदमी के नीच-से-नीच सिर चढ़ने को तैयार हो जाते हैं। एक बार आबरू गई फिर हाथ नहीं आती, चाहे कोई हज़ार सिर मारे।"

३—निम्न लिखित कहावतों से नीचे दिए हुए उदाहरण के सदृश अनुच्छेद-पूर्ति करो।

(अ) भई गति साँप छछूँदर केरी। न निगलते बनै न उगलते बनै। घर में भूँजी भाँग नहीं। धोती के अन्दर सब नंगे हैं। घर-घर में मिट्टी के चूल्हे हैं।

(इ) आम के आम गुठली के दाम, जो धन दीखै जात आधा लीजै बाँट।

(उ) खग जाने खग ही की भाषा, हीरे की परख जौहरी जानै; हाथी के दाँत दिखाने के और, खाने के और।

(ए) मन चंगा तो कठौती में गंगा; न नौ मन तेल न राधा नाचें; मरी गाय बाम्हन के हाथ।

(ओ) जैसा देश वैसा भेस; सिर मुड़ाते ओले पड़े; पाँचों उँगली घी में; अंधे के हाथ बटेर लगी।

उदाहरण:—साँच को आँच नहीं, जैसी करनी पार उतरनी, झूँठी गवाही दिलवाना कितना बड़ा पाप है। क्या सच्ची बात कहने से कोई मुक़द्दमा नहीं जीत सकता ? हमने तो अब तक यही सुना था कि साँच को आँच नहीं। मान लो इस संसार में उन्होंने अपनी इस प्रकार बाज़ी जीत ली, किन्तु वहाँ क्या कहेंगे? वहाँ का तो नियम है, जैसी करनी पार उतरनी।"

४—अनुच्छेद किसे कहते हैं ? उसमें किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

५—सिद्ध करो "एक निबन्ध में अनुच्छेदों का वही स्थान है जो पुस्तकों में प्रकरणों या परिच्छेदों का।"

६—नीचे दिये हुए अवतरणों को अनुच्छेदों में विभक्त करो:—

(अ) १६ वर्ष की अवस्था में नेपोलियन को फ़ौज़ में नौकरी मिल गई। इस समय कार्सिका में स्वतन्त्रता की लहर फैल रही थी। नेपोलियन की इच्छा हुई कि स्वातन्त्र्य-संग्राम में मैं भी भाग लूँ। लेकिन इस समय फ़्रांस में बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। फ़्रांस में राजक्रान्ति हुई। फ़्रांस की प्रजा ने राजा को मार कर ख़ून की नदियाँ बहाईं। नेपोलियन का जीवन-चरित्र ट्यूलन की लड़ाई से शुरू होता है। इस युद्ध में अँगरेज़ों के जहाज़ी बेड़े को भगाने का श्रेय नेपोलियन को मिला और फ़्रांस में उसका सम्मान बढ़ गया। वह आस्ट्रिया के राजा के साथ युद्ध-करने के लिए भेजा गया। उसने अपनी संगठन-शक्ति और युद्ध-

कला-कुशलता से आस्ट्रिया के बड़े-बड़े सेनापतियों के दाँत खट्टे कर दिये। आस्ट्रिया का राजा फ्रांस की सरकार से सन्धि करने पर विवश हुआ।

(इ) बौने मनुष्य दो भागों में विभक्त हैं। एक दल के लोगों का रंग कुछ-कुछ लाल होता है, दूसरे दल वाले बेहद काले होते हैं। दोनों ही दल वालों का माथा छोटा और टुड्डी बड़ी होती है। तिस पर भी कितने ही बौनों का चेहरा सुन्दर होता है। बौनों के सरदार की एक स्त्री का रूप वर्णन करने योग्य है। उसके शरीर का रंग अत्यन्त उज्ज्वल था। वह गहने बहुत नहीं पहने थी। उस के छोटे-छोटे काले बालों में एक प्रकार का तेल लगा था। वह बड़ी शान्त थी। वह जिस काम पर लगती थी, उसे मनोयोग और अध्यवसायपूर्वक करती थी।

चौथा प्रकरण

शैली

शैली का सीधी-साधी भाषा में अर्थ है—'ढंग' उठने-बैठने, चलने-फिरने, बातचीत करने, तथा इसी प्रकार की अन्य सारी बातों में ढंग की बड़ी आवश्यकता है। जिसकी बातचीत का ढंग अच्छा होता है, उससे सभी वार्तालाप करना चाहते हैं; जिसके मिलने-जुलने का ढंग अच्छा होता है, उससे सभी मिलना चाहते हैं तथा जिसके बोलने का ढंग अच्छा होता है, उसके व्याख्यान को सभी सुनना चाहते हैं। इसी प्रकार जिसके लिखने का ढंग अच्छा होता है, उसके लिखे हुए को सभी पढ़ना चाहते हैं। इस

ढंग को रचना में 'शैली' कहते हैं। शैली अच्छी होने से किसी लिखी हुई बात के पढ़ने में विशेष आनन्द आता है, चाहे वह किसी मित्र का पत्र हो, या किसी दूकान का विज्ञापन, किसी समाचार-पत्र में छपी हुई गल्प हो, या किसी विद्यार्थी का लिखा हुआ निबन्ध या उसकी उत्तर-पुस्तक।

अच्छी शैली मन को आकर्षित करती है और पढ़ने की रुचि को बनाये रखती है। उससे लिखी हुई चीज़ में जान पड़ जाती है। अनेक शब्द जानने या सुन्दर वाक्य बनाने का ज्ञान रखने से ही कोई न अच्छा पत्र लिख सकता है, न अच्छी कहानी और न उत्तम निबन्ध। एक आदमी ईंट, चूना और पत्थर का ढेर लगा कर लम्बी-लम्बी दीवारें खड़ी करने, छतें पाटने, तथा सुन्दर मनोहर खम्भे और बेलें आदि बनाने का ज्ञान रख कर ही मनोहर भवन नहीं बना सकता। ये सारी बातें होने पर भी भवन सुन्दर बनाने के लिए सब से बड़ी आवश्यकता है ढंग की। अच्छे ढंग के छोटे और सादे मकान बहुत बड़े बेल-बूटों से सुसज्जित बेढंगे मकानों से अच्छे होते हैं। यही बात रचना के सम्बन्ध में कही जाती है।

पुस्तक के पूर्वार्द्ध में जिन बातों पर विचार हुआ है उनसे तुम्हें शब्दों और वाक्यों के सम्बन्ध में उनके इतिहास, गठन, शुद्धाशुद्ध रूप और अर्थों के भेद-अभेद का ज्ञान हुआ है। शब्द रचना-रूपी भवन के ईंट और पत्थर हैं, और ठीक-ठीक वाक्य बनाने का ज्ञान दीवार बनाने, छत पाटने और खम्भे खड़े करने आदि के ज्ञान के समान है। केवल शब्द-भण्डार और वाक्य-रचना के ज्ञान से रचना रूपी सुन्दर और उपयोगी भवन निर्माण नहीं किया जा सकता। उसके लिए शैली का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

शैली और आचार-विचार

कुछ विद्वानों का कहना है कि शैली का मनुष्य के निजी जीवन, उसके चरित्र और विचार से बड़ा सम्बन्ध है। एक अँग्रेजी विद्वान कहता है, "जिस मनुष्य के चरित्र में बल नहीं है, उसकी लेखनी में प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सकता। उत्तम लेख केवल उत्तम आचार-विचार से उत्पन्न होते हैं।" यह कथन सर्वथा सत्य है। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही कहता है या लिखता है, और वह सोचता वैसा ही है, जैसे उसके आचार व व्यवहार होते हैं। पवित्र और सरल विचार वाले आदमी की रचना-शैली में पवित्रता और सरलता स्पष्ट दिखाई देगी। इसी प्रकार वीरता के भाव रखने वाले आदमी की रचना-शैली अवश्य यह प्रकट करेगी कि लिखने वाला वीर है।

एक विद्वान् का कहना है कि शैली मनुष्य का सच्चा रूप है। इसका अभिप्राय है कि शैली से पता लग सकता है कि लिखने वाले के मस्तिष्क में कैसे भाव हैं, और वह किस प्रकार का आदमी है। इसलिए यदि इस शैली के पाठ के साथ विद्यार्थियों से यह कहा जाए कि 'अच्छी शैली जानने के लिए तुम स्वयं अच्छे बनो,' तो सर्वथा उचित है।

शैली-भेद

सब की शैली एक प्रकार की नहीं हो सकती। जैसे मनुष्य के रूप-रंग और आचार-विचार में परस्पर भेद होता है उसी प्रकार शैली में भी भेद होता है। लिखने में किसी को कोई ढंग अच्छा लगता है और किसी को कोई। इसलिए शैली का एक निश्चित रूप नहीं हो सकता।

किसी को बातें सीधे ढंग से करना अच्छा लगता है, और किसी को घुमा-फिरा कर अलङ्कार-पूर्ण भाषा में। फिर भी प्रत्येक दशा में दो बातें, जिनका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है, सदा ध्यान में रखना चाहिये और वे दोनों शैली की प्रधान विशेषताएँ हैं—

शैली के प्रधान अंग

(१) स्पष्टता, और (२) आकर्षण।

स्पष्टता

रचना अपने विचारों को दूसरे तक पहुँचाने का साधन है। मनुष्य अपने विचारों को दूसरे तक पहुँचाने के निमित्त ही लिखता है। यदि उसके लेख में स्पष्टता न होगी, तो दूसरा उसे समझ नहीं सकता। इसलिए लेखक को उसी शैली का अनुसरण करना चाहिए, जिससे पढ़ने वाला उसके भावों को ठीक-ठीक समझ सके। स्पष्टता के सिद्धान्त का पालन करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस रचना का पढ़ने वाला कौन है। यह बात पत्र, कहानी, विज्ञापन, व्याख्यान और निबन्ध सभी के लिए समान रूप में महत्व रखती है। एक विज्ञान-वेत्ता यदि दूसरे वैज्ञानिक के लिए कुछ लिखे तो अनेक प्रकार के सांकेतिक शब्दों से काम ले सकता है। उसकी रचना फिर भी स्पष्ट रह सकती है। किन्तु वही लेख दूसरे लोगों के लिए सर्वथा अस्पष्ट होगा। दूसरे मनुष्य जो वैज्ञानिक नहीं हैं, उनके लिए सारी बातें साफ़ साफ़ समझा कर लिखनी पड़ेंगी। ऐसी अवस्था में दोनों ही लेख पढ़ने वाले की योग्यता के अनुसार स्पष्ट और अस्पष्ट भी कहे जाएँगे।

अक्षर, शब्द और वाक्यों की स्पष्टता

स्पष्टता में इन सारी बातों की आवश्यकता है कि अक्षर सुन्दर हों जो लेखक के भावों को ठीक-ठीक प्रकट करें। और वाक्य भी ऐसे हों कि जिनमें अर्थ उलझ न जाएँ। सरल वाक्य लिखना सब से उत्तम है। किन्तु यदि कहीं बिना मिश्र या संयुक्त वाक्य के काम न चले तो मिश्र या संयुक्त वाक्य भी लिखना चाहिए। किन्तु ऐसे वाक्यों में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। ऐसे वाक्य भी जहाँ तक छोटे हों अच्छा है। उनका गठन सीधा-सादा और स्पष्ट होना चाहिए। जिस उपवाक्य या वाक्यांश का जिससे सम्बन्ध हो उसे उसी के स्थान पर रखना चाहिए। बहुधा ऐसा होता है कि ऐसे लम्बे-लम्बे वाक्य स्पष्ट नहीं होते। उनमें उपवाक्यों और वाक्यांशों का परस्पर सम्बन्ध सन्दिग्ध और अव्यक्त होता है; जैसे—मोहन पहले की तरह जो कलकत्ते में आजकल थियेटर की कम्पनी आई है नौकर है; देखो, वह तीन दिन के लिए यहाँ आया और घुड़दौड़ में इनाम जीता। यह संदिग्ध और अव्यक्त वाक्य है। इसमें पता नहीं कि 'पहले की तरह; 'कम्पनी के लिए आया है' या 'नौकर है' के लिए। दूसरे, इस वाक्य में 'जीता' क्रिया के कर्त्ता का पता नहीं। यदि मोहन या वह को कर्त्ता माना जाए तो उनके साथ 'ने' का चिह्न भी अवश्य होना चाहिए। ये सारी अशुद्धियाँ और भ्राँन्तियाँ केवल इसलिए हैं कि अनेक तरह की बातें एक ही वाक्य में ठूँसने का यत्न किया गया है। इसी को छोटे-छोटे वाक्यों में लिख देने से यह दोष मिट सकता है; जैसे—'मोहन पहले की तरह थियेटर की कंपनी में नौकर है। वह कम्पनी आजकल कलकत्ते आई हुई है। मोहन तीन दिन के लिए यहाँ आया और उसने वहाँ घुड़दौड़ में

इनाम जीता।' संदिग्ध, अनिश्चित और अव्यक्त बातें स्पष्टता के गुण को नष्ट कर देती हैं।

आकर्षण

शैली का दूसरा मुख्य गुण आकर्षण है। रचना स्पष्ट होने पर भी यदि उसमें पढ़ने वाले को आकर्षित करने का गुण नहीं है तो उसकी स्पष्टता का कोई मूल्य नहीं। किसी लेख के सामने आने पर उसकी दो-चार लाइन पढ़ते ही पूरा पढ़ जाने की इच्छा उत्पन्न हो और अन्त तक पढ़ने में रुचि बनी रहे, यही आकर्षण है।

आकर्षण को हम दो भागों में बाँट सकते हैं, एक 'ओज' और दूसरा 'लालित्य'। इनको अँग्रेजी में क्रम से Force और Elegance कहते हैं।

ओज

लेख को प्रभावशाली बनाना उसमें ओज उत्पन्न करता है। ओज का अर्थ है 'बल'। जिस रचना में बल नहीं है वह वैसी ही निकम्मी है, जैसा निर्बल आदमी। रचना में यह गुण अवश्य होना चाहिए कि जिस उद्देश्य से वह लिखी गई हो उस उद्देश्य को पूरा करने की उसमें शक्ति हो। उसको पढ़ कर मनुष्य प्रभावित हो जाए। यदि कोई लेख ढंग से लिखा गया है, उसमें व्याकरण आदि की अशुद्धियाँ नहीं हैं, उसकी भाषा स्पष्ट है तथा उसके शब्द चुन कर रक्खे गये हैं तो उसमें ओज स्वतः ही उत्पन्न हो जाएगा। किन्तु यह आवश्यक है कि उसे लेखक ने अपने हृदय के सच्चे भावों के अनुकूल लिखा हो। हृदय से जो सच्ची बात निकलती है, उसका असर होता है।

इसके अतिरिक्त बहुधा अलंकृत वाक्य से भी रचना में ओज उत्पन्न हो जाता है। उपमा; रूपक अथवा उत्प्रेक्षा आदि

अलंकारों के प्रयोग से बात ज़ोरदार हो जाती है; जैसे—(१) पढ़ने से बड़ा लाभ है, (२) इस संसार में और कोई जीवन नहीं है, जीवन है तो पढ़ना। (३) सरस्वती की आराधना करने से लक्ष्मी और शक्ति दोनों प्रसन्न रहती हैं। इसमें पहला वाक्य साधारण है। दूसरे और तीसरे वाक्यों में क्रम से अपन्हुति और रूपक अलंकारों का प्रयोग किया गया है। इन अलंकारों के कारण दूसरे और तीसरे वाक्य पहले की अपेक्षा अधिक ओज रखते हैं। अलंकारों का प्रयोग करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यद्यपि हम लोग नित्य की बात-चीत और लिखने-लिखाने में कुछ-न-कुछ अलंकारों का प्रयोग अवश्य करते हैं, फिर भी ऐसी भूलें हो जाती हैं जिन पर हमारा ध्यान भी नहीं जाता। बहुत लम्बे-लम्बे अलंकृत वाक्य बनाने में उपमेय और उपमान की समानता का ध्यान नहीं रहता; जैसे—(१) नियमित आचारयुक्त जीवन सुख शान्ति और उल्लास की जननी है। इसमें पुल्लिंग जीवन की उपमा जननी से दी गई है, यह भूल है। (२) प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख आपत्तियों का एक पहाड़ है, उसी में उसकी सफलता का पुण्य फल छिपा है; जिसकी जीवन नौका इस बाधा को पार कर लेती है उसी को इस पुण्य फल की प्राप्ति होती है। इस वाक्य में एक स्थान पर आपत्तियों की उपमा पहाड़ से दी गई है। दूसरी जगह जीवन की नौका का रूप दिया गया है। पर्वत के पार करने में नौका की क्या आवश्यकता है? यहाँ रूपक बिल्कुल अशुद्ध है। इसी प्रकार विद्यार्थी अलंकारों के प्रयोग में अनेक अशुद्धियाँ किया करते हैं। इसलिए अलंकृत वाक्यों को समझ-बूझ कर लिखना चाहिए और उन्हें ऐसी भूलों से बचाना चाहिए।

बहुधा एक वाक्य के शब्दों की जगह बदल देने से उसके अर्थों में बल उत्पन्न हो जाता है; जैसे—'तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ', तथा 'तुम नहीं जानते हो कि मैं हूँ कौन।'—इन दोनों में दूसरा वाक्य ओजपूर्ण है। इसी प्रकार बहुधा एक ही बात को व्यक्त करने के ढंग में कुछ परिवर्तन कर देने से भी रचना में ओज उत्पन्न हो जाता है; जैसे—(१) तलवार से हमारी रक्षा होती है। यह साधारण वाक्य है। (२) ऐ तलवार! तू हमारी रक्षक है। (३) कौन नहीं जानता कि तलवार हमारी रक्षक है। (४) हमारी रक्षा करती है तलवार। पिछले तीनों वाक्यों में ओज है। ओज उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी एक ही शब्द या वाक्यांश या उपवाक्य को कई बार दुहराना पड़ता है; जैसे (१) प्रयत्न ही आत्मा की शिक्षा और चरित्र की उन्नति का प्रधान कारण है। प्रयत्न ही मनुष्य को धैर्य और शान्ति रखने की शिक्षा देता है। प्रयत्न ही से कर्त्तव्य स्थिर रखने की शिक्षा मिलती है।

(आदर्श-जीवन से)

२--कवित्व को सुन्दर कहना कवित्व का अनादर करना है। कवित्व ही समस्त सुन्दर वस्तुओं का मूल है। कवित्व ने ही सुन्दर को सुन्दरता दी है। कवित्व अन्धकार में दीपक है। कवित्व दरिद्र का धन है।

(हिन्दी गद्य-संग्रह से)

इन दोनों उदाहरणों में पहले में 'प्रयत्न ही' और दूसरे में 'कवित्व' को बार-बार ओज के उद्देश्य से दुहराया गया है। इसको पुनरुक्ति कहते हैं यही दूसरे स्थान पर दोष गिना जाता है। जहाँ ओज के विचार से पुनरुक्ति नहीं होती, वहाँ वह स्वतः बुरी मालूम होती है।

व्यर्थ एक शब्द का बार-बार आना कानों को बुरा मालूम होता है:—

जैसे:—१—*जिसको* मुनीश्वर, धीर योगीश्वर और सिद्ध लोग *जिसको* शुद्ध मन से याद करते हैं। (एक विद्यार्थी के लेख से)

२—पहले ज़माने में हवाई जहाज़ नहीं थे और लड़ाइय थल पर और जल पर हुआ करती थीं। *लेकिन* इस के लिए बड़े प्रयोगों की आवश्यकता थी। *लेकिन* उन्होंने उसकी हल्की शकल बनाई और उस पर बैठ कर, उड़ना शुरू किया। *लेकिन* उसमें कई आदमियों की जान गई, जो उसके मालिक थे।

(एक विद्यार्थी के लेख से)

इन दोनों उदाहरणों में जिसको और लेकिन की पुनरुक्ति है, जो ओज की दृष्टि से नहीं की गई है। यह कानों को बुरी मालूम होती है। यह दोष है। इसे पुनरुक्ति-दोष कहते हैं।

लालित्य

लालित्य या व्यञ्जकता आकर्षण का दूसरा अंग है। लालित्य ही आकर्षण का मुख्य कारण है। लालित्य सारी रचना में व्याप्त होना चाहिये। रचना की और सारी बातें ठीक होने पर उसमें लालित्य हो जाना स्वाभाविक है। उसके उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित थोड़ी सी बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए:—

(१) सारे लेख में भाषा एक ढंग की हो। उस में सब बातें एक दूसरे से वैसे ही सम्बन्ध रखती हों, जैसे एक जंज़ीर का प्रत्येक कड़ा एक दूसरे से सम्बन्ध रखता है। ऐसी अवस्था में उसका पढ़ने वाला क्रमशः चढ़ता या उतरता चला जाएगा। उसे ऐसा मालूम होगा कि भावों का एक निर्मल स्रोत बह रहा है।

(२) लालित्य उत्पन्न करने के लिए साधारण बोल-चाल के मुहाविरों, कहावतों, उक्तियों या उद्धरणों का प्रयोग करना चाहिए; जैसे:—१—यह बात सुन कर उसका रंग खिल गया। २—आजकल हम हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। ३—मेरे हाल पर तुम आँसू क्यों बहाते हो ? ३—ऊँची दूकान फीके पकवान का सा हाल था। वही बातें घर बैठे मिल सकती थीं। मगर क्या किया जाए; दूर के ढोल सुहावने, दौड़े गए।

(३) जहाँ तक हो प्रत्येक बात को अत्यन्त निश्चित रूप देना चाहिए। इससे पाठक के सामने एक चित्र सा खिंच जाता है।

जैसे—'वह बड़े ठाट-बाट से आये' और 'वह कोट पैंट पहने, सर पर टोप रक्खे, ऐनक लगाए, और हाथ में बेत लिये हुए आये। इन दोनों वाक्यां में दूसरे वाक्य में एक निश्चित रूप होने से पढ़ने वालों की कल्पना जाग्रत होती है, और उसके सामने एक रूप खड़ा हो जाता है। इसमें उसे विशेष आनन्द आता है।

(५) रचना में विषयान्तर की बातें तथा मर्यादा के बाहर लेख का लम्बा होना, उसके लालित्य को नष्ट कर देता है। इस लिए लालित्य की रक्षा करने के लिए सदा यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विषय के बाहर की बातें उसमें न आएँ और उसका कोई अंश अनावश्यक लम्बा न हो।

(६) घरेलू बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए; जैसे:—

(१) संसार में अँधेरा *दीख पड़ता* है।

(२) भगवान ने लीलाएँ *करी थीं*।

(३) जो कुछ लेना *होय तो* ले लो।

(४) उसने मरे हुओं पर *मार मारी* ।

(विद्यार्थियों के लेखों से)

इन सारी बातों को ध्यान में रखने से लिखने की उत्तम-से-उत्तम शैली का अभ्यास किया जा सकता है।

यही उत्तम शैली के मुख्य गुण हैं। रचना के सारे अँगों में चाहे वह पत्र, गल्प, वार्तालाप, विज्ञापन, व्याख्या आदि कोई हो इन सारी बातों की आवश्यकता होगी।

पत्र-लेखन

पत्र हमारी नित्य-प्रति की आवश्यकता है। उनके द्वारा हमारा जितना काम चलता है, उसका अनुमान हम तभी कर सकते हैं जब कम-से-कम एक सप्ताह डाक का काम रुक जाए। पत्रों के द्वारा हम घर बैठे मित्रों और सम्बन्धियों से बात करते हैं, बड़े-से-बड़े व्यापार चलाते हैं और जीवन के अनेक प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं। बालक लिखना-पढ़ना सीखते ही सब से पहले पत्र लिखना सीखना चाहते हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि पत्र लिखना बिल्कुल उस श्रेणी की रचना है, जो प्रारम्भिक शिक्षा पाने वाले बालकों को ही सीखना चाहिए। पत्र लिखना जितना सरल मालूम होता है वास्तव में उतना ही कठिन है। ऊँची कक्षा के विद्यार्थियों को प्रत्येक प्रकार के पत्र लिखने का अभ्यास होना चाहिए, चाहे वे निजी हों या व्यावसायिक। ये पत्रों के दो भेद हैं। पत्रों में गम्भीरता, गौरव अथवा सौष्ठव उत्पन्न करने के लिए रचना के पूर्वोल्लिखित दोनों गुण स्पष्टता और आकर्षण का सदा ध्यान रखना चाहिए।

हिन्दी में पत्र लिखने की दो रीतियाँ प्रचलित हैं:—

(१) पुरानी रीति (२) नई अथवा अंगरेज़ी रीति।

नई अथवा पुरानी दोनों प्रकार की प्रणालियों में ये बातें अवश्य आ जाती हैं कि (१) पत्र-लेखक कौन है ? (२) कहाँ से लिखता है ? (३) किस को लिखता है ? (४) जिसको लिखता है वह कहाँ रहता है ? (५) पत्र कब लिखा गया ? (६) कुछ प्रारम्भिक शिष्टाचार के सम्बोधन के शब्द जिसे प्रशस्ति कहते हैं। (७) हाल । (८) कुछ समाप्ति पर शिष्टाचार पूर्वक बिदा के शब्द।

पुराने ढंग के पत्रों में मिति और हाल को छोड़कर सभी बातें पत्र के आरम्भ में प्रशस्ति में लिख दी जाती हैं। प्रशस्ति के बाद हाल और अन्त में 'इति शुभम्' लिख कर मिति लिखी जाती है। बहुधा प्रशस्ति में शिष्टाचार के शब्दों की भरमार रहती है। अब इस रीति के पत्रों का प्रचार घट रहा है। किन्तु फिर भी इसका प्रचार अभी कम नहीं है। व्यापार-सम्बन्धी पत्र साधारणतया अब भी इसी ढंग से लिखे जाते हैं।

नये ढंग के पत्रों में प्रशस्ति बहुत थोड़ी होती है और तुरन्त मतलब की बातें प्रारम्भ कर दी जाती हैं। नीचे पुराने ढंग के पत्र का एक उदाहरण दिया जाता है।

स्वस्ति श्री श्री श्री सर्वोपमान विराजमान योग्य सकलगुण-निधान ! विद्वद्वृन्द शिरोमणि मित्रवर श्रीमान् लाला हरिप्रसाद मथुरा निवासी को रामस्वरूप का अलीगढ़ से नमस्कार प्राप्त हो। अत्र कुशलं तत्रास्तु। आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ, समाचार जाना गया। चि० रामकृष्ण के पुत्र-जन्म के शुभ संवाद से

मन को विशेष आनन्द हुआ। आशा है, ऐसे ही अपने लोगों के कुशल वृत्त से सूचित करने की कृपा करते रहेंगे। श्री चाचाजी से हमारा दण्डवत् प्रणाम यथा योग्य कहना। इति शुभम्।

(मिति बैसाख सुदि पंचमी, संवत् १९८४ वि०)

ऐसे पत्रों में बड़ों को छः श्री, मालिक को पाँच, शत्रु को चार, मित्र को तीन, नौकर को दो और पुत्र, स्त्री अथवा और छोटों को एक श्री लिखने की प्रणाली है। व्यापारियों के पत्रों में भाषा कुछ भिन्न होती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ऐसे पत्रों में स्थान का निर्देश नहीं करते।

नीचे एक नवीन ढंग का पत्र भी उदाहरणार्थ दिया जाता है। ऐसे पत्रों के पाँच अंश होते हैं, (१) स्थान लिखने वाले का, (२) तिथि, (३) प्रशस्ति, (४) हाल, (५) समाप्ति।

इन सब के लिखने के अलग-अलग निश्चित स्थान हैं।

उदाहरण (१)

ओ३म्

पत्र पिता के नाम

(१) स्थान — प्रयाग,
(२) तिथि — ३१ दिसम्बर सन् २८ ई०।

(३) प्रशस्ति — पूज्य पिताजी !
नमस्ते

आपके आशीर्वाद से सुखपूर्वक पहुँच गया। रास्ते में कोई कष्ट नहीं हुआ। गाड़ी खाली थी। आनन्द से सोता हुआ चला आया।

आज्ञानुसार श्री चिन्तामणि जी के यहाँ ठहरा। आपकी सज्जनता और स्नेहशीलता का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

(४) हाल

कल कालिज खुल जाएगा, आशा है बोर्डिङ्ग में जगह मिल जायगी। जगह मिलते ही मैं वहाँ उठ जाऊँगा।

मुझे यह नगर बड़ा सुन्दर मालूम होता है। अभी कहीं विशेष आ-जा नहीं सका।

कल कालिज में नाम लिख जाने के बाद आगे फिर लिखूँगा। कृपा करके पत्रोत्तर शीघ्र दीजिएगा।

(५) समाप्ति

आपका
आज्ञाकारी पुत्र
'रमेश'

उदाहरण (२)

* ओ३म् *

पत्र मित्र के नाम

मथुरा
२२ मार्च, सन् २६।

प्रिय मोहन !

तुम्हारा पत्र ठीक प्रतीक्षा में मिला। पढ़कर सुख और दुख दोनों ही हुए। सुख इसलिए कि अब तुम्हारी परीक्षा शीघ्र

ही समाप्त होगी, और हमारी मिलने की चिर-अभिलाषा पूरी होगी। अब साल भर बाद हम और तुम मिलेंगे। दुःख इस-लिए कि तुम अपने पर्चों से सन्तुष्ट नहीं हो। इसमें सन्देह नहीं कि परीक्षा तुम्हारी सब से प्रिय वस्तु है। तुम परीक्षा के पीछे दीवाने रहते हो, और उसकी प्रिय सुहृद के समान बाट देखते हो। फिर भी हताश होने की कोई बात नहीं। यह तो निश्चय है कि पास हो जाओगे। प्रथम और द्वितीय श्रेणी न सही। तुम जानते हो कि इधर कितने कष्ट रहे। पढ़ने में मेरा भी बिल्कुल मन न लगा। जैसे-तैसे समय कट गया। परीक्षा समाप्त हो गई। फल भगवान् के हाथ है। अब और कुछ न पूछो। दस दिन बाद मिलेंगे। तभी सारी बातें होंगी।

तुम्हारा,
केशव—

नीचे प्रशस्ति और समाप्ति के कुछ शब्द दिये जाते हैं:—

लेख्य	प्रशस्ति	समाप्ति
पिता, गुरु तथा अन्य	पूज्य	भवदीय
बड़ों को	श्रद्धास्पद	कृपाकांक्षी,
	पूज्यास्पद	दासानुदास,
	मान्यवर	आज्ञाकारी इत्यादि
मित्र को	प्रियवर	तुम्हारा हितैषी,
	प्रिय सुहृद	प्रेमपात्र,
	मित्रवर	स्नेही,
	प्यारे 'कृष्ण'	मित्र इत्यादि
पुत्र को या छोटों को	चिरञ्जीव	तुम्हारा हितैषी,
	प्रिय "पत्र"	शुभेच्छु

	आयुष्मान्	शुभचिन्तक
	स्नेहास्पद	शुभाकांक्षी
पति को	प्राणनाथ	तुम्हारी या आपकी
	प्राणेश्वर	दासी,
	प्राणधन	सेविका, इत्यादि
	प्राणाधार	या आपकी कुसुम,
	जीवन-धन	अनुगामिनी
	हृदय-धन	इत्यादि
स्त्री को	प्यारी 'सरोजनी'	तुम्हारा अभिन्न,
	प्राणेश्वरी	जीवनधन,
	प्राणवल्लभे	प्राणेश्वर

पत्र लिखते समय निम्नलिखित कुछ बातों को ध्यान में रक्खो:—

(१) उत्तर लिखना है तो आये हुए पत्र को पढ़ो और उत्तर देने योग्य बातें अलग नोट कर लो।

(२) जो कुछ तुम्हें अपनी ओर से लिखना है, उसे भी नोट कर लो।

(३) फिर एक-एक बात को अलग-अलग परिच्छेदों में पूरी लिखो।

(४) पत्र बहुत बढ़ाने का यत्न मत करो।

(५) भाषा स्पष्ट और मधुर हो।

(६) पत्र में वही स्वाभाविकता हो जो तुम्हारी बात-चीत में होती है।

पता—

पत्र का पता सदा स्पष्ट लिखना चाहिये—

उदाहरण (१)

टिकट

सेवा में—

श्रीयुत बा० मदनलाल जी जैन,
एम. ए. एल टी,
अध्यापक
गवर्नमेण्ट हाई स्कूल,
मथुरा।

प्रेषक—
बाबूलाल सिंहल
बी. एस-सी., एल-एल. बी.
प्रयाग आइस एण्ड आएल मिल्स
पानदरीबा,
अलीगढ़।

उदाहरण (२)

टिकट

श्रीमती सुभद्रा देवी
मार्फ़त केसरी सोप कम्पनी,
मथुरा।

प्रेषिका—
सौभाग्यवती देवी
शीतलागली,
आगरा।

अभ्यास

१—एक मित्र को पत्र लिखो और बताओ कि तुम गर्मी की छुट्टियों में क्या करोगे ?

२—अपने पिता को पत्र लिखो और ख़र्च मांगो—बताओ इतना रुपया तुम क्यों चाहते हो ?

३—किसी पत्र सम्पादक को पत्र लिखो और बताओ कि तुम्हारी परीक्षा के प्रश्न पत्रों में अमुक प्रश्न-पत्र बहुत कड़ा था।

४—अपने छोटे भाई को पत्र लिखो और समझाओ कि परीक्षा की ख़ूब तैयारी करे।

५—किसी अख़बार में छपे हुए विज्ञापन के आधार पर एक अध्यापक के स्थान के लिए एक प्रार्थना-पत्र लिखो।

अनुवाद

एक भाषा से दूसरी भाषा में किसी बात को बदल देने को 'अनुवाद करना' कहते हैं। इसी को दूसरे शब्दों में 'उल्था करना भी कहते हैं। अनुवाद की दो रीतियाँ हैं। एक तो एक-एक शब्द का, जैसे-का-तैसा अनुवाद करना, इसको शब्दानुवाद कहते हैं। दूसरे एक भाषा में कही हुई बात को पढ़कर उसके भावों को दूसरी भाषा में लिख देना, इसे भावानुवाद कहते हैं।

शब्दानुवाद से भावानुवाद अधिक सरल और सुन्दर होता है। शब्दानुवाद से स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। एक-एक शब्द का अनुवाद करने की अपेक्षा भावानुवाद करना अधिक अच्छा है। अनुवाद का वास्तविक उद्देश्य भी यही है एक भाषा में कही हुई बात का भाव दूसरी भाषा में प्रकट कर दिया जाए। आज-

कल अँगरेज़ी, बँगला आदि भाषाओं की अनेकों पुस्तकें हिन्दी में अनुवाद हो रही हैं।

अनुवाद करने वाले को उस भाषा का अच्छा ज्ञान होना चाहिए जिससे वह अनुवाद कर रहा है।

अनुवाद के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

उदाहरण १—

Telang was born on August 30th, 1850. He belonged to a middle class Hindu-family. His family was one of the twelve Saraswat families that had left their native home in Goa early in the last century to seek their fortune, in the busy and commercially growing city of Bombay. His father and mother were quite uneducated, as we understand education now.

शब्दानुवाद—१८५० की ३० अगस्त को तैलङ्ग का जन्म हुआ। उनका जन्म मध्यम श्रेणी के हिन्दू परिवार में हुआ था। उनका परिवार उन बारह सारस्वत परिवारों में से एक था, जिसने अपने आदिम निवास-स्थान गोवा को गत शताब्दि के प्रारम्भ में ही त्याग कर बम्बई जैसे व्यस्त और व्यापारिक उन्नत नगर को जीवकोपार्जन के उद्देश्य से प्रस्थान किया था। उनके माता-पिता शिक्षा के उस अर्थ में बिल्कुल अशिक्षित थे, जिस अर्थ में हम 'शिक्षा' शब्द का आज-कल प्रयोग करते हैं।

भावानुवाद—श्रीयुत तैलङ्ग का जन्म ३० अगस्त सन् १८५० ई० को एक साधारण हिन्दू परिवार में हुआ था। गत शताब्दि के प्रारम्भिक काल में ही द्रव्योपार्जन के विचार से गोआ के

बारह परिवार अपने जन्म-स्थान गोआ को छोड़कर बम्बई चले गये। बम्बई उस समय दिन-पर-दिन उन्नति करता जा रहा था। वहाँ काम की बड़ी धूमधाम थी। उन बारह परिवारों में एक इनका भी परिवार था। इनके माता-पिता पुरानी चाल के अनुसार पढ़े-लिखे थे। आधुनिक शिक्षा-पद्धित की तो उन्हें गन्ध तक नहीं लगी थी।

उदाहरण २—

मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणो,
हितैषिणो सन्ति न ते मनीषिणः।
सुहृच्च विद्वानपि दुर्लभो नृणां,
यथौषधं स्वादुहितञ्च दुर्लभं ॥

भावानुवाद—जो विद्वान् हैं, वे अपने हितैषी नहीं और जो अपना हित चाहने वाले हैं वे विद्वान् नहीं। ऐसे मनुष्य, जो विद्वान भी हों और अपना भला चाहने वाले अर्थात अपने मित्र भी हों, मिलना वैसे ही कठिन है, जैसे लाभ करने वाली और स्वादिष्ट औषधि।

अनुवाद में इन बातों पर सदा ध्यान रखना चाहिए:—

१–जिसका अनुवाद करना हो, उसे कई बार ध्यान से पढ़ो और उसके सारे भावों को समझ लो।

२–यदि शब्दानुवाद करने को कोई स्पष्ट न कहे तो भावानुवाद ही करो।

२–उसके वाक्यों के भाव को, जो मिश्र या संयुक्त वाक्यों में हैं और कुछ उलझे हुए हैं, तोड़ कर अपने छोटे-छोटे वाक्यों में लिखो।

४-ध्यान रक्खो कि तुम्हारे अनुवाद में उस लेख का, जिसका तुम अनुवाद करते हो, कोई भाव छूट न जाए।

५-जहाँ तक सम्भव हो अपनी भाषा सरल रक्खो, और वाक्य लम्बे और जटिल मत बनाओ।

६-ऐसे चुने हुए शब्दों को ढूँढ़ो, जो विशेष अवसर पर विशेष भावों को प्रकट करते हों।

७-तुम्हारे अनुवाद में वह स्वाभाविकता हो, जो मौलिक लिखे हुए लेखों में होती है, अर्थात् अनुवाद पढ़ने से यह न मालूम हो कि यह अनुवाद है। भाषा में वही सरल प्रवाह हो जो अपनी लिखी हुई चीज़ में होता है।

अभ्यास

१—भावानुवाद और शब्दानुवाद में क्या भेद है? उदाहरण देकर समझाओ।

२—निम्नलिखित पंक्तियों का शब्दानुवाद और भावानुवाद दोनों अलग-अलग करो।

(क) हम अपने रहनुमाओं की मुसल्लिमा क़ाबिलियत पर कोई हमला करना नहीं चाहते। न उनकी हुब्बुलवतनी या नेकनीयती में ही हमें कोई शक है। हम तसलीम करते हैं कि इस क़ौमी जंग में कमाण्डर बनने की उनमें पूरी अहलियत है। लेकिन उनकी फ़ौज के तरबियत-याफ़्ता न होने की ज़िम्मेदारी किस पर है?

(ख)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव,
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव! देव!

(ग) Except a living man, there is nothing more wonderful than a book—a message to us from the dead—from human souls, whom we never saw, who lived perhaps thousands of miles away; and yet these, on those little sheets of paper, speak to us, amuse us, vivify us, teach us, comfort us, open their hearts to us as brothers. I say we ought to revere books, to look at them as useful and mighty things.

(घ) A long trunk of the elephant is a wonderful example of divine wisdom. The neck of the four-footed animals is usually long, to enable them to reach their food without difficulty; but the elephant has a short neck, to enable him the more easily to support the weight of his huge head and heavy tusks. The difficulty of getting food is admirably overcome by his long trunk. The trunk of the elephant is to him what the neck is to other animals. It is also a nose to him for at the end of it there is hollow place like a cup, and in the bottom of the cup are two holes or nostrils, through which the animal smells and breathes. It is an arm and a hand too; and hence it has been said that the elephant carries a nose in his hand.

—

व्याख्या, वाच्यार्थ और भावार्थ

किसी दूसरे की कही हुई बात की व्याख्या कर देना, या उसका भावार्थ बता देना भी रचना का एक अंग है। व्याख्या और भावार्थ में परस्पर बड़ा भेद है। इनके अतिरिक्त वाच्यार्थ, तात्पर्यार्थ सरलार्थ, मतलब आदि और अनेक बातें हैं; जिनमें बहुत सी परस्पर एक हैं। वाच्यार्थ, सरलार्थ और अर्थ एक ही अर्थ रखते हैं। और भावार्थ, तात्पर्यार्थ और मतलब का भी अभिप्राय एक ही है। व्याख्या इन दोनों से भिन्न है। व्याख्या में वाच्यार्थ और भावार्थ दोनों शामिल हैं।

वाच्यार्थ

किसी दिए हुए अवतरण या छन्द के शब्दों से जो सीधे-सादे अर्थ निकलते हों, उन्हीं को वाच्यार्थ कहते हैं। वाच्यार्थ में कठिन-कठिन शब्दों के अर्थ अन्वय साफ़ कर दिये जाते हैं। जटिल वाक्यों में उलझे हुए भावों को सरल वाक्यों में बदल दिया जाता है। मुहाविरों और मोटे-मोटे अलंकारों को साधारण रीति से समझाया जाता है। किन्तु सब बातें उसी हद तक करना चाहिए, जिस हद तक दिये हुए शब्दों में वे मौजूद हों। छिपे हुए भावों को खोलना वाच्यार्थ का काम नहीं। अपनी ओर से कोई बात नहीं जोड़ना चाहिए, किन्तु साथ ही उस अवतरण या छन्द में आई हुई कोई बात छोड़ना भी नहीं चाहिए। यदि कोई प्रसंग की बात हो तो थोड़ा सा प्रसंग भी दे देना चाहिए।

जैसे—जाति न पूछो साध की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मोल करो तरवारि का, पड़ा रहन दो म्यान॥

वाच्यार्थ—साधु की जाति जानने की चेष्टा मत करो, उसके ज्ञान से लाभ उठाओ। जैसे तलवार का भाव-ताव करने में म्यान से क्या मतलब।

भावार्थ

भावार्थ या भाव को तात्पर्यार्थ या तात्पर्य, संक्षेपार्थ, आशय, अभिप्राय या मतलब भी कहते हैं। इनमें परस्पर बहुत सूक्ष्म भेद भी हो सकता है। किन्तु सब का लगभग एक ही अर्थ है। इन सब का अभिप्राय यह है कि दी हुई बात के आशय को लिखा जाए। इसमें शब्दार्थों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। केवल लेखक के भाव मात्र को अपने थोड़े से शब्दों में प्रकट करना चाहिए। लेखक का वह विचार, जिसे मन में रखकर उसने वह बात लिखी है, भावार्थ बताने वाला स्पष्ट कर देता है। भावार्थ बताने वाला शब्दों की ओर कम ध्यान देता है, अलङ्कारों आदि की गुत्थियाँ सुलझाने में वाक्यों की जटिलता, प्रसंग व अन्तर्कथाओं की विषमता मिटाने में वह बहुत नहीं अटकता। वह केवल भावों को खोजता है। वे भाव जो शब्दों के भीतर छिपे हैं, जो लेखक के हृदय की बातें हैं, वह अपने शब्दों में खोल कर रखता है। भावार्थ साधारण तौर पर लम्बा नहीं होता।

जैसे--बुन्द में सिन्धु समान, को अचरज कासे कहौं।
हेरनहार हेरान, रहिमन आपुहि आप में॥

भावार्थ--भगवान इस छोटे से संसार के कण-कण में मौजूद हैं। फिर भी उसे पाना बड़ा कठिन है।

व्याख्या

व्याख्या में वाच्यार्थ और भावार्थ दोनों ही शामिल हैं। व्याख्या में किसी दिए हुए छन्द या अवतरण का पूरी तरह प्रसंग या प्रकरण बताना चाहिए। कठिन-कठिन शब्दों और वाक्यों के अर्थों को

समझाना चाहिए। समझाने के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपनी ओर से उदाहरण भी देना चाहिए। बीच में आई हुई अन्तर्कथाओं को थोड़े शब्दों में लिखना चाहिए। अलङ्कारों को बड़े सरल ढंग से स्पष्ट समझा कर ऐसा लिख देना चाहिए कि उसे सब समझ सकें। उसमें बताना चाहिए, किसकी उपमा किससे दी गई है अथवा अमुक रूपक का कौन उपमेय और उपमान है। फिर इन गूढ़ार्थों अथवा व्यङ्गार्थों को लिखना चाहिए जो शब्दों में ऊपर से प्रकट नहीं होते अथवा जो लेखक के मन के छिपे हुए भाव हैं। उक्त अवतरण अथवा छन्द का आशय अथवा भावार्थ लिखने के बाद उससे यदि किसी प्रकार की शिक्षा मिलती हो तो उसे भी लिखना चाहिए। कभी-कभी तात्पर्यार्थ अथवा भावार्थ पहले लिखकर फिर और व्याख्या की जाती है और कभी-कभी और सारी व्याख्या करने के बाद तात्पर्यार्थ आदि लिखा जाता है। व्याख्या के अर्थ हैं विशद रूप से समझाना। इसमें लिखने में किफ़ायत नहीं करना चाहिए।

जैसे—धूल उड़ावत शीश पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पतनी तरी, तेहि ढूँढ़त गजराज।

व्याख्या—इस दोहे के कवि रहीम हैं। वह किसी हाथी को धूल उड़ाते हुए अथवा धूल को सूँड़ से उठा-उठा कर अपने शिर पर डालते हुए देख कर स्वयं ही प्रश्न करते हैं कि रहीम यह गजराज जो हाथियों में राजा के समान है, धूल उठा-उठा कर शिर पर क्यों डालता है। हाथियों में इतना श्रेष्ठ अर्थात् राजा के समान होकर भी यह धूल शिर पर डालता है। यहाँ राजा शब्द में व्यङ्ग है। राजा को श्रृङ्गार चाहिए, उसे संसार में क्या दुख हो सकता है। यह हाथी राजा के सदृश होकर भी ख़ाक छानता फिरता है। बड़े आश्चर्य की बात है।

फिर रहीम स्वयं उत्तर देते हैं। वह हाथी की इस लीला पर उत्प्रेक्षा करते हैं कि वह उस रज-कण को खोजने के लिए अपने शीश पर धूल डालता है, जो भगवान् रामचन्द्र के चरणों में थी, जिसके स्पर्शसे अहिल्या—मुनि-पत्नी—पत्थर से प्राणी बनीं और जीवन पाकर सदेह देव लोक गईं। हाथी बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लेता है। वह सोचता है कि उस रज को जो भगवान् के चरणों से झड़ कर इस अनन्त रज में मिल गई है ढूँढ़ना कोई सरल बात नहीं। इसलिए सारी धूल, जो उसके सम्मुख आती है, वह उठा कर अपने शिर पर डाल लेता है। इस प्रकार उस पवित्र रज का कण स्वतः ही जब कभी शिर पर पहुँच जाएगा तो उसे तार देगा।

बहुधा विद्यार्थियों को गद्य-अवतरण की व्याख्या करना किसी छन्द की व्याख्या करने से अधिक कठिन प्रतीत होता है। नीचे एक गद्य अवतरण, उसका वाच्यार्थ, भावार्थ और उसकी व्याख्या तीनों उदाहरणार्थ दिये जाते हैं। इससे इन का परस्पर भेद समझने में सुविधा होगी।

अवतरण—"तुलसी के मानस से शील-शक्ति-सौन्दर्यमयी स्वच्छ धारा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँच कर भगवान् के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया! राम-चरित्र की इसी जीवन-व्यापकता ने तुलसी की वाणी को राजा, रंक, धनी, दरिद्र, मूर्ख, पंडित सब के हृदय और कण्ठ में सब दिन के लिए बसा दिया।"

वाच्यार्थ—तुलसीदासजी के हृदय रूपी सरोवर से राम-चरित्र-मानस रूपी वह निर्मल प्रवाह बहा, जिसमें सीताजी तथा रामचन्द्रजी की सुन्दरता, भगवन् राम और लक्ष्मण आदि के बल और शील आदि के उत्कृष्टतम चित्र देखे जा सकते हैं। वह धारा

ग़रीब और अमीर प्रत्येक दशा के आदमी तक पहुँची और उस ने सब को भगवान् की झाँकी के दर्शन करने का सुयोग दिया।

भगवान् रामचन्द्रजी का जीवन बहुत व्यापक है। उस में दुख और सुख की सभी बातें आ गई हैं। उसमें वे सारी बातें आ गई है, जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में नित्य होती रहती हैं और इसी जीवन की व्यापकता के कारण सभी प्रकार के लोगों को, चाहे वह राजा हो या दरिद्र, धनाढ्य हो या दीन, बेपढ़ा हो या विद्वान्, तुलसीदास जी की रामायण में आनन्द आता है, और इसीलिए वह लोगों के हृदय में बस गई है और उसकी अनेक उक्तियाँ लोगों को सदा के लिए याद हो गई हैं।

भावार्थ—तुलसीदास जी की रामायण के द्वारा बच्चे से बूढ़े तक और भिखारी से राजा तक सभी भगवान् रामचन्द्र जी के जीवन-चरित्र को जान सके। उनके जीवन-चरित्र में सब के मतलब, रुचि और शिक्षा की बातें हैं। यही तुलसीकृत रामायण के इतने लोक-प्रिय होने का कारण है।

व्याख्या—श्रीयुत रामचन्द्र जी शुक्ल की पुस्तक 'तुलसीदास' का यह अवतकरण है। इन पंक्तियों में तुलसीदासजी की रामायण की आलोचना करते हुए लेखक ने यह बताने की चेष्टा की है कि तुलसी कृत रामायण का इतना आदर क्यों है। यहाँ रामायण की उपमा एक प्रवाह अथवा धारा से दी गई है। तुलसीदासजी के हृदय रूपी सरोवर से निकली हुई, वह धारा बड़ी ही निर्मल, शील-शक्ति-सौन्दर्यमयी है। उसमें राम, लक्ष्मण, भरत और सीता के शील के उत्कृष्ट से उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी शक्ति का उसके द्वारा पूरा परिचय प्राप्त होता है।

सुन्दरता तो रामायण में बाहर और भीतर मानों फटी पड़ती है। भाषा और काव्य की सुन्दरता के साथ-साथ सीता और राम के परम सुन्दररूप का उसमें चित्र खींचा गया है। वह धारा प्रत्येक स्थिति के मनुष्य अर्थात् अमीर और ग़रीब सब के यहाँ पहुँची है—अर्थात् रामायण बच्चे, बूढ़े, दरिद्र और धनवान् सबने पढ़ी और उसके द्वारा भगवान् की जीवन लीलाओं को देखा। इस प्रकार सभी ने भगवान् के स्वरूप की उस छाया के दर्शन किए जो इस निर्मल धारा के अन्तस्तल में देखी जा सकती है।

भगवान् राम ने जीवन की प्रत्येक अवस्था का आदर्श उपस्थित किया है। इसलिए रामायण में जीवन के प्रत्येक अंग की विवेचना मिलती है। दुख और सुख सभी अवस्थाओं की बातें उसमें मौजूद हैं। जीवन की इसी व्यापकता के कारण चाहे वह राजा हो या भिखारी, धनवान् हो या निर्धन, बेपढ़ा हो या विद्वान्—सभी को उसमें आनन्द आता है। वह सभी की रुचि के अनुकूल है। इसलिए उसकी अनेकों बातों को उन्होंने सदा के लिए हृदय में धारण कर लिया है। अनेकों उक्तियाँ उन्हें कण्ठ हैं और प्रत्येक अवसर पर वे उनका प्रयोग करते हैं।

निम्नलिखित बातें व्याख्या में ध्यान रखने योग्य हैं:—

१—अवतरण या छन्द, जिसकी व्याख्या करनी हो, उसे कई बार पढ़ो।

२—उस के वाच्यार्थ और भावार्थ दोनों को अलग-अलग समझ लो।

३—फिर अपने शब्दों में, अपने ढँग पर एक-एक अंश को स्पष्ट रीति से समझाते हुए आगे बढ़ो। व्याख्या के वाक्यों

की गठन जहाँ तक हो सके अवतरण के वाक्यों की गठन से भिन्न रक्खो।

४—यदि तुम्हें उसका प्रसङ्ग मालूम हो तो उसे भी लिखो।

५—यदि कोई शिक्षा उस अवतरण या छन्द से प्राप्त होती हों तो उसे भी लिखो।

६—जहाँ तक सम्भव हो सरल शब्दों और सरल वाक्यों का व्यवहार करो।

अभ्यास

१—भावार्थ और व्याख्या में परस्पर क्या सम्बन्ध है?

२—नीचे लिखे अवतरणों और शब्दों का वाच्यार्थ, भावार्थ और उनकी व्याख्या अलग-अलग लिखो।

अ—श्रीकृष्ण का चरित्र अत्यन्त पवित्र और निष्कलङ्क था। वे प्रेमी थे, रसिक थे और अपनी मधुर मुरली की तान में गोपों, गोपियों और गौओं को रिझाते थे। दीन, दुर्बलों की सहायता और दुष्टों का दमन करना तो उनका बचपन से ही स्वभाव था।

आ—संसार विचित्र है। एक ओर प्रकाश, दूसरी ओर अन्धकार; एक ओर धूप, दूसरी ओर मेघ; एक ओर आनन्द, दूसरी ओर विषाद; एक ओर सर्व पूजित श्रेष्ठ कवित्व, दूसरी ओर सर्व घृणित मिथ्या। कवित्व सुन्दर, मिथ्या कुत्सित। कवित्व सर्वत्र सम्मानित, मिथ्या सर्वत्र असम्मानित। इसी से मैं कहता हूँ, संसार विचित्र है।

इ— यह ठीक है पश्चिम बहुत ही कर रहा उत्कर्ष है।
पर पूर्व गुरु उसका वही गुरु वृद्ध भारतवर्ष है॥

ई— भली करत लागत बिलम, बिलम न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगें, ढाहत लगे न बार॥

उ— कुशल-कुशल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा मुई ना भय मुआ, कुशल कहाँ ते होय॥

ऊ— नहीं यह गगन-स्पर्शी धाम,
दीप्तमय रत्नों से अभिराम,
जहाँ प्रभु ले सकते विश्राम,

दैन्य दुख छाया यहाँ अपार।
आगए कैसे करुणागार॥

ए— जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई।
सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करु जस पावा।
सुनि कपि बचन बिहँस बहरावा॥

ऐ— रहिमन कहत जो पेट सों, तू न भई क्यों पीठ।
रीते मान बिगारई, भरे बिगारै दीठि॥

शीर्षक

तुम देखोगे कि हर एक पुस्तक में प्रत्येक परिच्छेद के ऊपर दो-चार शब्द मोटे मोटे अक्षरों में अवश्य लिखे रहते हैं। इन्हा शब्दों का हिन्दी में शीर्षक और अँगरेज़ी में Heading कहते हैं। शीर्षक से लेख का भाव प्रकट हो जाता है। उसका विषय तुरन्त समझ में आ जाता है। शीर्षक रचना रूपी दूकान का 'साइन-बोर्ड' है। उससे मामूली तौर पर यह मालूम हो जाता है कि इस दूकान में कैसे भाव रूपी पदार्थ मौजूद हैं।

इसलिए लेख का शीर्षक बहुत सोच-समझ कर निश्चय करना चाहिए। सब से बड़ी बात तो यह है कि रचना का सारा निचोड़ शीर्षक में छिपा हो। शीर्षक पढ़ते ही पता चल जाए कि अमुक लेख में क्या विषय है। अतएव शीर्षक छोटा, गम्भीर और भावपूर्ण होना चाहिए। 'मेरी कैलाश-यात्रा,' त्रैतवाद', 'कल्पना के चार चित्र', 'गीताञ्जलि', 'मेरे जीवन की दो बातें', 'हल्दी घाटी का युद्ध' 'हिन्दी-रचना' आदि शीर्षकों को पढ़ते ही पता चल जाता है कि एक यात्रा दूसरा दर्शन, तीसरा गद्य-काव्य, चौथा कविता, पाँचवाँ गल्प या जीवनी, छठा इतिहास, सातवाँ रचना विषय का वर्णन करता है।

अनुकूल शीर्षक चुनने की योग्यता उत्पन्न करने के लिए अच्छे-अच्छे लेखकों की रचनाओं को पढ़ते समय उनके निर्धारित शीर्षक की महत्ता और अनुकूलता तथा उनके औचित्य पर विचार करना चाहिए। किसी लेख का शीर्षक बिना पढ़े हुए उस लेख को पढ़कर अपनी ओर से उसका शीर्षक सोचने और फिर अपने सोचे हुए शीर्षक की उस लेखक के निर्धारित शीर्षक के साथ तुलना करने से अपने विचार की कमी और अनुकूलता का ज्ञान हो सकता है। अच्छे शीर्षक चुनने की योग्यता उत्पन्न करने का यह सरल उपाय है।

अभ्यास

१—शीर्षक किसे कहते हैं ?

२—किसी पुस्तक के एक लेख को पढ़ो और बताओ कि उसके शीर्षक में क्या कमी, विशेषता या अनुकूलता है ?

"आचरण बनाने के लिए उच्च आदर्शों की आवश्यकता ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार शरीर बनाने के लिए भोजन की

आवश्यकता है। अपने आदर्श को अपने सामने रक्खो और सबेरे रोज़ उस पर विचार करो और अपने में उन गुणों को लाने का प्रयत्न करो। तुम देखा कि धीरे-धीरे उस आदर्श की समानता तुम में आने लगी है या नहीं, और धीरे-धीरे बिना किसी अन्य विशेष उद्योग के तुम किसी अंश में ठीक वैसे ही होने लगे हो या नहीं जैसा कि तुम विचार करते हो। अपने आप तुम्हारा स्वभाव आदर्श के साँचे में ढल जाएगा।"

४—नीचे लिखे शीर्षकों में से प्रत्येक दशा में किस वर्णन का आभास मिलता है?

'मानसरोवर का मनोहर दृश्य', 'हम सौ वर्ष कैसे जीवें', 'गंगा-स्नान का मेला', 'एक बालक की वीरता'?

वार्तालाप

वार्तालाप भी रचना का एक अंग है। वार्तालाप के द्वारा भी मनोरंजन के साथ शिक्षा दी जा सकती है, कठिन से कठिन विषयों को समझाया जा सकता है। वार्तालाप की रचना से अभिप्राय यह है कि दो-चार पात्रों में परस्पर बात-चीत करा कर किसा बात का वर्णन किया जाए। इसी को अँगरेज़ी में Dialogue कहते हैं। गल्प, कहानी, उपन्यास, नाटक या प्रह-सन सभी में वार्तालाप की आवश्यकता होती है इसलिए स्वतंत्र रीति से छोटे-छोटे वार्तालाप लिखने का अभ्यास करना चाहिए।

वार्तालाप में भी गल्प की तरह पहले आधार और कथानक की आवश्यकता होती है। फिर कथानक के पात्रों में परस्पर केवल वार्तालाप कराकर सारे कथानक के विषय को समझाना

पड़ता है। स्थान और स्थिति को प्रारम्भ में अलग लिख दिया जाता है। इसी प्रकार कोई विशेष घटना होती है, तो उसे कोष्टक से घेर कर उसी स्थान पर लिख देते हैं, जहाँ वार्तालाप के मध्य में वह हुई हो।

नीचे उदाहरणार्थ एक वार्तालाप का आधार, कथानक और थोड़ी सी अपूर्ण वार्तालाप दी जाती है। शेष की उसी प्रकार तुम स्वयं पूर्ति करो।

आधार—स्कूल के खेलों से लाभ।

कथानक—'रामेश्वर' और 'जीवन' दो लड़के हैं। रामेश्वर जीवन को खेल में ले जाने को उसके घर आता है। जीवन उसे एक मित्र से मिलाने के लिए ले जाना चाहता है। रामेश्वर जीवन को खेल की उपयोगिता समझाता है। जीवन खेल में जाने को तैयार हो जाता है।

वार्तालाप—स्थान—'जीवन' का मकान

(रामेश्वर आता है)

रामेश्वर—(उच्च स्वर से) जीवन ! जीवन !

(जीवन आता है)

जीवन—आ गया भाई ! क्यों इतनी हत्या मचाये थे ?

रामेश्वर—चलो चलें, चार बज गए, वहाँ खेल शुरू हो गया होगा।

जीवन—अजी खेल-वेल से क्या होगा। चलो रमेश से मिलें। सुना है कल वह कलकत्ते से आया है। एक दिन खेल न सही।

रामेश्वर—हाँ, तुम्हारी दृष्टि से न सही। मैं खेल में नागा करना पाप समझता हूँ।

जीवन—(हँसकर) पाप !

रामेश्वर—हाँ पाप। तुम्हें संदेह है ?

जीवन—क्या बात है ! एक दिन फ़ील्ड न जाने से पाप। यह भी गीता का पाठ हो गया।

रामेश्वर—क्या बच्चों की सी बातें करते हो ? यह नित्य फ़ील्ड न जाने का परिणाम है कि दिन-पर-दिन फूलते जाते हो, हड़ें फाँकते हो, डेढ़-डेढ़ घंटा काँखते हो और फिर भी सदा क़ब्ज़ ही की शिकायत बनी रहती है।

जीवन—और तुम ?

रामेश्वर—मैं ? देखते नहीं ? तुम्हारी तरह मुझे क़ब्ज़ नहीं रहता। मेरे ऊपर तोंद का बोझ नहीं। घंटों दौड़ सकता हूँ, कड़ी से कड़ी मेहनत कर सकता हूँ। सालों हो गए, हरारत और बुख़ार क्या, कभी सर में दर्द भी नहीं हुआ।

जीवन—अरे भाई ! यह सब मान लो सही है मगर इसको इतना क्यों बढ़ाते हो कि पाप हो गया, हत्या हो गई, आसमान फट पड़ा।

रामेश्वर—तुमने तो भूसा फांका है। तुम्हारी अक़ल तो चरने गई है। व्यायाम के सम्बन्ध में एक दिन का आलस्य जो हानि पहुँचाता है, वह दस दिन के व्यायाम से भी पूरा नहीं होता है। उसके नियम में अन्तर डालना, वास्तव में स्वास्थ्य की हत्या करना, तुम्हारी दृष्टि में पाप नहीं ? मेरी बुद्धि तो यह कहती है कि अस्वस्थ जीवन ही संसार का सबसे बड़ा नरक है। उस नरक में झोंकने वाला काम तुम्हारी दृष्टि में पाप नहीं।

(अपूर्ण)

इस प्रकार वार्तालाप काल्पनिक और सत्य दोनों ही प्रकार की घटनाओं पर रचा जा सकता है। वार्तालाप की रचना में इन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए:—

१—बातों में स्वाभाविकता हो; मानों सचमुच हुई हों।

२—भाषा वही हो जो साधारणतया बोल-चाल में प्रयोग की जाती है।

३—बातें बहुत अधिक लम्बी व्याख्यान के रूप में न हों।

४—बातचीत से वे बातें स्पष्ट हो जाएँ जिनको तुम समझाना या प्रगट करना चाहते हो।

५—पात्रों की स्थिति, उनका कोई काम या भाव—हँसना, क्रोध करना इत्यादि पात्र के नाम के सन्मुख कोष्टक में घेर कर लिख देना चाहिए।

अभ्यास

१—किस प्रकार की रचनाओं में वार्तालाप की आवश्यकता होती है?

२—वार्तालाप-रचना में तुम्हें किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

३—नीचे लिखे हुए आधारों पर वार्तालाप की रचना करो:—

१—मितव्ययता।

२—समाचार-पत्र पढ़ने से लाभ।

३—'सेवा सदन' की स्थापना।

४—ग्राम्य और नगर जीवन में ग्राम्य जीवन श्रेष्ठ है।

कहानी या गल्प-रचना

छोटी-छोटी कहानी या गल्प लिखना रचना सीखने का एक सरल उपाय है। इससे कल्पना शक्ति जाग्रत होती है और लिखना बोझ नहीं मालूम होता, बल्कि रुचि बराबर बनी रहती है।

कहानियाँ कुछ ऐतिहासिक होती हैं और कुछ गढ़ी हुई। जो गढ़ी हुई होती हैं उन्हें गल्प कहते हैं। किन्तु चाहे वह गढ़ी हुई हों या सच्ची, उनका उद्देश्य मनोरञ्जन के साथ-साथ शिक्षा देना है।

कथानक

गल्प या कहानी की घटनाओं का संक्षेप में वर्णन *कथानक* कहलाता है। कथानक वस्तुतः बहुत थोड़ा होता है, और कथानक का *आधार* उससे भी थोड़ा होता है। दो-चार-दस शब्दों में ही कही जाने वाली बात को *आधार* मानकर पहले कथानक की सृष्टि की जाती है फिर उसी के आधार पर गल्प रची जाती है। उसमें हमको अपनी कल्पना से बड़ा काम लेना पड़ता है। भिन्न-भिन्न घटनाओं को सोचकर उस कथानक को बढ़ाना होता है। इसको 'कथा की स्थापना करना' कहते हैं। कथा की स्थापना हो जाने पर उस कथा में जितने व्यक्तियों का हाल थोड़ा या बहुत आता है उनका नामकरण किया जाता है। इन व्यक्तियों को कथा या गल्प के पात्र कहते हैं। उस कथानक में आई हुई घटनाओं के लिए स्थान निश्चित करके उनका भी नामकरण किया जाता है; जैसे—

'एक दरिद्र लड़का सेठ हो गया' (आधार)

कथानक—एक लड़के के मा-बाप मर गये। भीख माँगते-माँगते किसी तरह अनाथालय पहुँचा। यहाँ से किसी सेठ ने उसे गोद ले लिया और वह सेठ हो गय

अब इस में कल्पना द्वारा भिन्न-भिन्न घटनाओं को सोचकर और इस कथा में स्थान देकर इस कथानक को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार कथा की स्थापना की जा सकती है तथा स्थान व पात्रों आदि के नामों को निश्चिय करके पूरा ढाँचा तैयार किया जा सकता है; जैसेः—

ढाँचा—नागपुर के पास मुरार गाँव (स्थान), मोहन (पात्र), छोटी उम्र में माता-पिता का मरना (घटना), भिक्षा माँगकर पेट भरना (स्थिति), नागपुर से एक सेवा-समिति के कार्यकर्त्ता का आना, उसे अनाथालय में भर्ती कराना, अनाथालय में गोद लेने के लिए सेठ की चिट्ठी, मोहन का गोद लिया जाना (घटना), सेठ धर्मदास (पात्र), की मृत्यु (घटना), मोहन एक सेठ के रूप में।

कथानक की रचना के बाद, यह ढाँचा तैयार किया गया। अब इसी ढाँचे के आधार पर गल्प का क्रमशः विकास होगा। अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा ढाँचे में जान डालनी होगी। इस में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं, एक तो रचना को आरम्भ कैसे किया जाए, और दूसरे उस में घटना के क्रम को निभा कर पढ़ने वालों में बराबर उत्सुकता कैसे बनाई रक्खी जाए। इसे अँग्रेज़ी में Suspence कहते हैं, अर्थात् द्विविधा भाव। द्विविधा भाव के अर्थ यह हैं, पढ़ने वाला जब तक कहानी या गल्प पूरी न कर ले यही सोचता जाए कि 'देखें, आगे क्या हुआ ?' अन्त तक गल्प की गाँठें एक-एक करके खोलने से द्विविधा भाव अथवा उत्सुकता, जिसे Suspence कहते हैं, बना रहता है। पढ़ने वाले का मन बराबर लगा रहता है। उसकी रुचि अथवा उत्सुकता का अन्त नहीं होता।

कहानी प्रारम्भ करने के अपने-अपने अनेक ढंग हो सकते हैं। कोई उसे बीच की घटना से प्रारम्भ करता है, कोई अन्त

को घटना से, और कोई बिल्कुल प्रारम्भ से इसी तरह कोई उसे उस कथा के किसी पात्र के मुँह से कहलाना पसन्द करता है, तो कोई उसे अपनी ही ओर से लिखना। किन्तु सब का उद्देश्य यह होना चाहिए कि गल्प रोचक और सच्ची सी मालूम हो।

एक गल्प या कहानी को कैसे आरम्भ करना चाहिए, उसके उदाहरण उपरोक्त कथानक के आधार पर नीचे दिए जाते हैं:—

(अन्त से आरम्भ की हुई लड़के के मुँह से गल्प)

मैं आज बम्बई का सेठ हूँ। भाग्य का विधान कितना बलवान् है। कौन कह सकता था कि मेरा सा दरिद्र और भाग्य हीन बालक कभी करोड़ों की सम्पत्ति का स्वामी और सैकड़ों के भाग्य का विधाता हो सकता है।

मेरे माता पिता··· ·············(इत्यादि—अपूर्ण)

(मध्य से आरम्भ की हुई लेखक के शब्दों में कही हुई कथा)

रविवार का दिन है, आज सौ-पचास झोंपड़ों के सुरीर गाँव में बड़ा उत्साह और जीवन है। जिधर देखो उधर से लोग श्री सेठीजी का व्याख्यान सुनने को दौड़े आ रहे हैं। आप नागपुर की प्रसिद्ध सेवासमिति के कार्यकर्त्ता हैं।

ठीक आठ बजे व्याख्यान समाप्त हुआ। आप पं० जगन्नाथजी के यहाँ, जो गाँव के ज़मींदार हैं, ठहरे हुए हैं। व्याख्यान से लौटने पर पंडितजी के घर पर सभी लोगों की भीड़ है। सेठी जी से एक महानुभाव कुछ पूछ रहे थे कि इतने में सेठीजी की निगाह एक चार-पाँच वर्ष के बालक पर पड़ी, जो पं० जगन्नाथजी के दरवाज़े पर देर से भोजन माँग रहा था। सेठीजी ने उस बालक को बुलाया, बड़े प्रेम से अपने साथ ही भोजन कराया और समझा बुझा कर अनाथालय में भर्ती कराने के लिए। (इत्यादि—अपूर्ण)

कहानियाँ या गल्प लिखते समय नीचे लिखी हुई बातों का ध्यान रक्खोः—

(१) भाषा और घटना सब स्वाभाविक हों। कहानी में सबसे बड़ी ध्यान रखने की बात स्वाभाविकता है। अस्वाभाविक बातें बुरी मालूम होती हैं। स्वाभाविकता होने से पढ़ने वाला उसे सच्ची घटना के समान पढ़ता चला जाता है। उसे ऐसा मालूम होता है कि मानों ये बातें उसके सामने हो रही हैं, या आप-बीती हैं। स्वाभाविकता से कथा में जान आ जाती है।

(२) घटनाओं का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध हो और स्वाभाविक रूप से एक के बाद दूसरी घटना आती जाए। इसे यौक्तिक-क्रम या Logical Sequence कहते हैं।

(३) गल्प को जितना लम्बा लिखना हो उतने ही भागों में बाँट देना चाहिए; जैसेः—उपरोक्त कथानक को लेखक अपने शब्दों में लिखना चाहे तो सेठी जी के व्याख्यान और बालक का अनाथालय पहुँचना एक हिस्से में; दूसरे हिस्से में अनाथालय और उस बालक का हाल, और सेठ का लेने आना, तीसरे हिस्से में सेठ के घर बालक का जाना, वहाँ का हाल तथा उस सेठ की मृत्यु; चौथे में बालक का सेठ होना, और उस समय के उसके जीवन का हाल।

(४) भाषा मधुर और सरल हो।

(५) जिस बात का जितना वर्णन होना चाहिए उससे अधिक न बढ़ जाए, इसे अँग्रेज़ी में Sense of proportion or appropriateness अर्थात् 'औचित्य और मात्रा का ज्ञान' कहते हैं।

(७) कहानी रोचक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी होनी चाहिए।

ये बातें ऐतिहासिक घटनाओं या सच्ची घटनाओं के वर्णन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती हैं। केवल भेद इतना है कि उसमें तुमको घटनाओं की कल्पना नहीं करनी पड़ेगी, कथानक नहीं गढ़ना होगा। शेष सारी बातें इसी प्रकार होंगी। यह सोचना होगा कि कैसे आरम्भ करें और कैसी भाषा में। तथा कौनसी घटना का कहाँ किस ढग से वर्णन किया जाए।

अभ्यास

१—नीचे दी हुई कहानी से क्या शिक्षा ग्रहण करते हो? उसे अपने ढंग पर फिर से लिखो:—

तीन बेटे

विलायत के एक रईस ने, जिसकी इँगलैण्ड और वेल्स में ज़मींदारी थी, मरते समय अपने तीनों बेटों को यह निश्चय करने के लिए बुलाया कि मरने के पहले उनमें परस्पर ज़मींदारी का बटवारा कैसे किया जाए, जिससे वे आगे न लड़ें।

बूढ़े रईस ने अपने सारे बेटों से एक प्रश्न किया। उसने पूछा कि "मानलो, तुम लोगों को आज पक्षी बना दिया जाए तो तुम कौनसा पक्षी बनना स्वीकार करोगे?" बड़े ने कहा, "मैं बाज होना चाहूँगा, जिससे दूसरी चिड़ियों को मार सकूँ, और सब पर अपना प्रभुत्व जमा सकूँ"। दूसरे ने कहा, "मुझे कोयल होना स्वीकार है, जिससे मैं सर्व प्रिय रहूँ, और मेरा सब जगह आदर हो।" तीसरे ने कहा, "मैं सारस होना पसन्द करूँगा, जिससे मेरी गर्दन लम्बी होगी और अपनी बात मुँह तक आने से पहले खूब सोच सकूँगा।"

पिता बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने इँगलैण्ड की भूमि बड़े को दी, जिसमें उसे सर उठाने को मौक़ा न मिले और दब कर रहना पड़े। वेल्स की भूमि उसने दूसरे को दी, जहाँ वह कड़े शत्रुओं में भी मिल कर अपना निर्वाह कर सके। तीसरे को उसने कुछ नहीं दिया और कहा कि तू इतना बुद्धिमान है कि स्वयं इससे भी बड़ी सम्पत्ति पैदा कर लेगा।

२—नीचे दिये हुए आधार पर कथानक की रचना करो:—

"एक दरिद्र किसान ने भूख से आत्म-हत्या करली"

३—नीचे दिये हुए कथानक पर कथा की स्थापना करो:—

एक मज़दूर का छत से गिरना, नीचे एक बच्चे की मृत्यु उसके पिता का अभियोग और मज़दूर को दण्ड दिलाने का आग्रह। न्यायाधीश का अद्भुत निर्णय, 'मज़दूर नीचे खड़ा हो और पिता छत से कूदकर बदला ले।'

४—नीचे लिखी ऐतिहासिक घटनाओं को कहानी के रूप में लिखो:—

(१) अकबर का जन्म।

(२) शिवाजी का कारागृह से मुक्त होना।

(३) राणा प्रताप का वन का जीवन और वनबिलाव का बच्चे के हाथ से रोटी ले जाना।

५—गल्प पढ़ने और लिखने से क्या लाभ है?

———

निबन्ध क्या है और कैसे लिखना चाहिए

निबन्ध

निबन्ध या प्रबन्ध के अर्थ हैं, बन्धन । इसलिए किसी विषय पर एक व्यक्ति के विचार जो किसी व्यवस्था के बन्धन से बँधे हों निबन्ध कहे जाते हैं। अँग्रेज़ी में निबन्ध को (ऐसे) Essay कहते हैं, जिसका अथ है प्रयास, अर्थात् किसी विषय पर अपने विचारों को प्रकट करने का प्रयास । निबन्ध के लिए किसी विद्वान् का कहना है कि "किसी विषय को सामने रखने पर, मनुष्य के मस्तिष्क पर उस विषय का जो प्रभाव पड़ता है, निबंध उसी का छाया-चित्र या फ़ोटो है।" यह परिभाषा वास्तव में सत्य है। मान लो एक मनुष्य के सामने निबन्ध लिखने के लिए एक विषय आया। उसके आते ही उसके मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार उत्पन्न हुए। वह सोचने लगा कि इस सम्बन्ध में मैं अमुक-अमुक बातें जानता हूँ। उसने अपने सारे विचारों को क्रम से एक-एक अनुच्छेद में अलग-अलग और परस्पर एक सूत्र में बँधे हुए ढँग पर एक निश्चित मर्यादा के भीतर लिख दिया। यही निबन्ध है, यह मनुष्य के मस्तिष्क की उस दशा का चित्र है, जो एक विषय के सामने आने पर पैदा हो गया दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि निबन्ध एक ऐसा लेख है जो एक विषय पर एक व्यक्ति की जानकारी का परिचय देता है जिसमें उसके सारे विचार, उसकी सम्मति और आलोचना मौजूद है, और जो एक बँधे हुए सिलसिले में क्रम से एक-के-बाद-एक थोड़े से स्थान में चुनकर रक्खे गये हैं।

निबन्ध का उद्देश्य

निबन्ध का उद्देश्य यह है कि एक विषय के सम्बन्ध में मनुष्य जो कुछ जानता है उसे वह दूसरे के सामने रखदे। बहुधा विद्यार्थी इस बात को भूल

जाते हैं। वे यह सोचकर घबड़ा जाते हैं कि वे अपना निबन्ध एक अध्यापक या परीक्षक द्वारा जाँचे जाने के लिए लिख रहे हैं। इसका प्रभाव बुरा पड़ता है। विद्यार्थी को सदा यह सोच कर लिखना चाहिए कि वह उस विषय पर जो कुछ लिखता है वह ऐसे आदमी के लिए लिखता है जो उस विषय में बहुत कम जानता है।

विचार संकलन

जब निबन्ध का विषय विद्यार्थी के सामने आता है तो बहुधा ऐसा होता है कि उसके मस्तिष्क में विचारों की एक बाढ़ सी आ जाती है और वह समझता है कि मैं इस पर बहुत कुछ लिख डालूँगा। परन्तु जब निबन्ध लिखने बैठता है तो वह उनमें से अनेक बातें भूल जाता है या कोई बात कहीं लिख जाता है। इसलिए आवश्यक है कि विचार जैसे-मस्तिष्क में आते जाएँ उनको तुरन्त लिख लेना चाहिए। फिर इन सब बातों को नियमित ढँग पर लिखना चाहिए। यही निबन्ध का ढाँचा होगा। फिर इस ढाँचे के अनुसार ही निबन्ध की रचना चाहिए।

नीचे हम *मोटरकार* पर पहले बिखरे हुए विचार लिखते हैं और फिर उन्हीं विचारों को निबन्ध के ढाँचे के रूप में लिखते हैं।

(बिखरे विचार) —

(१) मोटर पेट्रोल द्वारा चलाई जाती है।

(२) यह कभी-कभी बिजली से भी चलती है।

(३) यह बहुत तेज़ चलती है।

(४) बैठने की जगह बहुत आराम की होती है।

(५) इससे समय की बहुत बचत होती है।

(६) इसमें चार रबड़ के पोले पहिए होते हैं।

(७) आराम की सवारी है।

(८) हाँकने वाले को अधिक परिश्रम नहीं पड़ता, परन्तु बहुत सावधान रहना पड़ता है।

(९) इसको धनाढ्य मनुष्य ही रख सकते हैं।

(१०) घोड़ा-गाड़ी से कम जगह घेरती है।

(११) मोटरकार के प्रकार और चाल।

(१२) इससे दुर्घटनाएँ।

(१३) रेलों से प्रतियोगिता।

(१४) वर्तमान काल में मोटरकारों की प्रचुरता।

(१५) मोटरकारें वहाँ बहुत उपयोगी होती हैं जहाँ रेलों का अभाव हो।

(१६) मोटर लौरियाँ।

(१७) मोटरकारों का सब से बड़ा कारख़ाना फ़ोर्ड का है।

(ढाँचा)—

१—भूमिका—मोटरकार एक गाड़ी होती है, जो प्रायः पेट्रोल द्वारा परन्तु कभी-कभी बिजली द्वारा भी चलाई जाती है। (१), (२) (बिखरे विचारों के नम्बर)

२—वर्णन—यह बड़े आराम की सवारी है—गद्दियाँ गुदगुदी व सुन्दर होती हैं—पहियों पर पोली रबड़ चढ़ी रहती है—बड़े वेग से चलती है—कई प्रकार व गतियों की होती है—मोटर-कार मनुष्यों के लिए और मोटर लौरी बोझा ढोने के काम भी आती है। (३), (४), (६), (७), (११), (१६)

३—**लाभ**—वेगवान होने के कारण इससे समय की बहुत बचत होती है—जहाँ रेलों का अभाव है वहाँ अधिक उपयोगी होती है—अन्य सवारियों से तुलना, जैसे घोड़ा-गाड़ी, बाइसिकल इत्यादि। (५), (१०), (१५)

४—**अन्त**—मूल्यवान होने के कारण धनियों के ही काम की चीज़ है—वर्तमान काल में मोटरों की प्रचुरता—संसार में मोटर का सब से बड़ा कारख़ाना—इससे दुर्घटनाएँ—रेलों से प्रतियोगिता। (८), (९), (१२), (१३), (१४), (१७)

भूमिका और समाप्ति

ढाँचा बनाने के बाद, जब, निबन्ध लिखना आरम्भ करो, सदा ध्यान रक्खो कि निबन्ध का आरम्भ, जिसे भूमिका भी कहा जा सकता है, और अन्त ओजपूर्ण हो। शुरू के ज़ोरदार शब्द पढ़ने वाले में, निबन्ध को आगे पढ़ने की रुचि उत्पन्न कर देते हैं। अँगरेज़ी में एक कहावत है, 'Well begun is half done' अर्थात् 'भली प्रकार आरम्भ किये हुए काम से आधी सफलता पहले ही प्राप्त हो जाती है।

मान लो कि एक मनुष्य के सम्बन्ध में तुम कुछ बातें जानते हो और चाहते हो कि उसके बारे में यह सारी बातें दूसरे भी जान लें। उसका परिचय अन्य किसी व्यक्ति से कराने में यदि तुम प्रारम्भ में सीधे-सादे ढँग से केवल यह कहो, "यह एक आदमी हैं, इनका नाम रामप्रसाद है आदि", तो सुनने वाला उसका हाल सुनने को विशेष उत्सुक नहीं होगा। इसके विपरीत यदि तुम अपनी बात यों आरम्भ करो, "यह एक विशेष आदमी हैं, इनके सम्बन्ध में आप ज़ानकारी प्राप्त करके प्रसन्न होंगे।

आदि” तो सुनने वाले के हृदय में एक उत्सुकता पैदा हो जाएगी, वह विशेष रुचि से सुनना आरम्भ करेगा और अन्त तक सारी बातें जानना चाहेगा। ठीक यही बात निबन्ध के सम्बन्ध में समझना चाहिए। उसे इसी प्रकार एक ज़ोरदार ढँग से आरम्भ करना चाहिए। इसी को भूमिका कहते हैं।

इसी प्रकार निबन्ध की समाप्ति भी एक महत्वपूर्ण बात है। किसी आदमी से मिल कर बिदा होने के समय तुम बहुधा अपनी कही हुई बातों को थोड़े में दुहराते हो कि सुनने वाला उनका ध्यान रक्खे। इसी प्रकार निबन्ध की विशेष बातों को समाप्ति में ज़ोरदार ढंग से थोड़े में दुहराना चाहिए जिस से निबन्ध पढ़कर छोड़ने के बाद पढ़ने वाले पर तुम्हारी बातों का प्रभाव रहे। आगे दिये हुए निबन्धों की 'भूमिका' और 'समाप्ति' को ध्यानपूर्वक पढ़ो और देखो कि वह कितने प्रभावशाली हैं।

निबन्ध-भेद

विषय के अनुसार निबन्ध कई प्रकार के होते हैं; किन्तु (१) कथात्मक, (२) वर्णनात्मक, (३) व्याख्यात्मक और (४) आलोचनात्मक, यह चार ऐसे मुख्य भेद हैं कि जिनमें सब प्रकार के निबन्ध बाँटे जा सकते हैं।

१—कथात्मक निबन्ध में कथा प्रधान होती है; जैसे—'मदन मोहन मालवीय' या 'लक्ष्मण' आदि—जीवन चरित्र सम्बन्धी या ऐतिहासिक निबन्ध।

२—वर्णनात्मक निबन्ध में वर्णन प्रधान होता है; जैसे—'प्रातः-काल' या 'बसन्त' आदि विषयों पर निबन्ध।

३—व्याख्यात्मक निबन्ध में किसी अमूर्त विषय या विषय के किसी अमूर्त स्वरूप की व्याख्या होती है; जैसे—'शिक्षा प्रणाली' या 'सदाचार' आदि विषयों पर निबन्ध।

४—विवेचनात्मक निबन्ध में किसी विषय के गुण-अवगुण, सत्य-असत्य, अनुकूल-प्रतिकूल या अच्छे-बुरे आदि अंशों की विवेचना होती है; जैसे—'परीक्षा' या 'क़लम और तलवार' आदि विषय।

निबन्ध लिखने के नियम अब हम कुछ ऐसे नियम देते हैं कि जिन्हें निबन्ध लिखते समय सदा ध्यान में रखना चाहिए:—

(१) जैसे-जैसे तुम्हारे मस्तिष्क में विचार आते जाएँ उन्हें तुरन्त लिखते जाओ। इन लिखे हुए विचारों पर फिर से नज़र डाल लो।

(२) जितना समय तुम्हारे पास हो उसका कम से कम छठा भाग ढाँचा तैयार करने में लगाओ।

(३) ऊपर दिये हुए ढाँचे के अनुसार अपने संकलित विचारों को कई हिस्सों में बाँट लो और देखो, कौन बात किस हिस्से में डाली जा सकती है। ऊपर ढाँचे में जो विचार जिस हिस्से में आये हैं उस हिस्से में उन विचारों की क्रम संख्या लिख दी गई है।

(४) निबन्ध ढाँचे के अनुरूप ही लिखो।

(५) निबन्ध की प्रत्येक बात को उसकी आवश्यकता और उपयोगिता की दृष्टि से ही स्थान दो। ऐसा न हो कि अनावश्यक बातों को अधिक स्थान दे दिया जाए और आवश्यक बातों को कम।

(६) विषय से विषयान्तर की ओर मत भटको।

(७) स्पष्ट लिखो; जो कुछ लिखो उसका आशय ठीक होना चाहिए।

(८) भाषा सरल और व्याकरण के अनुसार बिल्कुल शुद्ध होनी चाहिए।

(९) बहुत कठिन शब्द या वे शब्द जिनके अर्थ तुम्हें न मालूम हों मत लिखो।

(१०) इस बात का प्रयत्न मत करो कि बहुत लिखो, वरन इस बात की कोशिश करो कि जितना लिखो, बहुत अच्छा लिखो।

(११) पीछे पढ़े हुए शीर्षक, विराम चिह्न, अनुच्छेद और शैली आदि प्रकरणों में पढ़ी हुई बातों का ध्यान रक्खो और जहाँ जिस बात की आवश्यकता हो उन्हें काम में लाओ।

आगे कुछ निबन्ध ढाँचे सहित और शेष बिना ढाँचे के उदाहरण रूप में दिये जाते हैं। उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़कर देखना चाहिए कि उनमें उक्त नियमों का कहाँ तक पालन किया गया है। कुछ संक्षिप्त निबन्ध भी बढ़ाकर पूरा करने के लिए अभ्यास की दृष्टि से दिये जाते हैं। साथ में दिये हुए अभ्यासों से भी पूरा लाभ उठाना चाहिये।

(१) सिंह (वर्णनात्मक)

ढाँचा

१—प्रस्तावना—सिंह सारे पशुओं का राजा है, उसकी विशेष आकृति, प्रकृति और चाल।

२—मनुष्यों पर सिंह का प्रभाव—मुहाविरों में सिंह शब्द का प्रयोग, नामों के आगे सिंह शब्द लगाना, काव्य में कटिकेहरि की उपमा।

३—सिंह से लाभ—मृगया का आनन्द, खाल, माँस, और नाख़ून की उपयोगिता।

४—सिंह कहाँ-कहाँ पाया जाता है।

५—सिंह का पकड़ा जाना—चिड़ियाघर, निजी तौर पर सिंह का पाला जाना, सरकस।

६—समाप्ति—सिंह का आदर्श।

सिंह

१—पशु समाज में सिंह का स्थान सब से ऊँचा है। उसको पशुओं का राजा' कहते हैं; इसीलिए उसका दूसरा नाम 'मृगेन्द्र' है। उसका रूप-रंग उसकी प्रकृति और उसकी चाल-ढाल राजा के समान है। उसका भयानक मुखमण्डल, उसके बड़े-बड़े दाँत, उसकी लाल-लाल ख़ून के रंग में रँगी जीभ, उसकी जलती हुई आँखें, उसके खड़े हुए कान, उसका उभरा हुआ वक्षस्थल और तनी हुई देह देखकर ऐसा कौन है जो उसके रोबदाब से भयभीत न हो जाए। उसके गंभीर गर्जन से सारा जंगल काँप उठता है, सारे जीव-जन्तु दहल जाते हैं। सिंह का खान-पान, रहन-सहन और चाल-ढाल भी वास्तव में राजा के समान है। केवल भूख लगने पर वह शिकार करता है, और पेट भर खा चुकने के पीछे बचा हुआ मांस छोड़कर चल देता है, जिसे और छोटे-छोटे पशु बाद में खाया करते हैं। भूख मिट जाने पर वह शान के साथ शान्त रहता है। जहाँ रहता है, अकेला रहता है। जब चलता है तो पहले गंभीरतापूर्वक धीरे-धीरे एक राजा के समान टहलता हुआ चलता है और मन में आते ही बात-की-बात में यह जा और वह जा। दस-बीस छलाँग मारीं, और इधर से उधर।

सिंह की गंभीर चाल पर मुग्ध होकर तुलसीदासजी ने भगवान् रामचन्द्र जी की चाल की उपमा उसकी चाल से दे डाली है।

"वृषभ कंध केहरि ठवनि, बल निधि बाहु विशाल।"

"ठवन युवा मृगराज लजाये।"

२—मनुष्य-समाज में भी सिंह का बड़ा आदर और आतङ्क है। शेर उसकी सारी वीरता का आदर्श है। बात-बात में लोग कहते हैं 'तू बड़ा शेर है' मनुष्य होते हुए भी इसी लिए लोग अपने नामों के आगे 'सिंह' लगाने लगे हैं, कोई प्रतापसिंह है तो कोई केहरीसिंह। यही नहीं, वीरता और भयानकता के अति-रिक्त, मनुष्य उसकी सुन्दरता पर भी मोहित हैं। कवि लोग उसकी कमर को संसार की सुन्दर-से-सुन्दर कमर का आदर्श मानते हैं। 'कटि केहरि' कविता में बीसां जगह आता है।

३—वीर पुरुषों का सिंह का शिकार खेलने में एक विशेष आनन्द आता है। आज भी अनेकों ऐसे लोग हैं जिन्होंने दस-बीस नहीं बल्कि सौ-दोसौ शेर मारे हैं। यह शिकार बहुधा हाथी की पीठ पर बैठकर, पेड़ों पर चढ़कर, अथवा मचान बांधकर किए जाते हैं। कुछ लोग ऐसे भी साहसी हुए हैं और आज भी हैं, जो शेर का शिकार मुक़ाबिले पर खड़े होकर करते हैं। कहा जाता है कि रियासत साहनपुर के अधिपति राव-भरतसिंह ने लगभग तीन सौ सिंह सामने खड़े होकर मारे हैं। भारत-प्रसिद्ध कजरी बन आप ही की रियासत का एक अंग है। वास्तव में यह असाधारण साहस और वीरता की बात है। भारतवर्ष में अनेक राजाओं को शेर के शिकार का बड़ा शौक़ था। कहा जाता है कि प्रसिद्ध मुग़ल सम्राट् जहाँगीर दो शेरों को मैदान में छुड़वा देता था और उनका परस्पर युद्ध देखा करता था।

मृगया के आनन्द के अतिरिक्त और भी ऐसी बातें हैं, जिनसे शेर मनुष्यों के बड़े काम की चीज़ है। उसकी खाल बड़ी सुन्दर और गरम होती है और बिछाने के काम आती है। उसका माँस और उसके नख अनेक रोगों में औषधि का काम करते हैं। बहुत से लोग शेर के सिर में भुस भरवाकर अपने कमरों में शोभा के लिए रखते हैं।

४—सिंह उन सारे स्थानों में, जहाँ बड़े-बड़े घने जंगल हैं, पाया जाता है। यह गरम देश का जानवर है। अफ्रीका के जंगलों के सिंह बड़े भयानक होते हैं। भारतवर्ष में भी सिंहों की कमी नहीं। अनेक ऐसे बन हैं जिनमें इसका निवास है।

जीवित सिंह अनेक चिड़ियाघरों में देखे जा सकते हैं। लोग अनेक युक्तियों से इन्हें जंगलों से पकड़कर लाते हैं और पिंजड़ों में बन्द कर चिड़ियाघरों में रखते हैं। वहाँ इन्हें दूर से भोजन दिया जाता है। सिंह पकड़ना एक बड़ा साहस और कौशल का काम है और इसकी अनेकों विधि हैं।

५—ऐसे भी कुछ लोग देखे गये हैं जो सिंह को अपने पास उसी प्रकार पाल लेते हैं जैसे साधारण कुत्ते को। उन्हें वह माँस के स्थान पर केवल दूध ही पिलाते हैं। सरकसों में तो बहुधा सिंह पाले ही जाते हैं। लोग उन्हें अनेक प्रकार के कौतुक सिखाकर उनसे खेल कराते हैं।

६—सिंह, सिंह ही है। पशु होकर भी वह मनुष्यों के लिए आदर्श और शिक्षा की वस्तु है। बड़े-बड़े विद्वानों का कहना है कि संसार में शेर की तरह रहो। जिस देश और जाति के मनुष्य सिंह के समान वीर हैं वे ही संसार में जीवित रहने के योग्य हैं।

अभ्यास

नीचे दिये हुए ढाँचे के आधार पर निबन्ध लिखो।

कुत्ता

(१) भूमिका—महत्व, कहाँ-कहाँ पाया जाता है ?

(२) आकृति—रंग, डील-डौल आदि की विभिन्नता।

(३) स्वभाव—जंगली-जीवन, पालतू-जीवन, स्वामिभक्ति, जाति-द्वेष।

(४) उपयोगिता—रक्षा, शिकार, जासूसी।

(५) समाप्ति—पागल कुत्ता, उसका उपचार—कसौली का अस्पताल—कुत्ते का मनुष्य-समाज में आदर।

(६) इसी प्रकार 'घोड़ा', 'गाय', 'भेड़िया', और गीदड़ पर ढाँचे बनाओ और निबन्ध लिखो।

(२) कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

१—प्रस्तावना—संसार में रवि बाबू का स्थान, वंश-परिचय, वंश की विद्या-सम्बन्धी विशेषता।

२—शिक्षा-दीक्षा—अधूरी शिक्षा, बचपन से काव्य प्रेम, विलायत यात्रा।

३—उनके ग्रन्थ—गीताञ्जलि का विशेष स्थान, नोबिल पारितोषिक, उसका महत्व और उसका प्रभाव।

४—पत्नी का देहान्त—उसका कविता पर प्रभाव, विश्व-प्रेम, विश्व-भारती।

५—समाप्ति—रवि बाबू की वर्तमान आयु, उनकी कृतियों का महत्व, 'सर' की उपाधि, वायुयान-यात्रा, स्वभाव की विशेषता।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

१—संसार भर पर जिन मनुष्यों का प्रभाव पड़ रहा है, जिनके कहने या लिखने से सारे संसार की विचारधारा में आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, ऐसे तीन या चार व्यक्तियों में हम टागोर की भी गणना कर सकते हैं। हिन्दोस्तान की सभ्यता को संसार के सम्मुख यह गर्व है, कि वह टागोर ऐसे व्यक्ति पैदा कर सकती है। यदि देखा जाय तो टागोर के घराने से सरस्वती का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। सदा से टागोर-घराना अपनी साहित्य-चर्चा और साहित्य-सेवा के लिए प्रसिद्ध रहा है। इनके पिता श्री देवेन्द्रनाथ टागोर ऋषि के नाम से लिखे जाते हैं। इनके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ टागोर एक बहुत उच्च कोटि के दार्शनिक थे। इसी घर में अवनीन्द्रनाथ ऐसे चित्रकार भी हैं। निदान यह साफ़ प्रकट है कि इन परिस्थितियों ने भी टागोर को इस श्रेणी के दार्शनिक कवि होने में बड़ी सहायता दी है।

२—हमारे चरितनायक ने किसी विश्व-विद्यालय की कोई उपाधि प्राप्त नहीं की। हिन्दोस्तान में कुछ दिनों तक एक स्कूल में पढ़ने के बाद आप विलायत जाने का प्रयत्न करने लगे, परन्तु कई बार प्रस्थान करने के उपरान्त मार्ग से ही लौट आये। फिर कई बार आपने विलायत-यात्रा की। बचपन से ही रवीन्द्र बाबू अपने समवयस्क बालकों के साथ नाटक इत्यादि रचने तथा उन को खेलने में बड़ी अभिरुचि रखते थे। १२ वर्ष की अवस्था में ही जो निबन्ध या कविताएँ टागोर ने लिखी हैं—यद्यपि वह प्रौढ़ अवस्था की रचनाओं के समान नहीं हैं, तो भी—साधारण लोगों के लिए उनके समान रचनाएँ करना प्रौढ़ अवस्था में भी कठिन है। तब से निरन्तर साहित्य-चर्चा ही टागोर का जीवन बन गया है।

कहा जाता है कि कविता करने में यह ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि और किसी बात की सुध-बुध ही कुछ नहीं रहती। उस समय वह संसार को भूल जाते हैं।

३—परन्तु जिस पुस्तक ने इनको सारे संसार के सम्मुख लाकर प्रकट कर दिया, उस का नाम 'गीताञ्जलि' है। इसी पुस्तक के ऊपर इनको काव्य और साहित्य में नोबिल पुरस्कार (Noble prize) मिला है।

यह पुरस्कार उसे मिलता है जो सकल विश्व में सर्वोत्तम रचना करता है। इस का निर्णय संसार के चुने हुए सब विद्वान् मिलकर ही करते हैं।

४—टागोर एक सच्चे कवि हैं। एक सच्चे कवि की पहचान यह है कि कविता में वह प्रयत्न न करे। एक सच्चा कवि हृदय में जो भाव आते हैं उनको, न छिपा सकने के कारण, प्रकट कर देता है। वे विचार संसार की सम्पत्ति हो जाते हैं। रवीन्द्र बाबू पहले शृङ्गार रस की कविता किया करते थे; परन्तु युवावस्था में ही दुर्भाग्यवश पत्नी का देहान्त हो जाने के कारण शृङ्गार का स्थान अब विश्व-प्रेम ने ले लिया है। जो कोष पहले केवल एक व्यक्ति का था उस पर आज संसार का आधिपत्य है। संसार की यह धारणा हो गई है कि रवीन्द्र बाबू केवल एक देश की ही सम्पत्ति नहीं, वरन् संसार का उन पर अधिकार है। इसी कारण सदा ही प्रत्येक देश उन को अपने यहाँ बुलाने को उत्सुक रहता है। इसी कारण आपको कई बार संसार की यात्रा करनी पड़ी है। प्रत्येक देश में जो इनका मान हुआ है, उस को देखकर प्रत्येक भारतीय का सिर गर्व से ऊँचा हो जाता है। इसी विश्व-प्रेम के लक्ष्य को सामने रखकर आपने एक 'विश्व-भारती' नाम की संस्था को जन्म दिया है। विश्व-भारती एक विशाल

विद्यालय है; जहाँ संसार के बड़े-बड़े विद्वान, प्रत्येक देश के बड़े-से-बड़े दार्शनिक, साहित्यज्ञ और गायनाचार्य बच्चों के साथ विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ते हैं। इस विश्व-विद्यालय में गगनचुम्बी इमारतें नहीं हैं। क़ीमती सजावट का सामान नहीं है। वरन् वृक्षों के नीचे प्रकृति के रम्य सुन्दर उपवन में बच्चे व बूढ़े विद्यार्थी विश्व-प्रेम की शिक्षा पाते हैं। स्वयं टागोर प्रार्थना में मग्न रहते हैं; और बच्चों के लिए नाटिकाएँ लिखकर उनका अभिनय करते हैं। महात्मा गांधी ने इसके बारे में कहा है कि "यह विश्व-विद्यालय प्राचीन भारतवर्ष के ऋषियों के आश्रमों की याद दिलाता है।" संसार के सभी कोनों के विद्वान् इस स्थान पर परस्पर ज्ञानलाभ के लिए आते रहते हैं।

५—इस समय टागोर की अवस्था लगभग ७० वर्ष की है तो भी वह अपने ध्येय, विश्वप्रेम, के प्रचार में निरन्तर रत रहते हैं। कविता के अतिरिक्त गल्प, उपन्यास, नाटक इत्यादि भी इनकी रचनाओं में से हैं। गल्प लिखने में टागोर का स्थान सम्भवतः सर्वोच्च है। टागोर के जीवन का एक-एक पृष्ठ हमारे लिए एक-एक पुस्तक है। भारत की सरकार ने आपको 'सर' की उपाधि से विभूषित किया था, परन्तु आपने उसको गत असहयोग आन्दोलन में वापस कर दिया था। वह भाव-राज्य के मनुष्य हैं। फ़्रांस में जब आप गये थे तो वहाँ पर आपसे वायुयान में बैठने को कहा गया। उपस्थित सज्जनों में से किसी ने कहा कि आज टागोर पहली बार आकाश में उड़ेंगे। टागोर ने तत्काल ही उत्तर दिया कि 'मैं तो सदा से ही आकाश में उड़ता रहा हूँ।' यह ही उनकी सच्ची स्थिति का द्योतक है। इस कीर्ति के कवि होते हुए भी टागोर जो कुछ लिखते हैं वह सब बंगला में ही लिखते हैं। वह कहते हैं कि मैं सिवाय बंगला के और किसी भी भाषा में

कुछ नहीं सोच सकता। वह स्वयं ही अपनी पुस्तकों का अनुवाद अँगरेज़ी में करते हैं।

टागोर का हृदय बिल्कुल बच्चों का सा है और इसी कारण बच्चों के साथ खेलने तथा उसी का आनन्द लेने में उनकी बड़ी रुचि है। ऐसे महान् चरित्र के विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि उनका जीवन हम सब लोगों के लिए एक गर्व की वस्तु है। धन्य है वह देश जहाँ टागोर ऐसे व्यक्ति जन्म लेते हैं।

अभ्यास

१—निम्नलिखित महानुभावों के जीवन पर निबन्ध लिखो।

मदनमोहन मालवीय, सर गंगाराम, मुस्तफ़ा कमाल पाशा।

२—इस प्रकार के निबन्धों को वर्णनात्मक या व्याख्यात्मक निबन्ध कह सकते हैं या नहीं? यदि नहीं, तो क्या कहा जाना चाहिए? उत्तर कारण सहित दो।

---

(३) आने-जाने के पुराने और नये साधन

(संक्षिप्त निबन्ध)

१—भूमिका।

२—प्राचीन साधन।

३—नए साधन।

४—तुलना।

५—समाप्ति।

१—भारतवर्ष में आने-जाने के प्राचीन और नए दोनों साधन काम में लाए जाते हैं, किन्तु नए अधिक और प्राचीन कम। नए साधनों ने पुरानी दुनियाँ को एक दम बदल दिया है।

२—रथ, बैल गाड़ी, हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल, भैंसे आदि पुराने समय के आने जाने के साधन हैं। समुद्र पार देशों में

ाने जाने के लिए पाल वाले जहाज़ काम में आते थे और दियों में नावें चलती थीं। बहुत से लोग लम्बी लम्बी यात्राएँ दल ही करते थे।

३—आजकल बाइसिकल, मोटर-बाइसिकल, मोटर, रेल, ाम, बड़े-बड़े भाप से चलने वाले जहाज़, हवाई जहाज़ आदि आने-जाने के साधन हैं।

४—बैल गाड़ी और हवाई जहाज़ की चाल का मुक़ाबिला ीजिए। पुराने साधनों में समय अधिक लगता था और व्यय ी अधिक होता था। किन्तु आदमी अधिक मेहनती और ामकाजी हो जाते थे। नए साधनो में समय कम लगता है, ्यय भी बहुत थोड़ा होता है। इस से व्यापार की बड़ी उन्नति ुई है।

५—नए साधन मनुष्य की सूझ और खोज के उत्कृष्ट दाहरण हैं।

अभ्यास

ऊपर दिये हुए संक्षिप्त निबन्ध का विस्तार करो और पूर्ण नेबन्ध लिखो।

दियासलाई

(संकलित)

यूरोपीय वैज्ञानिकों के मत से मनुष्य की सभ्यता का मुख्य चेह्न और सच पूछिये तो मनुष्यता की सच्ची पहचान आग बनाना और उसे काम में लाना है। कुछ वैज्ञानिकों के मत से मनुष्य की सृष्टि से बहुत दिनों पीछे आग बनाने की क्रिया मालूम हुई। यह कहना बहुत कठिन है, कि इस घटना को हुए

कितने युग बीते, अथवा संसार की सृष्टि से कितने दिनों पीछे अग्नि मिली। हमारा तो विश्वास है, कि जब से मनुष्य प्राणी हुआ, आग बनाने की रीति तब से ही जारी है। संसार में सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं, जिस में पहला शब्द "अग्नि" इस बात का गवाह है, कि आर्य्य जाति आदि से ही, सिवाय संन्यास आश्रम के, कभी "निरग्नि" नहीं रही है।

आग बनाने की सब से पुरानी रीति दो लकड़ियों को रगड़ना है। यज्ञ कर्म में इसी रीति का अनुसरण किया जाता था। कभी एक धनुष के द्वारा एक लकड़ी को दूसरी लकड़ी के गढ़े में डालकर रगड़ते थे, जैसा कि न्यूज़ीलैण्ड और दक्षिण सागर के द्वीपों में अब तक करते हैं, और कभी हथेलियों के बीच में रखकर ही लकड़ी को घुमाते थे। यज्ञादि पवित्र कर्मों में अब भी यही रीति बरती जाती है, परन्तु अरिष्टोफेनीज़ और प्लूटार्च के लेखों से यह पता चलता है कि यवन (ग्रीक) लोग अपनी यज्ञाग्नि आतशी शीशा वा नतोदर दर्पण द्वारा सूर्य की किरणों से एकत्र करके जलाया करते थे। जिन लोगों ने पण्डित श्रीकृष्ण जोशी के भानुताप के द्वारा पूरियाँ पकती देखी होंगी, उनके लिए इसमें कोई भी अनोखापन नहीं हो सकता। संवत् १८८६ तक इङ्गलैण्ड तथा समस्त पाश्चात्य देशों में और प्राचीन काल से अब तक भारतवर्ष में भी चकमक पत्थर पर लोहे से चोट मारकर जलने वाली रुई पर चिनगारियाँ झाड़ लेने की ही चाल थी, और समस्त सभ्य देशों में आग बनाने की सहज और सर्वप्रिय रीति यही थी। नई दियासलाई बनने के कुछ काल पहले पोटाश और शकर मिलाकर उस पर तीव्र गन्धकाम्ल टपकाकर भी आग जलाते थे।

अब पाठकगण सोचें, कि दियासलाई के युग में और चकमक पत्थर के युग में कितना अन्तर पड़ गया है। सिगरेट

पीने वाला जेब से दियासलाई निकालकर एक सेकिण्ड में मुँह से धुएँ के बादल-के-बादल निकालने लगता है। पत्थर वाले युग का मनुष्य अपनी जेब से एक छोटी-सी डिबिया के बदले काले लत्ते, पत्थर और लोहे की एक मेख लेकर चलता और सिगरेट जलाने में एक सौ बीस गुना समय लगता और इस झंझट के कारण शायद सिगरेट का प्रचार कम होता। लखनऊ स्टेशन पर एक पैसे में आजकल फर्शी,चिलम, तम्बाकू, टिकिया, दियासलाई सब कुछ मिल जाता है। परन्तु उस ज़माने में एक पैसे में केवल जलाने का सामान नहीं मिल सकता था यदि आपके पास सामान न हुआ तो आपको अग्नि की भिक्षा माँगनी ही पड़ती।

आजकल दियासलाई सस्ती होने से उस के महत्त्व पर हम लोगों का ध्यान बहुत कम जाता है। दियासलाई का प्रचार हुए यद्यपि अभी पूरे पचहत्तर बरस भी नहीं हुए हैं, तथापि "दियासलाई" शब्द बहुत पुराना है। पत्थर के ज़माने में भी दियासलाई निकली थी। सनई के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर उसका सिरा गले हुए गन्धक में डुबो देते थे, और एक पैसे में ढेर के ढेर बेचते थे। चकमक से चिनगारियाँ झाड़कर कुछ रुई जलाई गई, और उसमें यह दियासलाई लगाई और दिया जलाया। कई प्रान्तों में दियासलाई बेचने का काम भंगी करते थे। इसीलिए पुराने लोग दियासलाई को अस्पृश्य और अपवित्र समझा करते थे, और रसोई और पूजा के स्थानों में नहीं ले जाते थे। परन्तु ऐसा समय बदल गया है। अब वह—अस्थिपुत्र फ़ास्फोरस—को शिरोधार्य किये हुए "परमपुनीता" दीपशलाका, रसोई में, और देव मन्दिरों में गौरव का स्थान पाती है।

जब सस्ते स्फुर के मिलने की समस्या पूरी हो गई तब दियासलाई बनाने में उस का प्रयोग करना कोई बड़ी बात न

थी। संवत् १८३० में पहले-पहल स्फुर की दियासलाई बनाई गई। लकड़ी के पतले टुकड़े पहले गले हुए पाराफ़ीन नामक पार्थिव मोम में डुबाये गये। उसके बाद एक दूसरे बर्तन में जलाने वाले मसाले में उनका सिरा डुबोया गया।

यह मसाला क्या था। सिन्दूर, पोटास, गोंद और स्फुर का बारीक़ मिश्रण। सिन्दूर की जगह सीसनत्रेत भी डालते थे, और देखने में सुन्दर बनाने के लिए उन मैं रंग भी दिया करते थे। इसके बाद दियासलाइयाँ सूखने को रख दी जातो थीं। सूखने पर उन्हें गिन-गिनकर बक्सों में भर देते थे। यह सब काम थोड़ी-सी दियासलाइयों के लिए नहीं होता था। एक-एक कारख़ाने में से नित्य साठ लाख से लेकर एक करोड़ तक दियासलाइयाँ निकलती थीं. दियासलाइयों में साधारण स्फुर के प्रयोग से और भी हानियाँ होतो थों। अँधेरे में चमकती थीं, गर्म जगह में भक से जल उठती थीं, हवा में नम हो जाती थीं और रक्खे-रक्खे निकम्मी हो जाती थीं। अजान बच्चे लाल-लाल सिरे से आकर्षित होकर दियासलाइयों को हाथ में लेकर चूसते थे और काल-कवलित हो जाते थे।

साधारण पीले स्फुर का प्रयोग अब बहुत से देशों में वर्जित हो गया है, आजकल जो दियासलाई रगड़ से जलने वाली बाज़ार में बिकती है, उस के सिरे पर पीले स्फुर के स्थान पर लाल स्फुरत्रिगन्धित काम में आता है। भारतवर्ष में भी आईन द्वार पीले स्फुर की दियासलाइयों का बिकना बन्द है।

अभ्यास

१—ऊपर दिये हुए निबन्ध का ढांचा बनाओ।

२—नीचे दिये हुए विषय पर निबन्ध लिखो।

चाकू, काग़ज़, सुई।

परीक्षा

परीक्षा का कड़ुआ अनुभव तो लगभग सारे ही विद्यार्थियों को होता है। परीक्षा के दिनों को याद करो; कितनी घबड़ाहट और कितनी चिन्ता रहती है। ज्यों-ज्यों परीक्षा निकट आती जाती है, व्यग्रता बढ़ती जाती है। जब तक वह कठिन दिन बीत नहीं जाता, सर पर मानो भूत सवार रहता है। खाना, पीना, सोना सभी हराम रहता है। कोई दो-दो बजे तक लालटेनें जलाये पढ़ रहा है, तो किसी ने रात भर न सोने की ही क़सम खाली है।

किन्तु परीक्षा केवल विद्यार्थियों के लिए ही इतनी भयानक नहीं है। वह सदा से और सभी के लिए भयानक रही है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और महात्मा इसके नाम से घबड़ाते रहे हैं। इस ने बड़े-बड़ों की मान-मर्यादा पर पानी फेरा है। न जाने कितनों का पर्दा पलटा है, न जाने कितनों की कलई खाली है ? सारी आयु वीर कहलाने वाले और बुद्धिमान कहलाने वाले एक दिन में इसी परीक्षा के कारण अपनी वीरता, विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता के पैतृक अधिकार से वञ्चित कर दिये गये।

महात्मा ईसा का कहना है, 'हे भगवान्, तू मुझे परीक्षा से बचा और पापों से दूर रख'—सचमुच, परीक्षा तलवार की धार, भाले की नोक, तोप के गोले, शेर की धाड़ और साँप के दाँत से बढ़ कर भयंकर और कठिन है।

फिर भी जो वीर हैं, वह इससे नहीं डरते। वह परीक्षा को गले का हार समझते हैं। वे परीक्षा को आमन्त्रित करते हैं और वीरतापूर्वक उसका सामना करते हैं। उसका मुक़ाबिला करने में ही उन्हें आनन्द आता है। परीक्षा की याद

उनके हृदय में उत्साह और उमंग पैदा कर देती है, उनके अंग-अंग फड़का देती है। महात्मा ईसा का सूली पर चढ़ना, राणा-प्रताप का मारे-मारे फिरना, सुकरात और महर्षि दयानन्द का ज़हर पीना, यह सब परीक्षा को छाती से लगाना था।

परीक्षा इतनी भयावह होने पर भी संसार की आवश्यकता है। नीर-क्षीर, पुण्य और पाप के विवेक का यही एक साधन है। इसके विना कोई मामूली पत्थर और रत्न में क्या भेद बता सकता है? अच्छे और बुरे को कोई कैसे अलग कर सकता है? कौन कह सकता है कि वह साधु के वेष में लम्पट है अथवा यह दूध के रूप में विष है ?

विना परीक्षा सचाई का कोई मूल्य नहीं। परीक्षा ही अच्छाई और बुराई की, योग्यता और अयोग्यता की, विद्वत्ता और मूर्खता की, बल और निर्बलता की कसौटी है। यदि वह न होती, तो लम्बे-लम्बे तिलक लगाकर सभी विद्वान् और महात्मा बन जाते। सच्चे महात्मा और विद्वानों को कौन पूछता? दो-चार पुस्तकें पढ़कर सभी अपने को बी० ए० और एम० ए० बताते। आज राणा प्रताप और साधारण राजपूत में भेद कैसे समझा जाता ?

परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर मनुष्य का बड़ा मान बढ़ता है। उससे उसका कुछ घटता नहीं, बल्कि समाज में भीतर और बाहर उस का स्थान कुछ बढ़कर ऊँचा हो जाता है। लोगों के हृदय में उसके प्रति सम्मान और आदर के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। परीक्षा मनुष्य की छिपी हुई शक्तियों को संसार के सामने खोलकर रख देती है। उस से किसी को घबड़ाना नहीं चाहिए। मन में पहले से ही भय लाना उसे—उसकी वास्तविक भयंकरता

से भी अधिक भयंकर बना देती है। परीक्षा सामने आजाने पर उसका वीरता और साहसपूर्वक सामना करना ही नरोचित धर्म है। उस से पीछे हटना, मुँह छिपाना और पीठ दिखाना ही कायरता है। परीक्षा की तैयारी पहले से करने से वह उतनी ही सरल हो जाती है, जितनी वह पहले कठिन प्रतीत होती है। तभी वह अपने क़ाबू में की जा सकती है।

हिन्दू-धर्म शास्त्र परीक्षा के उदाहरणों से भरे पड़े हैं। बड़े से बड़े महापुरुष को परीक्षा देनी पड़ी है, चाहे वह किसी रूप में क्यों न हो। हिन्दू-धर्म जिन्हें भगवान् समझता है, उन्हीं राम, कृष्ण, शिव और ब्रह्मा को समय-समय पर परीक्षा के घाट उतरना पड़ा है। राजा हरिश्चन्द्र को आज बच्चा-बच्चा जानता है। इसका कारण केवल यह है कि वह सच्चाई की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये थे। प्रह्लाद ने कैसी-कैसी कठिन परीक्षाओं का सामना किया, और इसीलिए प्रह्लाद, प्रह्लाद हो गये। ध्रुव और भीष्म पितामह परीक्षा द्वारा ही बनाये हुए ध्रुव और भीष्म हैं।

परीक्षा जितनी भयंकर है उतनी ही मनोहर है, जितनी कठिन है उतनी ही सरल है। परीक्षा कुलिश से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल है। वह वीरों के लिए सुगन्धित पुष्पों का हार है और कायरों के लिए भयावह तलवार की धार है।

अभ्यास

नीचे दिये हुए ढाँचे के आधार पर निबन्ध लिखो:—

विद्यार्थी जीवन

१—विद्यार्थी जीवन की विशेषता और उसका महत्व।

२—उसका उद्देश्य ।

३—पुराना विद्यार्थी जीवन और नया विद्यार्थी-जीवन ।

४—गृहस्थ-जीवन तथा और प्रकार के जीवन से इसकी तुलना ।

५—दूसरे देशों का विद्यार्थी-जीवन ।

६—इस जीवन के आनन्द ।

७—एक विद्यार्थी के लिए मुख्य बातें:—सदाचार, नियमित, सादा और युक्त आहार-बिहार, व्यायाम ।

स्वप्न

(संक्षिप्त निबन्ध)

१—भूमिका ।

२—कारण ।

३—वैचित्र्य ।

४—स्वप्न के सम्बन्ध में कुछ विश्वास ।

५—स्वप्न का प्रभाव ।

६—समाप्ति ।

१—स्वप्न एक दूसरी सृष्टि है । जागकर बहुत से लोग उस सृष्टि में पाई हुई सम्पति के असत्य होने पर दुखी होते हैं ।

२—अपच आदि के कारण पेट भारी होने पर स्वप्न अधिक दिखाई देते हैं । उसकी कुछ दोषयुक्त वायु ऊपर मस्तिष्क में चढ़ जाती है । बहुधा कमज़ोर शरीर वाले, चिन्ताशील, या भावुक मनुष्य अधिक स्वप्न देखते हैं । इच्छा करके सोची हुई चीज़

स्वप्न में अवश्य दिखाई दे, यह कुछ आवश्यक नहीं है। कहा जाता है कि हमारे शिर या मस्तिष्क का एक विशेष हिस्सा है, जिस में एकत्रित हुए विचार ही स्वप्न में दिखाई देते हैं।

३—स्वप्न बड़े विचित्र होते हैं। हवा में उड़ना, समुद्र में गिरना आदि ऐसी बातें हैं, कि यदि एक ही मनुष्य के स्वप्न लिखे जायँ तो एक मनोरञ्जक बड़ा पोथा तैयार कर देंगे। कुछ लोग स्वप्न में ही चिल्लाने, रोने और कूदने-फाँदने लगते हैं, कल्पित चोर के पीछे मीलों चले जाते हैं।

४—बहुत से लोगों का विश्वास है कि स्वप्न कुछ भविष्य का परिचय देते हैं। इस के लिए वे स्वप्न-फल पूछते फिरते हैं। स्वप्न-फल बताकर बहुत से लोग रोटी कमाते हैं। इस विश्वास का परिणाम बुरा होता है।

५—स्वप्न से एक शिक्षा मिलती है। हमारा जीवन एक बड़ा स्वप्न है।

अभ्यास

१—उपरोक्त संक्षिप्त निबन्ध का विस्तार कर पूरा निबन्ध लिखो। यह निबन्ध किस प्रकार का निबन्ध होगा ?

आम का वृक्ष

१—प्रस्तावना—आम के वृक्ष की विशेषता, छाया, सुगन्धि और फल।

२—आमों के भेद—आम पैदा करने का व्यसन, आमों के

३—आम और काव्य—उसकी प्राचीनता, कामदेव और आम, कोकिल और आम, उर्दू कविता में आम।

४—समाप्ति—आम के वृक्ष से शिक्षा।

आम

संसार में पेड़ों की कमी नहीं। अनेक प्रकार के पेड़ हैं। उन में बहुत से तो सुगन्ध रहित पुष्प की तरह बहुत कम उपयोगी, और अनेक अत्यन्त उपयोगी हैं। ऐसे उपयोगी वृक्षों में आम का एक विशेष स्थान है। आम का वृक्ष कोई छोटा वृक्ष नहीं। उस की सघन शीतल छाया में गर्मी के दुसह ताप से संतप्त चालीस-पचास आदमी आनन्द से विश्राम ले सकते हैं। उसके अंग-अंग से एक प्रकार की विशेष सुगन्धि उठती है। विशेषकर जब आम फूलता है और बौरों से लद जाता है, उसकी सुगन्धि दूर-दूर तक फैलती है और बटोहियों को मोहित करती है। उन दिनों यही इच्छा होती है, कि सारे दिन आम के ही नीचे आराम किया जाय। यह बौर अल्प-काल में ही मनोहर फलों में बदल जाता है। सारे वृक्ष में आम ही आम लटकने लगते हैं। गर्मी की ऋतु में छायादार आम के वृक्ष के नीचे शीतल छाया के साथ में मन्द-मन्द सुगन्धित वायु और मीठे-मीठे फलों की प्राप्ति से स्वर्गीय सुख का आनन्द प्राप्त होता है। उस का अनुमान वे ही कर सकते हैं, जिन को इस के अनुभव करने का कभी सौभाग्य प्राप्त हुआ हो।

आम भारतवर्ष का एक विशेष वृक्ष है, और लगभग उन सारे हिस्सों में पाया जाता है, जहाँ गर्मी पड़ती है और वर्षा खूब होती है। संयुक्त प्रान्त का वह भाग जिसे अवध कहते हैं, आमों का उपवन है। खुले हुए मैदानों में जगह-जगह बस

आमों के ही बाग़ दिखाई देते हैं। यहाँ आम के वृक्ष लगाने में बड़ी प्रतिद्वन्द्विता रहती है। तरह-तरह के आम पैदा करने में लोग बड़ी योग्यता दिखाते हैं। मुग़ल बादशाहों के समय में भिन्न-भिन्न प्रकार के आमों को उत्पन्न करने की इस कला को विशेष उत्तेजना प्राप्त हुई। एक से अनेक प्रकार के आम पैदा किये गये। उस समय का यह भी एक व्यसन था। आज भी अनेकों ऐसे स्थान हैं जहाँ तरह-तरह के आम पैदा करने का लोगों को शौक़ है। आमों के रूप-भेद और स्वाद भेद होने के कारण अनेक नाम हैं, जैसे बादशाह-पसन्द, सफ़ेदा, लंगड़ा, बम्बई, फ़जरी आदि।

आम भारतवर्ष का एक मनोहर वृक्ष है और सदा से ही महान् आदर प्राप्त करता रहा है। सुन्दरता का आदर्श कामदेव तो इस वृक्ष पर मोहित था। मनोकेतु-मन्मथ ने जब भगवान् शिव की अटूट समाधि के सुदृढ़ कोट पर चढ़ाई की थी तब इसी रसाल पादप का सहारा लिया था। आम ही का वृक्ष था, जिस पर खड़े होकर मदन ने अपने कुसुम-शरों का प्रहार शंकर के वक्षःस्थल पर किया था। ऋतुराज बसन्त में यों तो सारे ही लता-पल्लवों पर सुषमा की वर्षा होती है, किन्तु रसाल की सुन्दरता का कुछ और ही रंग होता है।

सुन्दरी श्यामा भी इसी पर मोहित होती है। बहुधा इसी पर बैठकर अपनी कू-कू की मधुर ध्वनि से अमृत की बूँदें टपकाती है। संस्कृत और हिन्दी कवियों की तरह फ़ारसी और उर्दू के कवि भी आम और मञ्जरी पर मुग्ध हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कवि दाग़ ने आमों की तारीफ़ में एक लम्बी-चौड़ी कविता लिखी है। कहा जाता है कि फलों में आम ही आप को सब से अधिक प्रिय था।

वास्तव में, आम का जितना सम्मान किया जाय कम है। उनका जीवन 'परोपकाराय सतां विभूतयः' का साक्षात् प्रमाण है। धन्य हो! हे रसाल राज! तुम धन्य हो। तुम मनुष्य-समाज को सहृदयता का पाठ पढ़ाते हो। ढेले मारे जाने पर भी तुम आम के सदृश मधुर फल देते हो। लोग तुम्हारे पत्ते नोचते हैं और लकड़ी काटकर तुम्हारी देह को कष्ट देते हैं, किन्तु तुम इस कठोर व्यवहार के बदले शीतलता, और कोमल छाया देते हो तथा अपने कोमल पल्लव-करों से हवा करते हो। हम कितने कृतघ्न हैं तुम कितने उदार हो। सारे जीव तुम से लाभ उठाते हैं और अन्त में तुम्हें काटकर जलाते हैं। किन्तु, धन्य हो तुम कि हमारे हित में सहर्ष अपने शरीर की आहुति दे देते हो। तुम्हारे लिए गोसाईं जी ने ठीक कहा है:—

तुलसी संत सुअम्ब तरु, फूल फलें पर हेत।
इतते ये पाहन हनें, उतते वे फल देत॥

अभ्यास

१—नीचे दिये हुए विषयों पर निबन्ध लिखो:—

कटहल, पीपल, नीम।

भीष्म

(लेखिका—श्रीमती सौभाग्यवती देवी, 'विदुषी', 'विशारद')

भारतीय इतिहास के पृष्ठ जिन महान् आत्माओं के चरित्र-चित्रण के कारण उज्ज्वल हैं, उनमें भीष्म का जन्म बहुत प्रसिद्ध राजघराने में हुआ था। इनके पिता का नाम शान्तनु था। इनकी युवावस्था में इनके पिता एक धीवर-कन्या पर मोहित हो गये।

किन्तु उस कन्या के पिता ने उसका विवाह शान्तनु के साथ केवल इस शर्त पर करना मंजूर किया कि, उसकी कन्या की सन्तान ही राज्य की अधिकारी हो। शान्तनु इस शर्त पर विवाह करके भीष्म के न्याययुक्त राज्याधिकार को छीनना नहीं चाहते थे तो भी स्वयं भीष्म ने जाकर उस कन्या के पिता से यह प्रतिज्ञा की, कि वह राज्य पर अधिकार न करेंगे और आजन्म ब्रह्मचारी रहेंगे ताकि उसकी संतान भी कभी राज्य पर दावा न करे। हम जब इस को पढ़ते हैं, हमारा मस्तक श्रद्धा के कारण झुक जाता है। गर्व से हमारी छाती फूल उठती है, कि हमारे पूर्व पुरुषों में ऐसी महान् आत्माएँ भी थीं। आजन्म ब्रह्मचारी रहना, संसार के सब सुखों का परित्याग करना, एक विस्तृत राज्य पर लात मार देना, ये सब इतने बड़े काम थे, कि उस समय के लोगों ने भी इनकी महत्ता का अनुमान करके इनको भीष्म-प्रतिज्ञा कहा, क्योंकि ये बातें साधारण मनुष्यों की शक्ति से परे थीं। और उसी दिन से भीष्म को जिनका पहला नाम देवव्रत था भीष्म का उपनाम मिला। भीष्म का अर्थ है भयंकर।

इस महान् प्रतिज्ञाओं के आजीवन पालन का जो फल होना चाहिये था वही हुआ। भीष्म इच्छा-मृत्यु हो गये, अर्थात् जब चाहें तभी मरें। यह केवल ब्रह्मचर्य का प्रताप था। इन के बाण कभी असफल नहीं होते थे। जो शौर्यवान् होगा, उसके बाण भला कैसे असफल हो सकते हैं। इन प्रतिज्ञाओं के होने पर भी वह संसार से विमुख न थे। सदा अपने भतीजों को राज्य-संचालन के लिए सलाह दिया करते थे। चूँकि राज्य के लाभार्थ, उसमें शान्ति-स्थापना के हेतु भीष्म ने सन्तानोत्पत्ति नहीं की, इसी कारण समस्त प्रजा ने उनको अपना पितामह मानकर

उनकी पूजा की। आज भी भीष्म का नाम भीष्मपितामह कह कर लिया जाता है। हमको भीष्म पितामह कहने में गर्व होता है। अपनी प्रतिज्ञाओं के पालन में वह कितने दृढ़ थे, यह बात केवल इसी से प्रगट होती है कि जब उनके गुरू परशुराम ने उनसे कहा कि या तो ब्याह करो अन्यथा मुझसे युद्ध करो, तो उन्होंने युद्ध करना अंगीकार किया, परन्तु प्रतिज्ञा भंग नहीं की।

उन्होंने सदा से ही अपनी प्रतिज्ञा का इतना पालन किया कि आज भी लोगों में "भीष्म-प्रतिज्ञा" एक कहावत है। कौरव-पांडवों के युद्ध के समय श्रीकृष्ण और अर्जुन उनके पास गये। उन्होंने कह दिया कि जो चाहो माँग सकते हो। इस पर अर्जुन ने स्वयं उन्हीं से उन के मारने की विधि पूछी। उन्होंने हर्ष पूर्वक बतला दिया कि, "शिखंडी को सामने करके युद्ध करो। वह पुराने जन्म की स्त्री है। मैं उस को देखकर हथियार फेंक दूँगा और तब तुम सहर्ष मुझको मार सकते हो।" इसी को कह सकते हैं, प्रतिज्ञा-पालन। सारे महाभारत में वही एक व्यक्ति ऐसे हैं जो कि लालसा न रखते हुए भी केवल र ज की मंगल कामना से लड़े थे। यद्यपि उन का स्नेह कौरवों तथा पांडवों पर बराबर था, तो भी वह दुर्योधन को ही राजा मानने के कारण उस का पक्ष लेने पर वाध्य थे। युद्धमें उनके पराक्रम का लोहा न मानने वाला मनुष्य न था। उन्होंने प्रण किया था "कि दस हज़ार मनुष्यों का बध करने के पश्चात् विश्राम करूँगा", और यह प्रण अन्त तक निबाहा। समरभूमि में सारे शरीर में बाँण बिंध गये, रथ पर से भूमि पर गिर पड़े और उनका शरीर बाणों पर ही रुका रहा। उस समय उनका शिर नीचे लटका रहा था। उन्होंने तकिया माँगा। कौरव लोग नाना प्रकार के मुलायम वस्त्र लाये। उस सबको हँसकर टाल दिया, कहा कि "अर्जुन को बुलाओ, केवल वह

ही वीरोचित तकिया दे सकता है।" अर्जुन ने दो बाण मारे जिन से शिर ऊँचा हो गया। इसी प्रकार वह कई मास तक पड़े रहे। जब समय अनुकूल देखा, तब प्राण त्याग किया।

भीष्म का जो रूप हम बचपन में देखते हैं वही युवावस्था में वही वृद्धावस्था में तथा मरण काल तक वही एक निर्भीक तेजस्वी लालसारहित मूर्ति हमको दिखलाई देती है। यदि महाभारत काल के महापुरुषों में से भीष्म का चरित्र निकाल लिया जाए तो सारा शौर्य नष्ट हो जाता है। यदि वीरता में वह अनुपमेय थे, यदि प्रतिज्ञापालन में वह एक थे, तो इसका यह अर्थ नहीं कि यहीं तक बस थी। मरने से पहले उनका जो वार्तालाप पाडवों, कौरवों तथा श्रीकृष्णजी से हुआ, वह स्वयं एक प्रकार का महान् ग्रन्थ कहा जा सकता है। उच्चकोटि के आध्यात्मिक ज्ञान का जो प्रवाह उनकी बातों में था वह केवल स्वाध्याय करने से ही जाना जा सकता है।

आज भी हिन्दू लोग जब देवताओं और ऋषियों को तर्पण का पानी देते हैं, तो उन में भीष्मपितामह को भी तर्पण का जल दिया जाता है। यद्यपि भीष्मपितामह का जीवन हमारे आधुनिक काल मे इतना पूर्व था कि उनकी दिनचर्या का ठीक ज्ञान हम को नहीं हो सकता है। तब भी भूतकाल के गहरे अन्धकार में उन की जीवनी एक देदीप्यमान नक्षत्र है, कि जिस से हमारे जीवन भी समुज्ज्वल हो सकते हैं।

अभ्यास

(१) नीचे दिये हुए ढाँचे के आधार पर निबन्ध लिखो:—

छत्रपति महाराज शिवाजी

१—भूमिका—हिन्दू-जाति और शिवाजी, शिवाजी का अवतार।

२—जन्म और प्रारम्भिक जीवन—जन्म, शिक्षा, मातापिता ।

३—राजनैतिक जीवन—शक्ति-संगठन, राज्य-स्थापना, युद्ध, मुख्य-मुख्य घटनाएँ ।

४—महत्व-अपने समय का सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति, शासन-प्रणाली, निष्पक्ष, धार्मिक और कविता-प्रेमी, भूषण राज-कवि ।

५—समाप्ति—इतिहास और महाराज शिवाजी ।

(२) 'लक्ष्मण' पर इसी प्रकार निबन्ध लिखो ।

उषा-काल

१—भूमिका ।

२—उषा काल का समय ।

३—दृश्य—प्राकृतिक सौन्दर्य, काम में लगे हुए नर-नारी; पशु पक्षी का कलरव ।

४—प्रभाव—स्वास्थ्य और मन पर ।

५—समाप्ति ।

१—उषाकाल सूर्योदय से पहले का समय है। उस समय सूर्य की लाली पूर्व दिशा में उदय होने लगती है ।

२—दिन-रात के चौबीस घण्टों में यह सब से मनोहर समय है। इस की सुन्दरता की समता एक छोटे सुन्दर बालक या अधखिले फूल या मन्द मुस्कान से दी जाती है ।

३—(अ) उस समय का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम होता है। घास पर मोती सी ओस की बूँदें, मन्द-मन्द सुगन्ध युक्त समीर, अधखिले फूल, हिलते हुए हरे-हरे कोमल पल्लव ये ही उस का उस सुन्दरता की सम्पत्ति है ।

(इ) पक्षी कलरव करते होते हैं। सारा जगत ही सजग हो जाता है।

(उ) कृषक अपने-अपने खेतों में काम करने लगते हैं। स्त्रियाँ चक्की पीसती होती हैं। कुछ लोग नदियों और तालाबों में स्नान करने और कुछ पूजा-पाठ में लग जाते हैं।

४--लोग इस समय का वायु-सेवन करने के लिए टहलने निकलते हैं। इस से अनेक रोग दूर होते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रभाव मन पर भी पड़ता है। मनुष्य का साधन विधाता की ओर स्वतः खिंचता है।

५—यह जीवन डालने वाला समय है। इस समय सारे प्राणहीन संसार में प्राण आ जाते हैं।

अभ्यास

१—ऊपर दिये हुए संक्षिप्त निबन्ध का विस्तार करके पूर्ण निबन्ध लिखो।
२--इसी प्रकार 'गोधूलि-बेला' पर निबन्ध लिखो।

लोहा

खनिज पदार्थों में क़ीमती से क़ीमती धातु इस समय संसार में मौजूद है। किन्तु लोहा उनकी अपेक्षा सस्ता से सस्ता होने पर भी अधिक से अधिक उपयोगी है। उस का लोहा सारे संसार ने मान रक्खा है। उसी की वास्तव में सारे संसार पर धाक है। बड़े-बड़े राजाओं को अपना सम्मान और साम्राज्य बढ़ाने के लिए दूसरे राजाओं से लोहा लेना पड़ा। लोहे के ही बल पर वे राजा बने और अपना राज्य स्थिर रख सके।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि लोहा संसार की सब से पहली जानी हुई धातु है, किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है,

कि मनुष्य-समाज को इस का परिचय प्राप्त हुए आज हज़ारों वर्ष बीत गये हैं। इस के पहले कहा जाता है कि लोग ताँबे से काम लेते थे। जिस समय मनुष्यों को पहले-पहल लोहे का ज्ञान हुआ, उस समय को इतिहासवेत्ता 'लोहे का काल' कहते हैं। उस समय से जैसे-जैसे मनुष्यों को इसका मूल्य मालूम होता गया, वे इसकी अधिकाधिक खोज करते गये। उन्हें पृथ्वी के ऊपरी धरातल (तल) के नीचे मीलों लम्बी-चौड़ी खानें मिल गईं। यद्यपि अभी तक इस बात का ठीक पता नहीं लगाया जा सका है, कि लोहे के इस परिमाण में पृथ्वी के भीतर रहने का कारण क्या है। तो भी यह निर्विवाद है कि पृथ्वी के भीतर की कड़ी गर्मी उसकी उत्पत्ति का कारण है।

यह न समझना चाहिए कि पहले-पहल लोहा मनुष्य-जाति को इसी रूप में प्राप्त हुआ था, जैसा आज है। उस लोहे को अपना वर्तमान रूप धारण करने में हज़ारों वर्ष लग गये हैं। जब लोहा खान से निकाला जाता है तब उसका रूप बिल्कुल भिन्न होता है। उस में मिट्टी, कंकड़ आदि इस अंश में मिले होते हैं, कि उसे लोहा कहा ही नहीं जा सकता। उसका पह-चानना भी कठिन होता है। फिर उसे साफ़ करके और भट्टी में गलाकर लोहे का रूप दिया जाता है। पहले उस के साफ़ करने की विधि इतनी अच्छी मालूम न थी। धीरे-धीरे अच्छी से अच्छी विधि जान ली गई है, और आज एक नहीं अनेक प्रकार का लोहा तैयार किया जाता है। लोहे का एक भेद इसपात कहलाता है जिसे पुर्तगीज़ भाषा में स्पेडा कहते हैं। उसकी तलवारें और स्प्रिंग आदि बनाये जाते हैं। कच्चा लोहा मुड़ सकता है, किन्तु पक्का लोहा मोड़ने से टूट जाता है।

कुछ लोहा ऐसा भी बनाया जा सकता है कि उस में मोर्चा न लगे।

लोहा संसार की सारी जगहों पर नहीं पाया जाता। इङ्गलैंड, फ्रांस, स्वीडेन, जर्मनी, उत्तरी अमेरिका इस के बड़े अच्छे क्षेत्र हैं। भारतवर्ष में भी बंगाल और उड़ीसा में लोहा पाया जाता है। लोहे को गलाने के लिए कोयले की बड़ी आवश्यकता है। इस-लिए जिन देशों में लोहा और कोयला साथ-साथ पाये जाते हैं, उन देशों ने इस से सब से अधिक लाभ उठाया है। वहाँ इस के बड़े बड़े कारख़ाने हैं। इङ्गलैंड, जर्मनी और अमेरिका के बड़े-बड़े कारख़ाने संसार भर में प्रसिद्ध हैं। छोटी-छोटी निबों और छूपों पर बरमिंघम (इङ्गलैंड) की छाप लगी रहती है। भारतवर्ष में भी रानीगंज और झेरिया में, जहाँ कोयले की खानें हैं, वहाँ थोड़ा बहुत लोहा भी प्राप्त होता है। वहीं जमशेद-पुर में टाटा का लोहे का प्रसिद्ध कारख़ाना है।

लोहा इस समय संसार की सब से बड़ी आवश्यकता है। घर की मामूली से मामूली नित्य-प्रति के व्यवहार की चीज़ें, चूल्हे का तवा तथा सीने की सुई, सब लोहे के प्रसाद हैं। कील, काँटे, आलपीन, चाक़ू, चम्मच आदि से लेकर तलवार, बन्दूक़, तोप, बाइसिकल, मोटर, हवाई जहाज़ आदि कोई बिना लोहे के नहीं बन सकते। मनुष्य को एक बार लोहे के मूल्य का आभास होना था कि बस काम बन गया। जीवन की उन सारी आवश्यकताओं को जो लोहे से हो सकती थीं पूरी करने का प्रयत्न होने लगा।

लोहे का प्रयोग दवाओं में भी होता है। इसकी भस्म विशेष रोगों में दी जाती है। यह अधिक मात्रा में पुष्टिकारक माना जाता है।

लोहे की इतनी उन्नति हो जाने पर भी अभी तक मनुष्य सन्तुष्ट नहीं हैं। वैज्ञानिक निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं कि लोहे को और भी उपयोगी बनाया जाय; उसकी दृढ़ता वैसी ही बनी रहे परन्तु उसकी तौल घट जाय। सम्भव है कि कोई दिन ऐसा भी आ जाय कि लोहे की ऐसी रेलगाड़ियाँ बन जाँय जो हज़ारों मन बोझा लादने के योग्य होने पर भी इतनी हल्की हों कि एक आदमी उठा ले। यदि ऐसा हो तो वह शक्ति जो केवल लोहे के वज़न को उठाने या घसीटने के काम में आती है बच जायगी और उससे दूसरा काम लिया जा सकेगा।

मनुष्य की आधुनिक सभ्यता के इतिहास को यदि लोहे की उन्नति का इतिहास कहें तो अनुचित न होगा। लोहे की इतनी उन्नति के कारण ही वर्तमान युग 'मशीन का युग' कहलाता है। उसी से यह सम्भव हो गया है कि मनुष्य यन्त्रों (कलों) के द्वारा कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक काम कर सके। जो काम हज़ारों कारीगर वर्षों में किया करते थे, वे आज मशीनों के द्वारा घंटों में सम्पादित होते हैं। सुख की सामिग्रियाँ इतनी अधिक और इतने कम समय में तैयार की जा सकती हैं कि प्रत्येक मनुष्य को सस्ते दाम में प्राप्त हो सकती हैं। यदि ऐसा न होता तो पैसे में पचीस सुइयाँ कौन पा सकता था? हज़ारो पुतलीघर यदि आज न हों तो लोगों को कपड़ा नसीब न हो। अमेरिका में लोग लोहे के चालीस-चालीस, पचास-पचास मंज़िल ऊँचे मकान बनाते हैं, जिन्हें स्काई-स्क्रेपर अर्थात् गगन-चुम्बी भवन कहते हैं। आज हज़ारों-लाखों मील लम्बी रेलगाड़ी हमें मिनटों में इधर से उधर पहुँचा देती है। केवल पृथ्वी पर ही नहीं, आकाश और पानी पर भी लोहे की बदौलत मनुष्य ने अधिकार स्थापित कर रक्खा है।

सच पूछा जाय तो आजकल का जीवन केवल लोहे पर निर्भर है। लोहा इस समय का राजा है। जिसका लोहे पर अधिकार है, उसका संसार के व्यापार पर ही नहीं वरन् संसार पर अधिकार है। या यों कहा जाय कि जिसका लोहा लोहे ने माना, उसका लोहा संसार ने माना।

अभ्यास

(१) ऊपर दिये हुए निबन्ध का ढाँचा बनाओ ?

(२) इस निबन्ध में आये हुए मुहाविरों को छाँटो, और इसी प्रकार मुहाविरों का प्रयोग करते हुए 'सोने' पर निबन्ध लिखो ?

नगर और ग्राम्य जीवन

१—भूमिका।

२—नगर-जीवन के सुख—रेल, तार, डाक, अस्पताल, स्कूल, बाज़ार आदि।

३—नगर-जीवन की बुराइयाँ—दूषित जलवायु, आलस्य तथा दूसरी और बुराइयों के प्रलोभन।

४—ग्राम्य जीवन के सुख— खुली वायु, परिश्रम, शक्ति, सादा जीवन।

५—ग्राम्य जीवन की बुराइयाँ—नागरिक जीवन की सुविधाओं का अभाव।

६—दोनों प्रकार के जीवन की तुलना।

७—समाप्ति।

नगर और ग्राम्य दोनों ही अपने-अपने ढंग के ऐसे जीवन हैं, जिनमें दोष भी हैं और गुण भी । नगर निवासी ग्राम्य-जीवन से घबड़ाते हैं और ग्राम वाले नगर की चहल-पहल से ऊब जाते हैं। ग्राम ग्राम हैं, नगर नगर हैं। ग्राम की सुविधाएँ और सुख नगर-निवासियों को नसीब नहीं और उसी तरह नगर की सुविधाओं से बेचारे ग्रामीण वञ्चित रह जाते हैं। एक दूसरे की होड़ हो ही नहीं सकती।

नगर के रंग कुछ और ही हैं। ऊँचे-ऊँचे भवन, लम्बी-चौड़ी सड़कें, बिजली की रोशनी, नल का पानी, गाँव में कहाँ । एक नहीं, अनेक रेल के स्टेशन और इसी प्रकार के कई-कई डाकख़ाने एक बड़े नगर में तो होते ही हैं, किन्तु एक छोटे से नगर में भी डाक और रेल का कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता। टेलीफून से सैकड़ों कोस पर भी मिनटों में अच्छे-से-अच्छे डाक्टर की सहायता ली जा सकती है और तुरन्त दूर-से-दूर सम्बन्धी या मित्र को सूचना दी जा सकती है। पैसे वाले के लिए तो कहना ही क्या है ? विना पैसे वाले दरिद्र के लिए भी मुफ़्त औषधियाँ प्राप्त करने के लिए सरकारी और असरकारी या अर्द्ध-सरकारी दोनों ही प्रकार के औषधालय स्थापित हैं। म्यूनोसिपैलिटी, पुलिस के बड़े दफ़्तर अदालतें, ऊँची-से-ऊँची शिक्षा देने वाली शिक्षा-संस्थाएँ, बड़ी-से-बड़ी दूकानें, जिनमें संसार भर के सारे पदार्थ हर समय प्राप्त हो सकते हैं, ये सब नगर की वे महान् सुविधाएँ हैं, जिनके लिए बेचारे ग्रामीणों को मीलों पैदल चलकर आना पड़ता है और नगर में कष्ट उठाना पड़ता है।

ये सारे सुख होने पर भी नगर का वायु-मण्डल बहुत दूषित होता है। उसमें मनुष्य का शरीर, मन और आत्मा सभी

दुर्बल हो जाते हैं। नगर की तंग गलियाँ, धूप रोकने वाले ऊँचे मकान, दुर्गन्ध फैलाने वाली नालियाँ नगर के जल-वायु को ऐसा दूषित कर देती हैं कि नगर-निवासी का स्वस्थ रहना बड़ा कठिन होजाता है। पाप और दुराचार के प्रलोभन चारों ओर ऐसे फैले होते हैं कि उनसे बचना कोई सरल बात नहीं। चारों ओर पैसे की हाय-हाय रहती है। सब अपने-अपने स्वार्थ में फँसे रहते हैं। इससे उनका मन संकीर्ण हो जाता है और आत्मा की पवित्रता नष्ट हो जाती है। शरीर, मन, और आत्मा का संहार करने वाली अनेकों ऐसी आदतें पड़ जाती हैं, जिनका छुड़ाना दुष्कर हो जाता है। स्वस्थ से स्वस्थ ग्रामीण, नगर के दो-चार वर्ष के जीवन के बाद एक नगर-निवासी की तरह ही पीला पड़ जाता है, उसकी आँखें घुस जाती हैं, गाल बैठ जाते हैं, हाथ-पैर सूखे से हो जाते हैं, उन पर नगर की छाप लग जाती है। इसके यह अर्थ नहीं कि सारे नगर-निवासी ऐसे ही होते हैं, किन्तु यह अधिकांश की बात है।

ग्राम्य-जीवन इसके बिल्कुल विपरीत है। वहाँ नगर के सुख रेल, तार, अस्पताल, स्कूल-कालिज, ऊँचे-ऊँचे भवन और लम्बे-चौड़े बाज़ार नहीं हैं; किन्तु वहाँ का वायु-मण्डल एक निराला वायु-मण्डल है; स्वावलम्बन और परिश्रम के महत्व की शिक्षा उन्हें बचपन से ही प्राप्त होती है। ग्राम्य-जीवन कठिन होने के कारण ग्रामवासी स्वाभावतः कठिनाइयाँ सहने के अभ्यस्त होते हैं। शरीर और मन दोनों ही स्वस्थ रहते हैं। उनका हृदय पवित्र और उदार हो जाता है। उनमें आत्म-विश्वास, दृढ़ता और सचाई नगर-निवासियों की अपेक्षा अधिक होती है।

ग्राम्य-जीवन कितना स्वच्छन्द जीवन है। बनावट का लेश नहीं। छोटी-सी झोंपड़ी को नित्य लीप-पोत कर ग्राम-वासियों की

गृह (घर की) देवियाँ स्वर्ग बना देती हैं। वे भी बड़ी कष्ट-सहिष्णु और धीर होती हैं। जल लाना, पशुओं की सेवा करना, गाय दुहना, दूध-दही-घी तैयार करना, भोजन बनाना, बर्तन साफ़ करना और चक्की पीस कर आटा तैयार करना, ये सब वह अपने ही हाथों कर डालती हैं।

एक गाँव में बड़े सवेरे परिवार के सारे प्राणी उठ पड़ते हैं। उषा उन पर अपनी मनोहर मुस्कान से अमृत बरसाती है और उस समय सभी अपने-अपने कामों में लगे होते हैं। घरों से देवियों के चक्की चलाने और साथ-साथ गाने की मधुर-ध्वनि घर-घर मे सुनाई देती है। यह कितना मनोहर, कितना सरस और कितना अनुपम है। सूर्योदय होने के पहले ही कृषकगण खेतों में हल चलाते होते हैं।

गाँवों का स्वाभाविक दृश्य कैसा सुन्दर होता है। प्रकृति वहीं अपनी सुषमा की वर्षा करती है। हरी-हरी घास पर नन्हीं-नन्हीं मोती सी चमकती हुई ओस की बूँदों के आस-पास अलसाई हुई आखों की तरह अधखिले फूल और ठण्डी-ठण्डी सुगन्ध-युक्त मन्द-मन्द चलने वाली उषाकालीन समीर, मृत देह में भी प्राणों का संचार करने वाली प्रकृति की दी हुई, यह सारी सुन्दर विभूति केवल दरिद्र ग्रामीणों की संपत्ति है। इसकी होड़ कौन कर सकता है?

ग्राम प्रकृति की गोद है। ग्रामीण धूल-धूसरित देह लिये नंगे अथवा चीथड़े लपेटे हुए इसी गोद में बालक के समान खेला करते हैं। उनके आस-पास पाप के प्रलोभन का वातावरण नहीं होता। इसीलिए वे उदार और पवित्र होते हैं। उन्होंने यह उदारता और पवित्रता अपनी माँ-प्रकृति के इतने निकट रहने से ही प्राप्त की है। उनके यहाँ से अतिथि भूखा नहीं

जा सकता, चाहे वे कितने ही दरिद्र क्यों न हों। यही सच्चे पुराने भारतवर्ष का सच्चा रूप है। यह सत्य है कि भारतवर्ष केवल गाँवों में रहता है।

किन्तु अब ग्रामों में नगर की बुराइयों ने प्रवेश पाना आरम्भ कर दिया है। हर गाँव में दो-चार छैले भी दिखाई देते हैं। इन छैलों ने तुलना के लिए वहाँ पाप की स्थापना कर रक्खी है। दरिद्रता पापों को जन्म देती है। आजकल दरिद्रता ही ग्रामवासियों का धन है। इस धन से जो पाप पैदा हो सकते हैं वे ग्रामीणों पर अपना प्रभाव डाल रहे हैं। पुराने ग्रामों में और वर्तमान ग्रामों में बड़ा भेद है। अब ग्रामों का संगठन शिथिल हो गया है। उनकी पंचायतों का शासन उनकी बिरादरी का आतङ्क सब ढीला हो गया है।

नगर की सुविधाओं से वंचित होने के कारण कभी-कभी ग्राम्य जीवन नरक सा हो जाता है। सफ़ाई आदि का प्रबन्ध करने वाली किसी संगठित संस्था अथवा स्कूल आदि का अभाव उतना मूल्य नहीं रखता, किन्तु कभी-कभी किसी आकस्मिक भयङ्कर रोग से ग्रसित किसी रोगी के लिए डाक्टर न मिलना, किसी अतिथि के आ जाने पर आवश्यक भोजन-सामिग्री का दुर्लभ हो जाना, तथा और ऐसी अनेकों बातें हो सकती हैं, जिनसे कभी-कभी ग्राम्य जीवन दुखदायी प्रतीत होने लगता है। ये ही इस जीवन के अपवाद हैं।

फेर भी नगर-जीवन की अपेक्षा ग्राम्य-जीवन अधिक सुखद और सुन्दर है। ग्राम्य-जीवन में शरीर और मन की अधिक रक्षा हो सकती है। अधिक सदाचार-युक्त सादा और सस्ता जीवन बिताया जा सकता है। नगर का जीवन एक मेले का

जीवन है, और ग्राम्य-जीवन है गंगा तट का सरल एकान्त वास। एक में सजाये हुए गुलदस्ते की शोभा है, तो दूसरे में वृक्ष में खिले हुए पुष्प की। एक रोगी मनुष्य है, तो दूसरा स्वस्थ बालक। एक कृत्रिम है, तो दूसरा स्वाभाविक।

अभ्यास

१—यह निबन्ध व्याख्यात्मक निबन्ध है या विवेचनात्मक? उत्तर, कारण सहित दो।

२—नीचे लिखे विषयों पर निबन्ध लिखो:—

"मोटर अधिक उपयोगी है या बैलगाड़ी?"

"पक्का मकान बनाम कच्चा मकान।"

गद्य बनाम पद्य

(संक्षिप्त निबन्ध)

१—भूमिका।

२—गद्य क्या है—गद्य की विशेषताएँ।

३—पद्य क्या है—पद्य की विशेषताएँ।

४—दोनों की तुलना।

५—समाप्ति।

१—गद्य और पद्य दोनों विचारों के प्रकट करने के दो ढंग हैं।

२—गद्य में व्याकरण के नियमों का पालन होता है। शब्दों के अपने-अपने स्थान निश्चित होते हैं। वाक्यों का कोई नाप नहीं होता। अपने रात-दिन के काम-काज में हम गद्य का ही प्रयोग करते हैं।

३—पद्य के नियम अलग हैं और वे छन्द-शास्त्र के अधीन हैं। उनमें शब्दों के लिए स्थान नियुक्त नहीं होते हैं। उनमें अक्षरों की गिनती होती है । उसकी पंक्तियों की लम्बाई नपी तुली होती है। पद्य में एक लय होती है।

४—गद्य और पद्य दोनों ही के द्वारा काव्य की रचना हो सकती है। दोनों में रस पैदा किया जा सकता है। गद्य-काव्य भी बड़ा मनोहर होता है। किन्तु पद्यात्मक काव्य यानी कविता में एक लय होती है, जिसका प्रभाव अधिक पड़ता है। पद्य रचना एक कला है और बहुत ऊँची चीज़ है। किन्तु वह उतनी उपयोगी नहीं है, जितनी गद्य। पद्य में नित्य के व्यवहार-व्यापार आदि की बातें नहीं हो सकतीं। गद्य में स्वाभाविकता होती है, पद्य में बनावट होती है।

५—पद्य शोभा और आनन्द की चीज़ है। गद्य व्यवहार और प्रयोजन की, पद्य नशा है, किन्तु गद्य ख़ुराक है।

अभ्यास

१—ऊपर दिये हुए संक्षिप्त निबन्ध का विस्तारकर पूर्ण निबन्ध लिखो।
२—अपने पठन-पाठन में जो पद्य या गद्य के अंश तुम्हें बहुत पसन्द आ गये हों, उनमें से दो-दो पंक्ति उदाहरण के लिए उद्धृत करो।

दूध

दूध संसार का अमृत है। मनुष्य जाति क्या, प्राणी-मात्र का तीन-चौथाई हिस्सा इसका ऋणी है। वास्तव में यही उनका प्राण है। दूध निर्बल और बलवान सभी का जीवन है। एक बलवान पहलवान भी अपने शरीर

को पुष्ट करने के लिए दूध का ही आश्रय लेता है। और एक अत्यन्त निर्बल रोगी, जो और कुछ पचा नहीं सकता इसी दूध के सहारे जीता है। बच्चा जब पैदा होता है, तो उसको सब से पहले दूध की आवश्यकता होती है और कुछ दिनों तक एकमात्र दूध ही उसका भोजन रहता है। पशुओं में भी लगभग सभी पशु चाहे वे मांसाहारी हों या शाकाहारी, अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। यह केवल किसी देश की बात नहीं, बल्कि सारे जगत का यही नियम है। पीने के अतिरिक्त दूध और अनेक प्रकार से व्यवहार में लाया जाता है। इसी से दही, मक्खन, खोया, पनीर आदि तैयार किये जाते हैं। अनेकों प्रकार की मिठाइयाँ भी इससे बनाई जाती हैं।

हिन्दुओं में इसी दूध के कारण गौ का इतना मान है। हिन्दू-धर्म में उसे माता की पदवी दी गई है। सारे हिन्दू सगी माँ से बढ़कर उसका सम्मान करते हैं। भिन्न-भिन्न पशुओं में गाय का दूध गुणों की दृष्टि से सर्वोत्तम होता है। इसी लिए सब पशुओं में गाय को इतना महत्व दिया गया है। यही नहीं, हिन्दू जगत में इसका और भी ऊँचा स्थान है। हिन्दू धर्म का कोई भी पर्व या त्यौहार ऐसा नहीं, जिसमें दूध की आवश्यकता न हो। किसी भी देवी-देवता की पूजा बिना दूध के पूरी नहीं हो सकती। चरणामृत बिना दूध के नहीं बन सकता। हिन्दू पुराणों के अनुसार तो दूध का स्थान बहुत ऊँचा है। भगवान विष्णु भी क्षीर-सागर में ही शयन करते हैं। संसार नष्ट हो जाय; मगर इस दूध का नाश नहीं हो सकता। प्रलय के बाद भी भगवान रहेंगे और अपनी शैया पर शयन करेंगे। सृष्टि मिट जायगी ? सारे पदार्थ नष्ट हो जायँगे, किन्तु यह अनन्त क्षीर-सागर लहरें मारता रहेगा।

यह तो हुई पुराणों की बात। अब नित्य प्रति के व्यवहार को लीजिए। उसमें भी दूध का बड़ा प्रभाव देखा जाता है। हिन्दू मुसलमान सभी दूध की शपथ एक बड़ी गम्भीर शपथ समझते हैं। जब कोई कहता है कि "मुझे अपनी माता का दूध हराम है" अगर अमुक कार्य न करूँ, तो इसके अर्थ यह होते हैं कि वह इसे अवश्य करेगा। दूध की शपथ खाना या खिलाना कोई साधारण बात नहीं। यह एक कठिन प्रतिज्ञा है।

गाय के समान ही भैंस का भी दूध बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। भैंस के बाद बकरी का दूध भी कुछ लोग पीने के काम में लाते हैं। कुछ देशों में घोड़ी का दूध भी पीने के काम में आता है। किन्तु भारतवर्ष मे और पशुओं का दूध केवल औषधि के रूप में व्यवहार में लाया जाता है।

भिन्न-भिन्न दूधों के भिन्न-भिन्न गुण होते हैं। गाय का दूध ठंडा और जल्दी पच जाने वाला, और भैंस का गरम और देर में पचने वाला होता है। बकरी का दूध गाय से भी हलका होता है। नवजात शिशुओं को बहुधा बकरी का ही दूध दिया जाता है। और यदि गाय का दिया जाता है, तो आधा जल मिला कर और हलका कर के।

दूध पीने के सम्बन्ध में कुछ विशेष नियम हैं। कुछ डाक्टरों का मत है कि दूध प्रातःकाल बिना कुछ खाये खाली पेट नहीं पीना चाहिए। रात्रि में भोजन के पश्चात् सोने के पूर्व थोड़ा गरम-गरम दूध पीना उपयोगी है। गाय का दूध यदि दुहे जाने के पश्चात् तुरन्त कच्चा ही पिया जाय तो अत्यन्त लाभदायक होता है।

कहा जाता है कि एक समय था, जब भारत में दूध की नदियाँ बहती थीं। इस किम्बदन्ती का आशय केवल यह है कि

भारतवर्ष में इतना अधिक दूध होता था कि उसे जल की तरह बच्चा बच्चा बिना पैसा ख़र्च किये पी सकता था। अब दशा इतनी बिगड़ गई है कि शहरों में रह कर बिना गाय, भैंस स्वयं पाले हुए कोई शुद्ध दूध पी नहीं सकता। और गाय-भैंस पालना उन्हीं के लिए सम्भव है जो धनाढ्य हैं। देहातों में तो ग़रीबी इतनी अधिक है कि लोग अपने पशुओं को ठीक खिला नहीं सकते। चराने के लिए भी कोई स्थान नहीं। इसलिए उनके लिए पशु-पालन एक कठिन समस्या है। इसका परिणाम यह है कि दूध का दिन-पर-दिन अभाव होता जाता है। परन्तु अन्य देशों में व्यापारिक दृष्टि से दूध पैदा करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, और इसलिए इस दृष्टि से वे आजकल भारतवर्ष से अच्छे हैं।

कैसा दुर्भाग्य है। जिस देश में गोपाल ने गौएँ चराई हों, जिस देश में गौ की माता के समान पूजा हो, जिस देश का प्रधान उद्यम खेती और पशु-पालन हो, जिस देश की दृष्टि में गो-धन सब से अमूल्य सम्पत्ति हो, उसी देश के बच्चे पैसे-पैसे भर दूध के लिए तरसें।

अभ्यास

१—इसी प्रकार केवल 'गाय के दूध' पर निबन्ध लिखो।

२—'गंगा-जल' पर निबन्ध लिखने के लिए ढाँचा बनाओ।

प्रसन्नता

१—भूमिका।

२—मनुष्य की प्रसन्नता और उसके प्रकट करने के भिन्न-भिन्न रूप।

३—पशु-पक्षी और वनस्पति में भी प्रसन्नता का अनुभव।

४—सच्ची प्रसन्नता-प्राप्ति के साधन—स्वस्थ सदाचारयुक्त सादा जीवन, कर्त्तव्यपूर्ति, संतोष।

५—प्रसन्नता से लाभ।

प्रसन्नता सभी चाहते हैं, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, बूढ़ा हो या बच्चा, स्त्री हो या पुरुष। उसी के लिए इस जगत का यह सारा जंजाल है। उसी के लिए सारे कार-बार, परिश्रम, सेवा, भक्ति, पठन-पाठन आदि व्यापार हैं। उसी के लिए लोग एक दूसरे का गला काटते हैं, और चोरी ऐसे घृणित-से-घृणित कार्य करते हैं। उसी के लिए घोर-से-घोर युद्ध होते हैं और बड़ी-से-बड़ी संधियाँ होती हैं। उसी के लिए लोग माया-मोह का त्याग कर दुनियाँ के कोने में किसी पर्वत की कन्दरा, घने वन की निर्जन कुटी या किसी नदी वा सुनसान किनारे की खोज करते हैं।

मनुष्य के जीवन में अवस्था के परिवर्त्तन के साथ-साथ प्रसन्नता की रुचि में भी परिवर्त्तन होता रहता है। बच्चा एक बात से प्रसन्न होता है, जवान दूसरी बात से और बूढ़ा बिल्कुल तीसरी बात से। यही नहीं, हर बच्चे एक ही बात से प्रसन्न नहीं होते और न एक ही बात प्रत्येक युवा या वृद्ध पुरुष को प्रसन्न कर सकती है। वास्तव में "भिन्न रुचयः लोकाः" की कहावत सत्य है। जितने आदमी हैं, उतनी ही रुचि हैं।

इसलिए प्रसन्नता का कोई एक रूप निश्चित नहीं किया जा सकता।

प्रसन्नता की रुचि अलग-अलग होते हुए मनुष्य की यह भी एक रुचि है कि वह बहुत से लोगों में मिलकर प्रसन्नता प्राप्त करे। इसीलिए बड़ी-बड़ी ज्यौनारें, गाने-बजाने की महफ़िलें, मेले-तमाशे, होली-दिवाली और ईद-बक़रीद आदि त्यौहार मनाये जाते हैं। इन अवसरों पर अनेक आदमियों का मिलना और भीड़-भाड़ ही बहुत कुछ प्रसन्नता का कारण होती है। पर्व-त्यौहारों के अवसरों पर जाति-की-जाति उन्मत्त हो जाती हैं। जाति के छोटे-से-छोटे बच्चे से लेकर मरणप्राय बूढ़ा तक उमङ्ग के रंग में रँग जाता है।

हँसी या मुस्कराहट प्रसन्नता के ही चिह्न हैं।। खेल-कूद, नाच-गाना, दावत आदि प्रसन्नता प्रकट करने के भिन्न-भिन्न उपाय हैं। जंगली जातियाँ भी जब प्रसन्न होती हैं, गाती-बजाती, नाचती कूदती और हँसती हैं। प्रसन्नता के अवसरों पर अपने को उसी प्रकार सजाती हैं जैसे संसार की और सभ्य जातियाँ। उनका नाच-कूद, गाना-बजाना और सजावट का ढंग दूसरा हो सकता है।

मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षी और बनस्पति तक प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। कुत्ते प्रसन्न होकर दुम हिलाते हैं, हाथी किसी सरोवर में सूँड से जल उछाल-उछाल कर क्रीड़ा केवल प्रसन्नता के कारण ही करता है। इसी प्रकार घोड़े, गाय, बैल आदि अनेकों पशुओं की प्रसन्नता का प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। सिंह, भालू आदि के समान भयानक और हिंसक पशु भी प्रसन्न होते हैं।

पक्षी भी जब प्रसन्न होते हैं, अपने कलरव से वायु को गुँजा देते हैं। कोयल अपने आनन्द में मस्त होकर कू-कू करती है, बुलबुल प्रसन्न होकर चहकती है और मोर नाचने लगते हैं। यही अन्य सारे पक्षियों का भी हाल है। कुछ की प्रसन्नता का अनुभव हमें होता है और बहुतों का नहीं। छोटे-छोटे कीड़ों-मकोड़ों में आनन्द मनाने की प्रकृति पाई गई है और वह सामूहिक रूप में भी।

सुख और दुख का अनुभव वृक्ष वनस्पति भी करते हैं। हवा-पानी और धूप आदि अपनी ख़ूराक पाकर वृक्ष सिहर उठते हैं, लताएँ चमक उठती हैं। सूर्योदय होते ही कलियाँ मुस्कराने लगती हैं और फूल खिल उठते हैं।

सारे संसार पर अपनी छाप रखने वाली प्रसन्नता मनुष्य कैसे प्राप्त करे यही उसके जीवन की एक समस्या है। उसके लिए अनुभव ने कुछ मोटी-मोटी बातें सिद्ध कर दी है। जैसे; बिना स्वास्थ्य के कोई प्रसन्न नहीं रह सकता। लाखों करोड़ों की सम्पत्ति, विशाल से विशाल साम्राज्य का अधिपति होकर भी बिना स्वास्थ्य के मनुष्य सारी प्रसन्नता से वंचित रह जाता है। संसार के सारे स्वादिष्ट पदार्थ उसके लिए व्यर्थ हैं। ठण्डी हवा में वह बाहर निकल नहीं सकता, खुली हवा में वह बाहर सो नहीं सकता। उसका जीवन ही उसके लिए बोझ है।

किन्तु कोई आदमी उस समय तक स्वस्थ नहीं हो सकता, जब तक सदाचार युक्त उसका जीवन न हो। सदाचारी स्वस्थ पुरुष के हृदय में एक पवित्रता रहती है और एक अद्भुत प्रसन्नता का अनुभव वह सदा किया करता है। वह निर्भय और निश्चिन्त होता है।

सदाचारी और स्वस्थ पुरुष को उस समय तक भली भाँति प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती है, जब तक उसका जीवन सादा, नियमित और कर्त्तव्य परायण न हो। सादे जीवन में आवश्यकताएँ कम होती हैं। नियमित और कर्त्तव्य परायण रहने से सब को आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है, जिसका अनुभव वह स्वयं ही कर सकता है।

यह सब होने पर भी, जिस बात में पूरी प्रसन्नता का रहस्य छिपा हुआ है, वह सन्तोष है। धन, रूप, शक्ति, योग्यता, आदि सारी अभिलाषाओं के पूरे हो जाने पर और अधिक पाने की व्याकुलता मनुष्य की सारी प्रसन्नता पर पानी फेर देती है। विना सन्तोष के प्रसन्नता क्षणिक होती है! मनुष्य को चिन्ता और चाह सदा घेरे रहती हैं।

देखा जाता है, अनेक साधु और महात्मा नंगे और भूखे रहने पर भी प्रसन्न रहते हैं। किसान कड़ी से कड़ी मेहनत के बाद आधे पेट खाकर अपनी टूटी झोंपड़ी में चैन से टाँगें फैला कर सोता है। इस सब का कारण है सन्तोष। सन्तोष प्रसन्नता का मर्म है।

दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि सुख और दुख मन की बातें हैं। "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत"। इसी सिद्धान्त के आधार पर लोग घोर-से-घोर विपत्ति और कष्ट की अवस्था में भी प्रसन्न रहते हैं।

जो प्रसन्न नहीं रहता, उसका मर जाना अच्छा है। मनुष्य के जन्म का यही उद्देश्य है कि वह इहलोक और परलोक दोनों के लिए आनन्द की प्राप्ति करे। आनन्द-उल्लास, सुख और शान्ति, इसी प्रसन्नता के दूसरे नाम हैं। आनन्द जागने की नींद है।

एक बार जी खोलकर हँस लेने के बाद बड़ी थकावट दूर हो जाती है। उससे स्वास्थ्य सुधरता है। जो बालक हँसते नहीं, सुस्त पड़ जाते हैं। जिन पुरुषों अथवा स्त्रियों के मुख पर हँसी की रेखा नहीं दिखाई पड़ती, उन्हें देखने से भय मालूम होता है। प्रसन्नता जीवन का चिह्न है। किसी ने ठीक कहा है:—

ज़िन्दगी ज़िन्दा दिली का नाम है।
मुर्दा दिल क्या ख़ाक जिया करते हैं॥

अभ्यास

१—नीचे दिये हुए ढाँचे के आधार पर निबन्ध लिखो।

सेवा।

१—सब धर्मों से ऊँचा धर्म।

२—सेवा का महत्व—धार्मिक, सामाजिक और संगठन-सम्बन्धी।

३—सेवा का रूप—(१) माता-पिता, देश, जाति, धर्म, दीन-दुखियों और दरिद्रों की सेवा।

(२) तन, मन या धन से अनाथालय, धर्मशाला, पाठशाला, अस्पताल आदि खोलना, सेवा समिति, स्काउटिंग आदि।

४—सेवा करने वाले कुछ पुरुषों के उदाहरण।

५—इसी प्रकार 'रुग्णावस्था' विषय का ढाँचा बनाओ।

श्मशान

१—भूमिका।

२—दृश्य—(१) हिन्दूश्मशान—जलती हुई चिताएँ, जलाने की तैयारी, साथ आए हुए लोग आदि।

(२) मुसलमान-ईसाई श्मशान—क़ब्रें, शव, अन्त्येष्टि।

३—श्मशान का मन पर प्रभाव।

४—समाप्ति।

१—मरने के बाद जहाँ मनुष्य जलाया या गाड़ा जाता है, उसी को श्मशान कहते हैं। हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों के अलग-अलग श्मशान होते हैं। अन्त्येष्टि श्मशान के अतिरिक्त दूसरी जगह नहीं की जा सकती।

२—(१) श्मशान का दृश्य बड़ा करुण और भयानक होता है। हिन्दू श्मशान में कहीं चिताएँ जल रही हैं, कहीं दूसरी चिताओं के लिए लकड़ी पड़ रही हैं, कहीं अधजली लाश पर गिद्ध, चील और कुत्तों में युद्ध होता है, कहीं सूखी हुई खोपड़ी पड़ी हैं, कहीं दूसरे मुर्दों को जलाने की तैयारी होती है, लोग शिर मुँडाते, सब को स्नान कराते हैं वा पिंडादि की क्रिया कराते हैं। कहीं लोग बैठे तम्बाकू पीते और गप्पें उड़ाते हैं।

(२) मुसलमान और ईसाई गाड़े जाते हैं। मुसलमानों के शव अक्सर चारपाई पर और ईसाइयों के सन्दूक़ में लाये जाते हैं। वहाँ का दृश्य भिन्न होता है। कहीं क़ब्र खोदी जाती हैं, शव के सामने दुआएँ पढ़ी जाती हैं, कहीं क़ब्र के अन्दर रक्खे हुए मुर्दे पर मिट्टी डाली जाती है। यहाँ कुछ विशेष सौम्य वातावरण रहता है। मुसलमान और ईसाई अपने शव क़ब्र

में ऐसा सँभाल कर रखते हैं, मानो किसी सोते हुए बच्चे को सुलाते हों।

३—स्मशान की वायु में कुछ शोक-सा भरा होता है। उसके गम्भीर पीड़ा-प्लावित वातावरण का मन पर दबाने वाला प्रभाव पड़ता है। मनुष्य को वहाँ बड़ा ज्ञान उत्पन्न होता है।

४—स्मशान मनुष्यों की अन्तिम गोद है।

एक घिसे पैसे की कहानी

(लेखक—एक घिसा पैसा)

मेरा नाम पैसा है। पहले मैं ताँबे की खान में रहता था। 'कब से रहता था' इसका मुझे कुछ पता नहीं। किन्तु वहाँ मैं बड़े अँधेरे में था। मुझे बड़ा कष्ट था। संसार की मुझे कुछ ख़बर न थी। मैं बिल्कुल अपाहिजों की तरह निकम्मा पड़ा था, और अनाथ की तरह उसी खान में रहता था। बहुत चाहता था कि बाहर निकलकर हवा खाऊँ और देखूँ, कि संसार में क्या हो रहा है। पर खेद की बात है कि मैं वहाँ से बाहर निकलने में असमर्थ था। मुझे उन दिनों की अपनी दुःख कहानी को याद करके बड़ा दुःख होता है। जब कभी मुझे अपनी पुरानी बातें याद आ जाती हैं, तभी मेरी छाती दहल जाती है। जिस समय की बात मैं कर रहा हूँ, उस समय मेरा रूप-रङ्ग ऐसा न था, जैसा अब है। मैं ताँबे के ढेर में गला पड़ा था। हाय! उस समय जो दुःख मुझ पर पड़ रहा था, उसे मेरा ही जी जानता है।

भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है। उसकी माया अपरम्पार है। सब के सदा एक से दिन नहीं रहते। सुख के बाद

दुःख, दुःख के बाद सुख का चक्कर सदा चलता ही रहता है। इसलिए मेरे भी दिन फिरे। मेरे भी नरकबास की अवधि पूरी हो गई। मैं अपनी पुरानी दशा से नई दशा में आ गया। उसका हाल सुनिये।

एक दिन एक कुली ने मेंरे उस अँधेरे घर में घुसकर मुझे वहाँ से खोद निकाला। वहाँ से मैं गाड़ियों में लादकर कलकत्ते की टकसाल में पहुँचाया गया। टकसाल के कारीगरों ने मुझे आग की भट्टी में गरम करके गलाया। फिर साँचे में ढालकर गोल बनाया। भट्टी में तपाने से मेरा रङ्ग सोने की तरह चमकने लगा। सैकड़ों, हज़ारों बरसों का जमा हुआ मेरा मैल आग ने भस्म कर डाला। यह मानो मेरे पापों का प्रायश्चित्त था। जब मैं इस प्रकार शुद्ध हो गया, तब मेरी पीठ पर मेरा नाम और मेरा जन्म-संवत् छाप दिया गया। इस तरह मेरा नामकरण संस्कार हुआ, और मेरी जन्म-कुण्डली बनी। इतना हो चुकने पर आगे की ओर मेरी छाती पर, महारानी विक्टोरिया की मूर्ति की मुहर लगी। इसके बाद मुझे बाहर आने की आज्ञा मिली। यही मेरा निष्क्रमण संस्कार हुआ।

मैं परमेश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे बहुत से भाई हैं। हम सब भाई एकसे हैं। हम सब द्विज हैं। हमारा भी जन्म दो बार होता है। पहला जन्म हमारा खान में होता है और दूसरा टकसाल में। इसीलिए हमारी भी गिनती द्विजों में है।

हमारे कुछ भाई सफ़ेद भी हैं और कुछ पीले भी। उनमें कोई छोटे हैं, कोई बड़े। सब से छोटे का नाम 'दुअन्नी, उससे

बड़े का चवन्नी, उससे बड़े का अठन्नी और सब से बड़े का नाम रुपया है।

एक रुपया दो अठन्नियों, चार चवन्नियों या आठ दुअन्नियों के बराबर होता है। किन्तु हम पैसे हैं। हम लोग ६४ भाई इकट्ठे हों तो एक रुपये के बराबर हो सकते हैं। फिर भी हमारे बिना किसी का काम नहीं चल सकता।

अच्छा अब आगे का हाल सुनिये। एक दिन एक बनिया हम सबों को थैली में भरकर अपने घर ले गया। तब से मैं बराबर हाथों-हाथ घूम रहा हूँ। हज़ारों आदमियों के हाथों में घूम आया, बड़ी-बड़ी पर्देवाली स्त्रियों तक के हाथों में मैं हो आया हूँ। मैं राजमहलों में बेखटके चला गया, मुझे किसी पहरेदार ने नहीं रोका। मैं लोगों को बड़ा प्यारा हूँ! मुझे लोग बड़ी सावधानी से रखते हैं। कोई मुझे अण्टी में रखता है, कोई पाकेट में रखता है, कोई सन्दूक़ में रखता है, कोई-कोई तो मुझे इतना चाहता है कि दिन रात छाती से लगाये रहता है। लोगों का यह कहना कि:—

"जिसके पास नहीं है पैसा। उसका जग में जीवन कैसा॥" बहुत ही ठीक है।

हाँ तो, मैं इसी तरह घूमता-घामता, एक बार प्रयाग के माघ मेले में जा पहुँचा। उस साल बहुत बड़ा मेला था—कुम्भ था। घूमता-घामता मैं एक भूखे साधु के हाथ में जा पड़ा। मुझे पाकर वह बड़ा ख़ुश हुआ। यों तो मुझे जो पाते हैं, वही ख़ुश हो जाते हैं, पर वह अपाहज साधु मुझे पाकर बड़ा ही ख़ुश हुआ। उसको इतना ख़ुश देखकर मैंने सोचा कि अब कुछ दिन इसी साधु की कुटिया में निवास करूँगा, पर वह भी मुझे न

रख सका। रख कहाँ से सकता ? बेचारा मारे भूख के तड़प रहा था। दो दिन से एक टुकड़ा भी उसे कहीं से न मिला था।

साधु ने मुझे एक दूकानदार को देकर अपने पेट की आग बुझाई। उसने चने लेकर खा लिये। दूकानदार ने एक छेद की राह मुझे एक सन्दूक़ची में डाल दिया। वहाँ मुझे मेरे बहुत से भाई मिले। मैं अपने भाइयों के पास थोड़ी देर भी न बैठने पाया था, कि इतने में बनिये के लड़के ने मुझे ले जाकर एक हलवाई की दूकान पर डाला। हलवाई ने मेरे बदले में उस को मिठाई दे दी। खाकर लड़का बड़ा खुश हुआ, मैं इसी तरह कितनी ही दूकानों, कितने ही राज-महलों और कितनी ही छोटी-छोटी झोंपड़ियों में घूमता रहा हूँ।

मैं अपने घूमने की सारी कहानी यहाँ सुनाने लगूँ तो महाभारत से भी बड़ा पोथा तैयार हो जाय।

अरे राम रे ! अब तो घूमते-घूमते मेरा सारा शरीर घिस गया। अब मैं बूढ़ा हो गया। बुढ़ापे में जब आदमी का भी मान कम हो जाता है, तब मैं किस खेत की मूली हूँ। जो पाता है, वही लौटा देता है ; मेरा सब जगह अपमान ही होता है। अब मैं लखनऊ के बड़े कारखाने में आ गया। अब यहाँ से कहीं बाहर नहीं जा सकता। शायद मुझे फिर टकसाल में जाना पड़े, वहाँ मेरा फिर पुनर्जन्म होगा। जिस तरह प्राणियों का पुनर्जन्म होता है, उसी तरह मेरा भी पुन-र्जन्म होगा। मैं भी "यथापूर्वमकल्पयत्" के अनुसार फिर संसार में दौरा करने लगूँगा।

अभ्यास

१—नीचे दिये हुए ढाँचे के आधार पर निबन्ध लिखो:—

स्कूल-घड़ी की आत्मकथा

१—भूमिका।

२—स्कूल में आने के पूर्व—साथ की दूसरी घड़ियाँ, विलायती कारख़ाना, समुद्र-यात्रा, दिल्ली में करीम भाई की दूकान।

३—आने पर—स्कूल का प्रथम दर्शन, साधारण चित्र, कमरे का चित्र, टाँगे जाने की तैयारी, देखने वालों की उत्सुकता।

४—अनुभव—स्कूल का नियत समय पर खुलना, विद्यार्थियों की चहल-पहल, हेड-मास्टर के कमरे में आने-जाने वालों का वर्णन, हेड-मास्टरों की बदली, कोई विशेष घटना।

५—बुढ़ापा और बिदा—मरम्मत, नीलाम, बिककर एक विद्यार्थी द्वारा खोला जाना, अंग-भंग।

६—समाप्ति—सारे जीवन पर एक सूक्ष्म दृष्टि।

२—इस प्रकार के निबन्ध किस श्रेणी के निबन्ध कहे जा सकते हैं?

बालचर संस्था

१—भूमिका।
२—इतिहास।
३—नियम।
४—लाभ।
५—दूसरे देश और बालचर संस्था।
६—भारतवर्ष और बालचर संस्था।

'स्काउटिंग' बाल-चर संस्था का अँगरेज़ी नाम है—और सारा सभ्य संसार इस नाम से परिचित है। स्काउटिंग का जन्म हुए अभी बहुत थोड़ा समय हुआ है, और इस थोड़े समय में उसने

जैसी लोक-प्रियता प्राप्त की है, वह इसका एक प्रमाण है कि स्काउटिंग से संसार का हित है और वह एक लाभदायक संस्था है।

इस संस्था को जन्म देने का सौभाग्य एक अँग्रेज़ी फ़ौजी अफ़सर मिस्टर बेडिन पावल को है। 'योरोपीय महायुद्ध समाप्त होने के बाद उक्त मिस्टर पावल ने नौजवानों की एक ऐसी विश्वव्यापी संस्था स्थापित करने की इच्छा प्रकट की, जो किसी भी कठिन समय में अपने देश और जाति की सेवा कर सके, और जिसके सदस्यों का परस्पर ऐसा भ्रातृ-भाव हो जिस में वे यह भूल जाँय कि वे अँग्रेज़ हैं या भारतीय, अमेरिकन हैं या जापानी, प्रत्युत उनके सम्मुख सदा यह ध्यान रहे कि हम उस एक वृहत् भ्रातृ-मण्डल के सदस्य हैं, जो सारे संसार का एक है। उन्होंने इस संस्था का नाम स्काउटिंग रक्खा। संसार ने इस विचार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की, और उदारता पूर्वक प्रत्येक देश ने इसे अपनाया।

अब लगभग सारे देशों में 'स्काउट' या बालचर मौजूद हैं, और वे पहले स्काउट हैं बाद को चीनी, जापानी, अमेरिकन या जर्मन। इस संस्था के प्रत्येक सदस्य को यह शपथ लेनी पड़ती है कि वह परमात्मा, अपने राजा और अपने देश के प्रति सच्चा रहेगा। इनके अतिरिक्त और दस नियम हैं जिनका पालन करना प्रत्येक स्काउट का धर्म है। उसका धर्म है कि वह सदा प्रसन्न रहे, बड़ी-से-बड़ी कठिनाई को मुस्करा करके टाल दे। धैर्य्य और साहस स्काउट के विशेष गुण हैं। किसी घर को जलते हुए, किसी बालक को डूबते हुए अथवा किसी प्रकार की अन्य आपत्ति में फँसे हुए किसी व्यक्ति को देखकर स्काउट विना सहायता किये हुए यदि आगे बढ़ता है, तो वह स्काउट-धर्म का पालन नहीं करता।

स्काउटों को स्वावलम्बन, तथा सादे और परिश्रमशील जीवन की शिक्षा दी जाती है। इनके अतिरिक्त तैरना, पेड़ पर चढ़ना, खाना बनाना, आघात या चोट खाये हुए व्यक्ति की सेवा शुश्रूषा करना, पता लगाना, झंडी या लैम्प के संकेत द्वारा बात-चीत करना, आदि अनेक ऐसी बातों की उन्हें शिक्षा दी जाती है जिस से युद्ध या शान्ति किसी भी अवस्था में वे अपने देश और जाति की सेवा कर सकें।

छोटे स्कउट 'कब' कहलाते हैं, और बड़े स्काउट को रोवर्स कहा जाता है। पेट्रोल लीडर, स्काउट मास्टर आदि उन में कई वैसे ही पद होते हैं जैसे फौज में रिसालदार, कप्तान आदि। उनके परस्पर व्यवहार करने का एक ढंग है। सब स्काउट एक ही प्रकार के कपड़े पहनते हैं, जैसे जाँघिया, आधी बाँह का कुर्ता, मोज़ा, जूता, साफ़ा, या टोप तथा गले में बाँधने का रूमाल। यही उनकी वर्दी है।

बालचर अपनी श्रेणी के दूसरे बालकों की अपेक्षा अधिक चैतन्य और समझदार होते हैं। स्काउट अत्यन्त विस्तृत रूप से संगठित संस्था होने के कारण एक स्काउट किसी देश या स्थान में जाकर अपने को अपरिचित या अकेला नहीं समझ सकता। दूसरे स्काउट उसे अवश्य मिल जायँगे और उनके मिलते ही उसके सारे परिचित व्यक्तियों का अभाव दूर हो जायगा। आज-कल देहात के एक छोटे-से-छोटे स्कूल में भी स्काउट के बालक मिलेंगे।

अमेरिका, जापान तथा योरोप के सारे देशों में स्काउट संस्थाएँ र्याप्त संख्या में स्थापित हैं। प्रत्येक देश की सरकार अपने यहाँ :स संस्था को प्रोत्साहन देती है। थोड़ा ही समय बीता है जब

इङ्गलैंड में स्काउटों का एक बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ था। उसे स्काउट-जम्बूरी कहते थे। उसमें सारे देशों से थोड़े-थोड़े स्काउट सम्मिलित होने के लिए आये थे। भारतवर्ष से भी कुछ स्काउट गये थे। वह एक अपूर्व दृश्य था।

भारतवर्ष में अब बड़े विस्तृत रूप में बाल-चर संस्थाएँ स्थापित हो गई हैं। गाँव के स्कूलों में भी अनेकों बालकों को स्काउटिंग की शिक्षा दी गई है। भारतवर्ष में बालचर संस्थाएँ दो भागों में विभक्त हैं। एक भाग का सम्बन्ध बेडिन पावल के संगठन से है और दूसरे का सेवा समिति नाम की संस्था से, जो भारतवर्ष की अपनी एक अलग सेवा करने की संस्था है। बेडिन पावल-स्काउटिंग के प्रमुख बालचर वायसराय हैं, और सेवा-समिति बालचरों के मुख्य बालचर पं० मदन मोहन मालवीय हैं। किन्तु दोनों का उद्देश्य एक है और दोनों समान रूप से उपयोगी हैं।

सारे संसार के नौजवानों को भ्रातृत्व के सूत्र में बाँधने वाली बाल-चर संस्था एक ऐसी अद्वितीय संस्था है जिसने संसार को बड़ा लाभ पहुँचाया है, और आगे भी जिससे संसार में सुख और शान्ति की वृद्धि होने की बड़ी आशा है। बालचर संस्था उन स्वर्गीय संस्थाओं में से एक संस्था है, जिनके लिए प्रत्येक देश और जाति को गर्व हो सकता है। यह संस्था उस देश के जीवन और आदर्श का परिचय देती है। प्रत्येक नौजवान को एक स्काउट बनकर सारे संसार से अपना और अपने देश का नाता स्थापित करना चाहिए।

अभ्यास

१—ऊपर दिये हुए निबन्ध का ढाँचा तैयार करो।

२—नीचे दिये हुए विषयों पर निबन्ध लिखोः—

'सेवा-समिति', 'तुम्हारे स्कूल की स्काउट संस्था'।

पर्वतीय दृश्य

१—भूमिका।

२—प्राकृतिक सौन्दर्य की विशेषताएँ—

(अ) स्रोत और झरने, वृक्ष, हरियाली, तुषार आदि का सौन्दर्य।

(इ) पर्वतों के पशु और पक्षी।

३—पर्वतीय दृश्य का प्रभाव—शरीर और मन पर।

४—समाप्ति।

१—पर्वतीय दृश्य अन्य प्राकृतिक दृश्यों से निराला होता है। उसकी सुन्दरता दूसरी प्राकृतिक सुन्दरता से भिन्न होती है। उसमें गम्भीरता और नीरवता मिली होती है।

२—(अ) कोई पर्वत लाल, कोई भूरे, कोई हरे और कोई श्वेत दिखाई देते हैं। कुछ का पत्थर लाल होता है, कुछ पर घास भी नहीं होती, कुछ पर बड़े-बड़े जंगल होते हैं, और कुछ पर्वत तुषार से ढके रहते हैं। पर्वतों से गिरते हुए झरने और उनसे निकलने वाली नदियों के स्रोत बड़े सुन्दर मालूम होते हैं। प्रातः-काल और सायं-काल के दृश्य बड़े मनोहर होते हैं।

(इ) पर्वत पर होने वाले बहुत से वृक्ष मैदान के वृक्षों से भिन्न होते हैं। लम्बे-लम्बे सनोवर, साखू, ताड़, सागौन आदि की सुन्दरता में सौम्यता मिली होती है।

३—पर्वतीय दृश्य का स्वास्थ्य और मन पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य सुधारने के लिए लोग पर्वतों पर ही अपनी गर्मी बिताते हैं। बड़े-बड़े साधु-महात्मा वहाँ तपस्या और भजन के लिए अपना आवास ढूँढ़ते हैं।

४—पर्वतीय मनोहरता दिव्य है। प्रकृति वहाँ ही निवास करती है।

वार्तालाप

वार्तालाप संसार की एक अद्भुत कला है। अच्छे ढंग से बातचीत करना मनुष्य का एक अलौकिक गुण है। मनुष्य को अपने रात-दिन के जीवन में वार्तालाप की प्रति-क्षण आवश्यकता पड़ती है। विना वार्तालाप के घर और बाहर कहीं कोई बात हो ही नहीं सकती। गूँगा भी बातें करता है। उसके संकेत ही उसकी वार्तालाप की भाषा है।

बहुत से लोग जन्म से ही बातूनी होते हैं, और बहुत से मितवादी। इसी प्रकार बहुत से मनुष्य जन्म से उत्तम ढँग से बातचीत करने की प्रवृत्ति लेकर आते हैं। ऐसा होने पर भी वार्तालाप बहुत अंशों में सीखने और अभ्यास करने की भी चीज़ है, और अन्य कलाओं की तरह बहुत प्रयत्न से सीखी जानी चाहिए। आजकल उन्नतिशील पश्चिमी देशों में अच्छी वार्तालाप करने वालों का बड़ा आदर होता है।

बातचीत में सब से अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि वह प्रिय और सत्य हो। बात में जब सचाई होती है तो उसका प्रभाव स्वतः पड़ता है। बहुत लोगों का यह विचार है कि 'सच्ची बात कड़वी मालूम होती है'। यह कथन किन्हीं

अंशों में सत्य भी है, किन्तु यह सोलह आना सचाई नहीं है। बात का कड़वी और मीठी मालूम होना बहुत कुछ ढंग पर निर्भर है। ऐसे बहुत थोड़े अवसर आते हैं, कि सच बात अच्छे ढंग पर न रक्खी जा सके और कड़वी अवश्य मालूम हो। एक विद्वान् का तो यहाँ तक कहना है कि—'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियं'—अर्थात् सच बोलो तो प्रिय बोलो, किंतु अप्रिय सत्य मत बोलो।

बातचीत में सच्ची सहानुभूति होनी चाहिए। शब्द सोच-सोचकर और चुन-चुनकर प्रयोग करना चाहिए। मुख पर गम्भीरता के साथ-साथ प्रसन्नता झलकनी चाहिए। बातचीत करने वालों को सदा ध्यान रखना चाहिए कि उससे बात करके जो आदमी जाय उस पर उसकी छाप हो। उसकी बात का स्वाद उसे याद आता रहे, और फिर उसे सुनने का चाव हो। बातचीत न बहुत धीरे-धीरे होनी चाहिए कि सुनने वाला ऊब उठे, और न घास काटने के समान जल्दी-जल्दी कि सुनने वाला समझ न सके। बातचीत में दूसरे की भी बात सुनना चाहिए। अपने प्रभाव में यह न भूल जाना चाहिए कि दूसरा क्या कहता है। बात मतलब की कहनी चाहिए। व्यर्थ वार्तालाप करने का बहुधा मनुष्य का एक स्वभाव हो जाता है। यह एक बुरी आदत है।

एक ढंग की बातचीत सदा नहीं की जा सकती। उसके भिन्न-भिन्न अवसर होते हैं। घरेलू बातों में और बाहर की बातों में बड़ा भेद है। बड़ों के सामने बात करने में उनके सम्मान और बड़प्पन का ध्यान रखना चाहिए। छोटों से बात करने में उनके प्रति वात्सल्यभाव रहना चाहिए। बाज़ार में व्यापारिक बातचीत और ढंग की होती हैं, दफ़्तरों, मदरसों

आदि में और ढँग की। इसलिए वार्तालाप में अवसर का ध्यान रखना चाहिए। स्त्रियों से बातचीत विशेष सावधानी पूर्वक करनी चाहिए। उसमें प्रत्येक क्षण पर कोमलता और आदर का भाव रहना चाहिए। पश्चिमी सभ्यता में स्त्रियों से बात करने के कुछ विशिष्ट नियम हैं। मनोविनोद के समय वार्तालाप के गम्भीर बन्धन टूट जाते हैं। उसमें सारे नियन्त्रण भंग हो जाते हैं।

फिर भी वार्तालाप में, चाहे वह मनो-विनोद और हास्य के अवसर पर क्यों न हो, भद्दी, असभ्य, गन्दी बात से सदा बचना चाहिए। बहुत से लोगों का प्रत्येक बात के साथ कुछ गाली बकने का अभ्यास होता है। ऐसे अभ्यासों को उर्दू में तकिया-कलाम कहते हैं। इन भद्दी आदतों को त्याग देना चाहिए। यह वार्तालाप की शोभा नष्ट करने वाली बातें हैं।

प्रत्येक बात में और प्रत्येक अवसर पर हँसना बुरी बात है। साथ ही मुँह सुखाकर बात करना भी बुरा है। रुखाई से बातचीत करने वाले से कोई काम पड़ने पर भी बात करना नहीं चाहता। बातचात में चिढ़ जाना, दूसरे पर आक्षेप करना, ताने या व्यङ्ग की बात करना, अपनी प्रशंसा करना या चाटुकारिता करना वार्तालाप के कलङ्क हैं। बहुत से आदमी जब बैठे हों, तो केवल एक से बात करना या किसी ऐसे विषय पर बात करना जो सब को रुचिकर न हो बड़ी भद्दी बात है।

वार्तालाप के ऐसे अवगुणों को ध्यान में रखकर कौशल पूर्वक जो बात करते हैं, वे वार्तालाप मात्र से बड़े से बड़े कार्य सिद्ध कर लेते हैं, बड़े-बड़े रहस्यों का उद्घाटन करते हैं, जिसे चाहते हैं मोहित कर लेते हैं। दूकानदार वार्तालाप के द्वारा ही व्यापार में बड़ी उन्नति कर सकते हैं। बातचीत मात्र के लिए

पहले राजा लोग अनेकों योग्य व्यक्तियों को सभाओं में नौकर रखते थे। वीरबल बातचीत में कैसे पटु थे, यह आज बच्चा-बच्चा जानता है। वार्तालाप में चतुर व्यक्ति ही बड़े-बड़े राजदूत पद पर नियुक्त किये जाते हैं।

वार्तालाप वास्तव में एक मंत्र है, एक जादू है। उसके द्वारा कठिन से कठिन काम सरल हो सकता है। कविता की भाषा में बात से पत्थर पिघल सकता है और सूखा वृक्ष हरा हो सकता है। मधुर भाषण के लिए गोस्वामीजी ने ठीक कहा है:—

तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजे चहुँ ओर।
बसीकरण इक मंत्र है, तज दे बचन कठोर॥

अभ्यास

१—इस निबन्ध को फिर अपनी भाषा में लिखो। विस्तार में ५०० से १००० शब्दों के बीच में होना चाहिए।

२—पर्यटन पर इसी प्रकार निबन्ध लिखो।

पुष्कर

(लेखक—श्री हनुमान शर्मा)

पुष्कर भारत का एक प्राचीन पवित्र तीर्थ है। यह अजमेर से पश्चिमोत्तर दिशा में तीन कोस पर है। पुराणों में इसकी उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ में मानी गई है। सृष्टिकर्ता स्वयं ब्रह्माजी के द्वारा इसका प्रकट होना और इसमें स्नान करने का महत्फल मोक्ष-प्राप्ति बतलाया गया है। इस कारण इसको तीर्थों का राजा होने का महत्व मिला है।

वास्तव में पुष्कर है भी एक अत्यन्त प्राचीन स्थान। आधुनिक समय के किसी व्यक्ति द्वारा इसके निर्माण का कोई पता

नहीं मिलता। हाँ, इतना अवश्य पाया जाता है कि कालान्तर के कारण से इसमें जो मिट्टी भर गई थी, वह एक बार आज से बहुत वर्षों पहले खुदवाई गई थी। परिहार वंश में उत्पन्न हुए मँडावर के महाराज नाहरराय एक बार शिकार के लिए इधर आये थे। उनके हाथों और पाँवों में बहुत दिनों का गलित कुष्ट था। जल पीने की इच्छा से उन्होंने पुष्कर में प्रविष्ट होकर दोनों हाथों की अंजली से जल पिया और बाहर आये, तब मालूम हुआ कि जल-स्पर्श से उनका कुष्ट जाता रहा। यह देखकर उन्होंने अपने नगर के अनेक मनुष्यों को इकट्ठा करके पुष्कर की हज़ारों मन मिट्टी खुदवा कर अलग गिरवाई और वहाँ घाट बनवा दिया।

महाराजा विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि ने योगी होने पर पुष्कर क्षेत्र के तट के पर्वतों में बहुत वर्षों तक योग-साधन किया था। संवत् २०२ में अजमेर नगर का निर्माण कराने वाले महाराज जयपाल की जन्मभूमि भी पुष्कर ही है। उन्होंने इस क्षेत्र में बहुत वर्षों तक बकरियाँ चराई थीं। पीछे राजा हुए थे। पुष्कर के "नागपहाड़" में फूटा क़िला उन्हीं का है। संवत् ७५०–६० में दौलाराय तथा माणिकराय और संवत् १०७० में बीसलदेव या विशालदेह ने भी इस क्षेत्र में आकर दान मानादि से अपनी कीर्ति चिरस्थिर की थी। इसके सिवा संवत् १५०० के पीछे तो भारत के प्रत्येक प्रभावशाली राजाओं और धनी-मानी सज्जनों ने पुष्कर में स्नान-दान करने और देव-मन्दिर तथा घाट आदि बनवाने में अपना सौभाग्य समझा है।

पुष्कर क्षेत्र कोई सवा कोस के विस्तार में है। इसके पूर्वी भाग में पर्वत और शेष भागों में बालू के स्तूप अर्थात् बड़े-बड़े टीले पड़े हुए हैं। यहाँ घाट और मन्दिरों का ख़ूब ठाठ है। समय-समय पर भारत के राजा-महाराजाओं और धनी-मानी

लोगों ने घाट और अनेक देव-मन्दिर बनवाये हैं। जयपुर के महाराजा मानसिंह, इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई, भरतपुर के राजा जवाहरसिंह और जोधपुर के राजा विजयसिंह आदि के मन्दिर विख्यात हैं। रमणीयता और महत्त्व आदि में ब्रह्माजी का मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है। इसके सिवा बदरीनारायणजी, वराहजी, आत्मेश्वर या कपालेश्वरजी और सावित्री के मन्दिर तथा गौघाट, ब्रह्मघाट, कपालमोचन, यज्ञघाट, बदरीघाट, रामघाट और कोटितीर्थ आदि घाट प्रसिद्ध हैं। वर्त्तमान समय में रंगजी के ढँग पर बीस लाख रुपये की लागत का नगरोपम एक विशाल मन्दिर और बना है, जो 'बड़े मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १६८१ के ज्येष्ठ में हुई है। इसे कलकत्ते के सेठ मगरीराम रामकुमार बागड़ ने बनवाया है। जिस छोटी पुस्तिका की अधिक बिक्री से एक बड़ी जागीर के समान आय होती है उसके निर्माता स्वामी ब्रह्मानन्दजी का आश्रम भी इसी पुष्कर में है।

पुष्कर क्षेत्र को अँग्रेज़ विद्वानों ने तिब्बत के 'मानसरोवर' के समान माना है। आज से पचास वर्ष पूर्व भी इसका जल बहुत स्वच्छ था। यह बहुत विस्तृत और गहरा था। इसमें कमल के फूल तथा अनेक प्रकार के तटवर्ती वृक्ष बहुतायत से थे। अब इसमें मैल मिला हुआ संकुचित पानी और घड़ियाल, मगर-मच्छ आदि जल-जन्तु विशेष हैं। यात्रियों को स्नान करते समय स्वच्छ चित्त से भगवान् का ध्यान करने के बदले घड़ियाल अथवा मगर-मच्छों का ध्यान रखना पड़ता है। तनिक निगाह चूकते ही पाप-राशि धोने वाले भक्त यात्रियों को ये जन्तु तुरन्त घसीट ले जाते हैं। पुष्कर में जीव-हिंसा नहीं होती, इससे उसमें नर-भक्षक जन्तु बढ़ गये-हैं, और जल भी कई अंशों में सड़ गया

है। सुना है सरकार ने इसकी सफ़ाई का विचार किया था, किन्तु पण्डे लोगों की आपत्ति से वैसा नहीं हो सका।

पूर्वकाल में यहाँ असंख्यों यात्री आते थे। प्रत्येक युद्ध के अन्त में राजपूताने का प्रत्येक राजा पुष्कर स्नान करने का नियम रखता था। पर्वादि के अवसरों पर लाखों नर-नारी यहाँ इकट्ठे होते थे। वर्तमान समय में भी कार्तिक शुक्ल ११ से १५ तक बड़ा भारी मेला लगता है। एक लाख से भी अधिक मनुष्य इस समय यहाँ इकट्ठे होते हैं। उस समय बिकने के लिए ऊँट, बैल और घोड़े आदि भी बहुत आते हैं और कभी-कभी अच्छे पशु भी बहुत सस्ते मिल जाते हैं। पुष्कर के सिवा नागकुण्ड, गङ्गा-कुण्ड, सरस्वती झरना, चक्रकुण्ड और वृद्ध-पुष्कर ये स्थान भी देखने योग्य हैं। अधिकांश यात्री इनमें भी जाते हैं। वृद्ध-पुष्कर का जल स्वच्छ है और नल-कल के द्वारा अजमेर में आता है। अजमेर से पुष्कर तक जाने के लिये पक्की सड़क है और सवारी भी मिल जाती है।

अभ्यास

१—अपनी ऐसी किसी यात्रा का वर्णन करो, जिसमें तुम्हें सबसे अधिक आनन्द आया हो।

२—'यात्रा के आनन्द' पर निबन्ध लिखो।

पशु-पक्षियों की चतुराई

१—भूमिका।
२—पशु-पक्षियों में ज्ञान।
३—कुछ उदाहरण—(१) पशु, (२) पक्षी।

४—पश्चिमी विद्वानों की जिज्ञासा।

५—समाप्ति।

१—पशु-पक्षियों की सृष्टि एक ऐसी बड़ी सृष्टि है कि उससे मनुष्य अभी पूरी तरह परिचित नहीं हो सका है। बहुत से पशु-पक्षी जो बहुत पुराने समय में पाये जाते थे, अब पाये ही नहीं जाते।

२—पशु-पक्षी बड़े समझदार होते हैं। उनमें मनुष्य की तरह प्रेम, क्रोध, रुचि, क्षमा आदि सारी बातें होती हैं। मनुष्य को उनकी चतुराई का अभी पूरा परिचय नहीं मिला है।

३—(१) पशुओं में घोड़ा, हाथी, कुत्ता, बन्दर, लोमड़ी और स्यार आदि की चतुरता प्रसिद्ध है। उनकी आश्चर्य-जनक चतुराई के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। कुत्ते, घोड़े आदि पशुओं में स्वामि-भक्ति, युद्ध, शिकार आदि की अनेकों ऐसी बातें भी हैं, जो कम मनुष्यों में होती हैं। सरकस में पशुओं की चतुराई देखी जा सकती है।

(२) पक्षी भी बड़े चतुर होते हैं। तोता, मैना, काकातुई आदि पक्षी मनुष्य की तरह बात करना सिखाये जाते हैं। वह अपनी बातचीत और व्यवहार में मनुष्य को बहुधा चकित कर देते हैं। बाज़ और उक़ाव आदि पक्षी बड़ी योग्यता से शिकार का काम करते हैं। इनकी चतुराई के भी अनेक कौतूहल-पूर्ण उदाहरण हैं।

४—अनेक पश्चिमी विद्वानों ने पशु-पक्षी की प्रकृति का अध्ययन करने में अपना जीवन बिता दिया है। बन्दरों का अध्ययन करने के लिए एक विद्वान् ने अपने १६ वर्ष अफ्राका

में बिता दिये। इनके अनुभव बताने वाली अनेक अँग्रेज़ी पुस्तकें हैं।

५—पशु-पक्षियों और मनुष्यों में केवल भेद इतना है कि उनमें केवल अनुभूत और सिखाई हुई बातों को ग्रहण करने की शक्ति है।

अभ्यास

ऊपर दिये हुए संक्षिप्त निबन्ध का विस्तार करके पूर्ण निबन्ध लिखो।

देश-भक्ति।

एक मनुष्य के हृदय की वह पवित्र भावना जिसके कारण वह कोई बात अपनी जननी जन्म-भूमि के हित के लिए करना चाहता है, देश-भक्ति है। देश-भक्ति बहुत ऊँचा भाव है। भक्त होना कोई साधारण बात नहीं। माता-पिता और गुरु का सच्चा भक्त होना कठिन है, उससे भी कठिन है देश-भक्त होना। देश-भक्ति का स्थान सारी और भक्तियों से ऊँचा है। जो अपने देश का भक्त नहीं, वह भगवान् का भी भक्त नहीं हो सकता। हिन्दू धर्म यह बताता है कि भगवान ने भी यदि जन्म लिया तो अपनी मातृ-भूमि की भलाई के लिए सारे कष्टों का सामना किया। भगवान् कृष्ण का जीवन इसका प्रमाण है। देश की भलाई ही के कारण उन्होंने महाभारत के युद्ध में भाग लिया और देश की भलाई के लिए ही चुन-चुन कर अत्याचार करने वाले राजाओं का नाश किया। लोगों ने देश के हित के विरुद्ध राजभक्ति को तिलाञ्जलि दे दी, माता-पिता की आज्ञा को टाल दिया, गुरु के आदेश की अवहेलना कर दी।

राणा प्रतापसिंह ने अपनी मातृ-भूमि चित्तौड़ के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं उठाये? राज-पाट खोया, स्त्री और नन्हे-नन्हे बच्चों सहित बन-बन मारे-मारे फिरे, भूखों मरे; शीत और घाम क्या, बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना किया, किन्तु अकबर को सम्राट् कहकर अपने देश की मान-मर्यादा को आँच न लगने दी। यही देश-भक्ति का सच्चा रूप है।

एक बूँदी के वीर ने दूसरे राजपूत राजा की नौकरी की। उस राजा ने बूँदी पर चढ़ाई की, हार गया। हारकर शपथ खाई कि जब तक बूँदी के दुर्जय दुर्ग को अधीन न कर लूँगा, जल भी ग्रहण न करूँगा। मन्त्रियों ने उस असाध्य प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए उसी राज्य में एक नक़ली बूँदी का क़िला बनाया और इस प्रकार राजा के प्रण की रक्षा करनी चाही। बूँदी के वीर सिपाही को मालूम होने की देर थी कि उस नक़ली क़िले के द्वार पर अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर खड़ा हो गया। उसने कह दिया, "महाराज! उस नक़ली क़िले को भी आप बिना मुझसे युद्ध किये नहीं जीत सकते, बूँदी मेरी मातृ-भूमि है।"

एक दूसरे राजपूत वीर बल्लूसिंह के बारे में कहा जाता है कि उसका हाथी जब क़िले के फाटक में लगे हुए भालों की नोकों से भयभीत होकर अपने सिर की ठोकर मारने से पीछे हटा, वीर बल्लूसिंह ने अपना शरीर भालों के सामने कर दिया। हाथी ने ठोकर दी, फाटक टूट गया और वीर राजपूत यदि जीवित क़िले में न घुस सका तो उसकी आत्मा को यही सन्तोष था कि उसकी चूर-चूर हड्डियाँ फाटक के अन्दर पहुँच गईं।

भारतवर्ष का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा है। दूसरे देशों ने भी देश-भक्ति के नाम पर असाधारण बलिदान किये हैं। रूस और जापान का युद्ध हो रहा था। जापान के सैकड़ों

नौजवान अपने-अपने प्राण न्यौछावर करने को उतावले थे। एक लड़का जिसके ऊपर अपनी एक मात्र माँ के पालन-पोषण का भार था, इस चिन्ता में था कि मैं युद्ध की इस जलती हुई अग्नि में अपने प्राणों को आहुति देश के लिए कैसे दूँ। बूढ़ी माँ को अपने बेटे की चिन्ता की बात मालूम हो गई। बेटे को कुछ देर के लिए बाहर जाना था कि उसने आत्म-हत्या करली और बेटे के लिए यह लिखकर छोड़ दिया, "पुत्र, मैं तुम्हारे देश के लिए मरने में रुकावट थी, इसलिए मैं तुम्हें अपनी चिन्ता से मुक्त करती हूँ। जाओ, देश के लिए मरो" ये देश-भक्ति के उदाहरण हैं जो संसार के इतिहास में अमर रहेंगे। ये ही गाथायें देशभक्तों को जन्म देंगी।

प्राण देना देशभक्ति की कसौटी है, चाहे वह युद्ध में हो या और किसी प्रकार। जो देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर सकता है वह निस्सन्देह सच्चा देश-भक्त है। ऐसे देश-भक्त ही एक देश की शक्ति हैं। जिस देश के पास ऐसे भक्त नहीं वह अनाथ है।

किन्तु प्राणोत्सर्ग के अतिरिक्त और भी अनेकों रूप हैं, जिनसे देशभक्ति के पवित्र व्रत का पालन किया जा सकता है। युद्ध सदा नहीं होते। प्राण देने के अवसर नित्य नहीं आते। शान्ति की अवस्था में भी देश-भक्ति की आवश्यकता होती है, और उसकी परीक्षा हो सकती है। जो लोग देश के हित को सामने रखकर कविता करते हैं, व्याख्यान देते हैं, कहानियाँ रचते हैं तथा अन्य अनेक प्रकार के ग्रन्थ-रत्नों से देश की श्री-वृद्धि करते हैं, वे भी धन्य हैं। ऐसे साहित्य-सेवी देश के सच्चे भक्त हैं। गोस्वामी तुलसीदास, गौतम, कणादि आदि बड़े ऊँचे दर्जे के देश-भक्त थे।

राजनैतिक और साहित्यिक बातों के अतिरिक्त जो लोग देश की धार्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक निर्बलताओं को दूर करने का प्रयत्न करते हैं, वे भी देश भक्त हैं। महात्मा बुद्ध, श्री महावीर स्वामी, श्री शंकराचार्य, कबीर, नानक, महर्षि दयानन्द, राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन ऐसे ही देश-भक्त थे।

सब बातों का सारांश यह है कि देशभक्त को देश की भलाई का प्रत्येक क्षण ध्यान रखना चाहिए। अपने प्रत्येक काम में यह ख़्याल रहे कि उसके उस काम से देश की कोई हानि न हो। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह छोटा हो या बड़ा, बूढ़ा हो या बालक, धनी हो या निर्धन, देश-भक्त बन सकता है। देश-भक्ति मनुष्यता के साथ है। एक अँग्रेज़ी कवि का कहना है, "क्या संसार में ऐसा भी कोई प्राणी साँस लेता है, जो यह नहीं कहता है कि यह मेरी मातृ-भूमि है ?"

अभ्यास

१—ऊपर दिये हुए निबन्ध का नया ढाँचा तैयार करके फिर से निबन्ध लिखो और उसमें देश-भक्ति की किसी सुन्दर कविता के कुछ उदाहरण भी उद्धृत करो।

२—'गुरुभक्ति' पर निबन्ध लिखो।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

(श्री श्यामसुन्दरदास, बी० ए०)

सुप्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के दोनों पुत्र राय रतनचन्द बहादुर और शाह फ़तहचन्द काशी में आ बसे थे। शाह फ़तहचन्द के पौत्र बाबू हरखचन्द ने अपने ही सद्व्यवहार से असंख्य

सम्पत्ति कमाई और उसे सत्कार्य में व्यय करके बड़ी बड़ाई भी पाई। इनके पुत्र बाबू गोपालचन्द हुए जो हिन्दी भाषा के बड़े अच्छे कवि हो गये हैं। इन्होंने पौराणिक आधार पर ४० काव्य ग्रन्थ रचे और संस्कृत में भी कुछ कविता की। इन के सुपुत्र बाबू हरिश्चन्द्र हुए।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म संवत् १९०७ भाद्रपद शुक्ल ७ चन्द्रवार (तारीख़ ९ सितम्बर सन् १८५० ई०) के दिन हुआ था। बाबू साहब का स्वभाव चञ्चल था, और बुद्धि तीव्र थी। जिस समय केवल ७ वर्ष की अवस्था थी तभी आपने एक दोहा रचकर पिता को समर्पित किया था। उस पर प्रसन्न होकर पिता ने इनको आशीर्वाद दिया कि तू अवश्य मेरा मुख उज्ज्वल करेगा। सो ऐसा ही हुआ भी। परन्तु जिस समय इनकी अवस्था ९ वर्ष की थी इनके पिता का परलोकवास हो गया, जिससे इनकी स्वतन्त्र प्रकृति को और भी स्वच्छन्दता प्राप्त होगई और ये सब काम मनमाने करने लगे। उस समय इनकी पढ़ाई का सिलसिला शुरू हुआ। पहले तो इन्होंने कुछ दिन राजा शिवप्रसाद से अँग्रेज़ी पढ़ी, फिर कालेज में बैठाये गये। कालेज जाते, अपना सबक़ भी याद कर ले जाते और अपनी विचित्र बुद्धि से पाठकों को सन्तुष्ट रखते, परन्तु मन लगाकर न पढ़ते थे। तीन चार वर्ष तक तो इनके पढ़ने का सिलसिला ज्यों-का-त्यों चलता गया, परन्तु सन् १८६४ में अपनी माता के साथ ज्योंही वे जगन्नाथजी को गये, त्योंही इनका पढ़ना-लिखना भी छूट गया। परन्तु कविता में विशेष रुचि बढ़ गई।

जिस समय ये जगन्नाथजी से लौट आये तो इनके चित्त में देश-हित का अंकुर स्फुरित हुआ। परन्तु इनको निश्चय हो गया कि पाश्चात्य शिक्षा के बिना कुछ नहीं हो सकता। इसलिए स्वयं

पठित विषयों का अभ्यास करने लगे, और अपने घर पर एक स्कूल भी खोल दिया जिसमें उस मुहल्ले के बहुत से लड़के पढ़ने आने लगे। समय पाकर यह स्कूल 'चौखम्बा स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और आजकल यही स्कूल हरिश्चन्द्र स्कूल कहलाता है। इसके दूसरे वर्ष सन् १८६८ में इन्होंने "कवि वचन सुधा" को जन्म दिया, जिससे एक काशी के क्या जहाँ-तहाँ के सब भाषा कवियों की कविता प्रकाशित होने का द्वार खुल गया और जिसे पढ़ते-पढ़ते कई एक हिन्दी-प्रेमी अच्छे लेखक हो गये। सन् १८७० में इन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट का पद मिला, परन्तु कुछ दिन बाद आपने स्वयं उस पद को छोड़ दिया। सन् १८७३ में आपने 'हरिश्चन्द्र मेगज़ीन' का प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया, परन्तु केवल आठ अङ्क निकाल के वह बन्द कर दिया गया।

वैसे तो बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी गद्य-पद्य की रचना सन् १८६४ से करने लगे थे, परन्तु १८७३ में इनकी लेखनी ख़ूब परिमार्जित हो चुकी थी। इसलिए अपने लेखन का आरम्भ काल इन्होंने सन् १८७३ से माना है। इस वर्ष इन्होंने 'पेनी रीडिङ्ग' समाज स्थापित किया, जिसमें हिन्दी के अच्छे-अच्छे लेखक लेख लिख-लिखकर ले जाते, अथवा समस्या पूर्ति करके सुनाते थे। इसी वर्ष में इन्होंने 'कर्पूरमञ्जरी' और 'चन्द्रावली' नाटकों की रचना की।

बाबू साहब स्वयं जैसे बुद्धिमान, विद्वान्, चतुर और बहु-कला कुशल थे वैसे ही वे गुणी जनों का भी आदर किया करते थे। उनका उचित सम्मान करते, उन्हें उचित पारितोषिक भी देते थे। इसी से इनके यहाँ सदैव अच्छे-अच्छे पण्डितों, कवियों और अन्य प्रकार के गुणी लोगों का जमाव रहता था।

सन् १८७३ ई० में आपने "तदीय समाज" नाम की एक सभा स्थापित की, जिसका उद्देश्य केवल प्रेम और धर्म-सम्बन्धी विषय पर विचार करना था। दिल्ली दर्बार के समय इस समाज ने गौ-रक्षा के लिए एक लाख प्रजा के दस्तख़त करवाये थे। इसी प्रकार इन्होंने कई एक सभा-समाजें स्थापित कीं, पत्र निकाले या सहायता देकर निकलवाये और अपने पास से पारितोषिक और इनाम दे-देकर कई एक को कवि और सुलेखक बना दिया। इन्होंने अधिकतर नाटक और कविता में ही सब ग्रन्थ रचे। इनके रचित ग्रन्थों में काव्यों में 'प्रेम फुलवारी', नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली', धर्म सम्बन्धी ग्रन्थों में 'तदीय सर्वस्व' और ऐतिहासिक रचना में 'काश्मीर कुसुम' चुने हुए ग्रन्थ हैं। आप ऐतिहासिक विषय के बड़े प्रेमी थे और आपकी सब रचना प्रायः ऐतिहासिक विषयों से सम्बन्ध रखती है।

बाबू हरिश्चन्द्र की हिन्दी चिरऋणी रहेगी। यह इन्हीं के उद्योग का फल है कि आज दिन हिन्दी का इतना प्रचार है। इसकी सहायता में इन्होंने अपने को सब प्रकार के सुखों से वञ्चित कर दिया। हिन्दी के आकाश-मण्डल में जब घोर अन्धकार छा रहा था, तब भारतेन्दु के उदय से वह प्रकाश फैला कि जिसकी कौमुदी से अब तक लोग आनन्दित और सुखी होते हैं। इन्हीं बातों का स्मरण कर समस्त हिन्दी-समाचारपत्रों ने 'भारतेन्दु' की उपाधि से इन्हें सम्मानित किया। इस उपाधि का आदर राजा और प्रजा दोनों ने किया जो हिन्दी के लिए एक विचित्र घटना है।

बाबू साहब का स्वर्गलोक-गमन ३५ वर्ष की अवस्था में तारीख़ ६ जनवरी सन् १८८५ ई० को हुआ।

अभ्यास

१—इस निबन्ध का ढाँचा बनाओ ।

२—भारतेन्दु बाबू के किसी नाटक को पढ़ा हो तो उसकी कथा अपनी भाषा में लिखो ।

३—'गोस्वामी तुलसीदास' पर निबन्ध लिखो ।

गंगाजी

१—भूमिका ।
२—धार्मिक महत्व ।
३—ऐतिहासिक महत्व ।
४—भौगोलिक व रासायनिक महत्व ।
५—व्यापारिक व कृषि सम्बन्धी महत्व ।
६—वर्णन—प्रवाह, सौन्दर्य ।
७—समाप्ति ।

१—राम-कृष्ण ने इसी के किनारे जन्म लिया। इसी के किनारे हिन्दू-साहित्य और संस्कृत फली-फूली । भगवान बुद्ध का भी यही कार्य-क्षेत्र था। संसार गंगा से उतना ही परिचित है जितना भारत से ।

२—हिन्दू पुराणों के अनुसार महाराज भगीरथ गंगा को स्वर्ग से लाये थे। गंगा हिन्दुओं की देवी-देवताओं में से एक है। इसे वह गंगा माता कहते हैं। गंगा-स्नान के अनेक पर्व होते हैं। बड़े-बड़े मेले लगते हैं। हरिद्वार और प्रयाग के कुम्भ संसार के प्रसिद्ध मेलों में से एक हैं। गंगा किनारे अनेक साधु-महात्मा तप करते हैं। संस्कृत और हिन्दी साहित्य गंगा की स्तुति और महात्म्य से भरा है ।

३—आर्यों से लेकर मुग़लों तक सारे बड़े-बड़े साम्राज्य इसी के किनारे स्थापित हुए। भारत के इतिहास में सब से बड़ा हिस्सा गंगा के मैदान के इतिहास का है।

४—गंगा का मैदान दुनियाँ के सब से अधिक उपजाऊ मैदानों में से एक है। इसका जल अनेक रोगों को अच्छा करता है। वर्षों एक जगह रक्खा रहने पर भी ख़राब नहीं होता।

५—गंगा में सदा से नावों के द्वारा बहुत बड़ा व्यापार होता रहा है, और आज भी होता है। गंगा की मुख्य धारा से तो सिंचाई होती ही है, किन्तु उसकी नहरों से बहुत अधिक सिंचाई का काम लिया जाता है।

६—गंगा जहाँ से निकलती है वह दृश्य बड़ा मनोहर है। वह ऊपर से दक्षिण, दक्षिण से पूर्व और पूर्व से फिर दक्षिण की ओर मुड़कर एक बहुत बड़ा डेल्टा बनाते हुए समुद्र में मिल जाती है। उस सारे मार्ग में अनेकों अत्यन्त मनोहर स्थान हैं।

७—हिन्दू और गंगा कितने एक हैं इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। विना गंगा के भारतवर्ष भी नहीं पहचाना जा सकता।

अभ्यास

१—ऊपर दिये हुए संक्षिप्त निबन्ध का विस्तार करके पूर्ण निबन्ध लिखो।
२—'काशीजी में गंगाजी का दृश्य' वर्णन करो।

हवाई जहाज़

१—भूमिका।
२—उसका इतिहास और विज्ञान।

३—उसकी उपयोगिता।

४—उसके अपवाद।

५—भारतवर्ष और हवाई जहाज़।

६—पश्चिमी देश और हवाई जहाज़।

७—समाप्ति।

विज्ञान ने संसार को बदल दिया है। आज से ५० वर्ष पूर्व इस जगत् से नाता तोड़कर स्वर्ग सिधारा हुआ मनुष्य यदि अकस्मात् पुनः इस मर्त्यलोक में उतर आये तो उसे इस संसार को पहचानना कठिन हो जायगा। कहाँ पुरानी दुनियाँ और कहाँ नई। इस प्रकार क्रान्ति उत्पन्न करने वाली विज्ञान की विभूतियों में हवाई जहाज़ भी एक महा विभूत है। जिस दिन इसकी सृष्टि हुई अखिल विश्व सोते से जाग उठा। हवाई जहाज़ तो पहले केवल एक स्वप्न था, सत्य के रूप में दिखाई देने लगा। प्रारम्भ में तो लोगों को उसे देखकर अपनी आँखों और अपने कानों पर विश्वास नहीं होता था। अब लोग उसके नाम और रूप के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि मन का वह कौतूहल कम हो गया है।

हवाई जहाज़ का आविष्कार बड़ी कठिनाइयों से हुआ है। उसके प्रयोगों में अनेकों विद्वान् और वीर प्राणों की आहुति दे चुके हैं। हवा में उड़ने की उत्कण्ठा मनुष्य में बहुत पुरानी है। अनेक मनुष्यों ने पहले गुब्बारों में बैठकर ऊपर उड़ने की चेष्टा की। ऊपर उड़ते हुए कुछ अनुभव लिखे और फिर गिरकर अपने प्राण दिये। बहुत से लोगों ने अपनी बाँहों में कुछ ऐसी चीजें बाँधकर भी उड़ने की चेष्टा की जिससे वह हवा में थपेड़े मार कर ऊपर उठ सकें।

ऐसे ही अनेक प्रकार के अनुभव और प्रयोगों के बाद हवाई जहाज़ की सृष्टि हुई। कहा जाता है कि पतङ्ग और चील को देखकर मनुष्य ने इस सम्बन्ध में बहुत ज्ञान प्राप्त किया।

हवाई जहाज़ से मनुष्य जाति को लाभ हुआ है। संसार अब छोटा हो गया है और उस पर रहने वाली भिन्न-भिन्न जातियाँ बहुत निकट हो गई हैं। लाखों-करोड़ों मील की दूरी अब जितने थोड़े समय में तय की जा सकती है वह पहले रेल और समुद्र के जहाज़ों द्वारा इतनी जल्दी नहीं की जा सकती थी। हवाई जहाज़ के द्वारा मनुष्य ने संसार में एक ऐसी सड़क स्थापित कर ली है जिसमें समुद्र, पहाड़, नदी आदि के प्रतिबन्ध कोई मूल्य नहीं रखते। इस आविष्कार से व्यापार को भी बड़ा लाभ हुआ है। एक स्थान के समाचार दूसरे स्थान पर जल्द से जल्द पहुँचाए जा सकते हैं। योरोप और अमेरिका के कई समाचार-पत्र हवाई जहाज़ द्वारा ही बाँटे जाते हैं। भारतवर्ष में भी एक-दो पत्रों को दो-एक बार इसी के द्वारा बँटने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सारी अच्छाइयाँ होने पर भी हवाई जहाज़ के कुछ अपवाद भी हैं। गत योरोपीय महायुद्ध में हवाई जहाज़ बड़ा भयानक सिद्ध हुआ। जर्मन के 'ज़ेपलीन' का नाम अब भी बहुत लोगों को याद होगा। हवाई जहाज़ों के द्वारा बड़े-बड़े नगर क्षण भर में जलाकर भस्म कर दिये गये। संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ बड़े बड़े जुझाऊ हवाई जहाज़ रखती हैं, जिन में तोपें, गोले, बारूद आदि बहुत सा लड़ाई का समान लादकर बीसियों सिपाही बैठ सकते हैं। बहुत कुछ हवाई जहाज़ के ही कारण पुराने क़िले और पुराना युद्ध-कौशल व्यर्थ हो गया है।

अब संसार में एक नहीं अनेकों प्रकार के जहाज़ हैं। एक आदमी दो आदमी बैठने वाले हवाई जहाज़ से लेकर सौ-सवा सौ आदमी बिठाने वाले हवाई जहाजों की सृष्टि हो चुकी है। कुछ ऐसे भी जहाज़ हैं जिन में बैठकर मनुष्य समझ भी नहीं सकता कि वह हवा में उड़ता है या नहीं। उसमें उसके खाने, लेटने, खेलने आदि के अलग-अलग कमरे और मेज़, चारपाई, कुर्सी आदि की सारी सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं। उन पर साहसहीन, निर्बल अथवा रुग्ण, स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी ऐसे आराम से जा सकते हैं जैसे संसार की किसी दूसरी सवारी पर। अफ़ग़ानिस्तान के भूतपूर्व अमीर अमानुल्ला ख़ाँ और उनकी बेग़म तथा उनके और सम्बन्धियों और मित्रों को एक ऐसे ही बड़े हवाई जहाज़ पर बिठाकर अफ़ग़ानिस्तान से लाया गया था। एक स्थान वाला जहाज़ 'मानोप्लेन' कहलाता हैं, सौ-डेढ़ सौ यात्रियों का लेजाने वाले जहाज़ 'एयरशिप' कहलाते हैं। ज़ेप्लीन एक दूसरे ही प्रकार का बहुत बड़ा जुझाऊ जहाज़ है, जो दूसरे जहाज़ों की तरह नहीं उड़ता और न उसकी आकृति ही दूसरे जहाज़ों से मिलती है। हवाई जहाज़ों के और भी अनेकों भेद हैं।

भारतवर्ष में हवाई जहाज़ अब भी एक बड़ी असाधारण चीज़ है। अब भी पढ़े-लिखे समाज तक में ऐसे सैकड़ों व्यक्ति हैं, जिन्होंने उड़ते हुए जहाज़ को छोड़कर उसे पास से कभी देखा तक नहीं। अनेकों आदमी ऊँची शिक्षा पाकर भी उसके सम्बन्ध में केवल आसमान में उड़ने वाली बातें करते हैं। अवसर पड़ने पर उस पर बैठने का साहस करनेवाले अथवा अनुभव प्राप्त लोग तो बहुत ही थोड़े हैं। देहातों के लिए तो वह अब भी एक जादू है। किन्तु अब बहुत से नवयुवकों ने अपने साहस

का परिचय देना आरम्भ किया है। हवाई जहाज़ में उड़ने की स्पेशल-क्लबें दिल्ली और कलकत्ता आदि में स्थापित हो गई हैं। उनमें बहुत से लोग उड़ने का अभ्यास करते हैं। कई भारतीय इस कक्षा में ऐसे निपुण हो गये हैं कि वह किसी भी विदेशी विशेषज्ञ की बराबरी कर सकते हैं।

हिन्दुओं का विश्वास है कि रामायण में वर्णन किया हुआ पुष्पक विमान, जिस पर बैठकर भगवान् राम लंका-विजय करने के बाद अयोध्या पधारे थे, इसी प्रकार का एक वृहत् वायुयान था।

योरोप और अमेरिका आदि देशों के लिए हवाई जहाज़ एक बहुत साधारण चीज़ है। बहुत से लोगों के अपने निज के हवाई जहाज़ हैं। उन्होंने बड़ी-बड़ी साहस पूर्ण यात्राएँ की हैं। कई देवियों ने भी पुरुषों की तरह ऐसे ही साहस का परिचय दिया है। वह स्वयं अपने जहाज़ लेकर उड़ी हैं और उन्होंने लम्बी उड़ान की प्रतिद्वन्दिता में भाग लिया है। बहुत से साहसी लोग हवाई जहाज़ों के परों पर उड़ती हुई दशा में टेनिस खेलते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो हवाई जहाज़ पर चढ़कर ऐसे-ऐसे कौतुक करते हैं जैसे सरकस में बाइसिकल या मामूली रस्से पर किये जाते हैं।

किन्तु मनुष्य वायु पर इतनी विजय प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं है। विद्वान् इस सम्बन्ध में अभी और खोज करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। एक जर्मन डाक्टर का तो यहाँ तक अनुमान है कि एक दिन ऐसा आयेगा कि वायुयान के द्वारा एक कलकत्ता निवासी दिन भर अपने सारे काम करने के बाद शाम को लन्दन या पेरिस की सैर करने जायगा और सैर करके चार घन्टे में फिर कलकत्ता वापस आ जायगा। उसने इस सम्बन्ध में कई

सफल प्रयोग किये हैं। जिन लोगों ने 'हवा में उड़ने' की कहावत मात्र को सत्य बनाया है, उनके लिए इस स्वप्न को भी सत्य बनाने में कोई आश्चर्य नहीं किया जा सकता। प्रकृति पर विजय पाने वाले ये महात्मा धन्य हैं।

अभ्यास

नीचे दिये हुए ढाँचे के आधार पर निबन्ध लिखो—

वर्तमान युग के वैज्ञानिक आविष्कार

१—भूमिका—वैज्ञानिक युग की क्रान्ति।

२—मुख्य-मुख्य आविष्कार—साइकिल, हवाई जहाज़, पनडुब्बी नावें, भाप से चलने वाले जहाज़, तार, टेलीफ़ोन, रेडियो, ग्रामोफ़ोन, सिनेमा, टाकी, एक्स-रे आदि।

३—प्रभाव—आने-जाने, व्यापार, मिलने-मिलाने आदि की सुविधाएँ, पुराने हथियार, क़िले, समुद्रीय या पर्वतीय बाधाओं की असार्थकता।

४—भारतवर्ष और आविष्कार—उक्त आविष्कारों का प्रचार बढ़ता जाता है। स्वयं आविष्कार करने की योग्यता का अभाव, आविष्कृत मशीनों आदि का बाहर से आना।

रेलवे-स्टेशन का एक दृश्य

रेलवे स्टेशन विचित्र चहल-पहल का अनोखा स्थान है। वहाँ यद्यपि चौबीसों घंटे साधारण रूप में रौनक़ रहती है फिर भी उस समय की धूम-धाम का क्या कहना है जब रेल का समय होता है? लखनऊ या देहली के समान किसी बड़े स्टेशन पर जो आनन्द आता है वह किसी बड़े शहर के

बड़े से बड़े बाज़ार में न आयेगा। बाहर और भीतर सभी जगह सैकड़ों की भीड़-भाड़ और शोर-गुल रहता है। ऐसा मालूम होता है कि कोई ब्याह की बड़ी बारात उतरी है।

बाहर सैकड़ों ताँगों और इक्कों का ताँता बँधा रहता है। सस्ते भाड़े पर ले जाने वाली मोटरें भी जिन्हें टैक्सी कहते हैं, कम नहीं रहतीं। मुसाफ़िर बाहर से आया, ताँगे और किसी गाड़ी से उतरते ही कुलियों ने आ घेरा। 'बाबू जी हम, बाबू जी हम' की चीख़-पुकार में बहुधा मुसाफ़िर घबड़ा उठते हैं। उनसे किसी प्रकार सौदा चुकाकर, स्टेशन पर सबसे बड़ी मुसीबत है, तीसरे दर्जे की टिकट ख़रीदना। सैकड़ों की भीड़-भाड़, अनेकों धक्के और घण्टों से इन्तज़ार के बाद कहीं टिकट नसीब होता है। फिर यदि कहीं सामान अधिक हुआ तो तुलाना पड़ता है। उसमें यदि रेल का समय बहुत निकट आ गया हो तो बड़ी कठिनाई पड़ती है।

इन सारी कठिनाइयों के बाद फाटक पर टिकट-कलक्टर द्वारा टिकट जचवाकर प्लेटफ़ार्म पर प्रवेश हुआ।

रेलवे स्टेशन का मुख्य प्लेटफ़ार्म जिसे 'मेन प्लेटफ़ार्म' कहते हैं, एक बड़े शान की चीज़ है। बड़े स्टेशनों पर यों तो कई-कई प्लेटफ़ार्म होते हैं, किन्तु मेन प्लेटफ़ार्म ही वास्तविक शोभा की जगह है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई और सफ़ाई देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। लम्बे-लम्बे प्लेटफ़ार्म के एक ओर वेटिंगरूम, रिफ्रैशमेण्ट रूम तथा दफ़्तरों के कमरों की पंक्ति और दूसरी ओर प्लेटफ़ार्म से दो-तीन हाथ नीचे बिछी हुई रेल की पटरियाँ बड़ी सुन्दर प्रतीत होती हैं। प्रत्येक कमरे पर हाथ की तरह निकले हुए साइनबोर्ड यह बताते हैं कि यह तार-घर और यह स्टेशन-

मास्टर का कमरा है, अथवा यह मर्दाना वेटिंगरूम है, और यह ज़नाना। इनके अतिरिक्त इस ओर सारी दीवाल भिन्न-भिन्न प्रकार के अँगरेज़ी और हिन्दी विज्ञापनों से सजी-सी रहती है। टीन के बड़े और छोटे टुकड़े अनेकों प्रकार के चित्रों से चित्रित लिपटन की चाय, जमबक मलहम और वाटर-मैन स्याही के नोटिस का काम देते हैं। इनमें कुछ रेल के भी विज्ञापन हैं, जिनमें किसी पर काशी के मन्दिरों का दृश्य और किसी पर मथुरा के विश्रामघाट के चित्र हैं और यह लिखा है कि, ई० आई० आर० से काशी और मथुरा की सैर करो। गाड़ी की प्रतीक्षा करने वाले बहुत से मुसाफ़िर इन्हीं विज्ञापनों पर निगाहें दौड़ाकर अपना समय बिताते हैं। कुछ लोग दीवाल पर लगे हुए टाइमटेबिलों पर टकटकी लगाये आने वाली गाड़ी का समय खोज रहे हैं। प्लेटफ़ार्म पर ऊपर से लटकी हुई घड़ियों से बहुत से लोग अपनी घड़ियाँ मिलाते हैं और बहुत से केवल इसलिए देखते हैं कि अमुक स्थान पर सुई पहुँची या नहीं? कुछ ह्वीलर के बुक-स्टाल पर किताबें और समाचार-पत्र उलटते-पलटते हैं, कुछ दूसरे स्थलों पर चाय पीते या खिलौने मोल लेते हैं, कुछ मित्रों के हाथ में हाथ डाले अथवा बच्चों की उँगलियाँ पकड़े प्लेटफ़ार्म पर इधर-उधर टहलते हैं, कुछ अँगरेज़ औरतें मर्दों के साथ टहलती हैं, कुछ लोग अपने सामान की रखवाली करते हैं और झुक-झुककर देखते हैं कि सिगनल गिरा या नहीं और कुछ मुसाफ़िर कुलियों पर सामान रखाये आ रहे हैं। इस प्रकार हर प्रकार के आदमियों से प्लेटफ़ार्म भर गया। इनमें बहुत से बङ्गाली हैं, बहुत से अँगरेज़ हैं और बहुत से पंजाबी प्रतीत होते हैं। इधर-उधर दो-चार काबुलिए भी लम्बा-चौड़ा शरीर और ढीला-ढाला पायजामा पहने दूर के लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं। छोटे-

छोटे बच्चे अपने माता-पिताओं से पूछते हैं कि वे कौन जीव हैं ?

इतने में लाइन क्लियर हुआ और थोड़ी देर में गाड़ी की घड़घड़ाहट सुनाई दी। बैठे हुए मुसाफ़िर उठ खड़े हुए। कुलियों ने सामान सर पर रख लिया, बहुत से सारे प्लेटफ़ार्म पर फैलकर खड़े हो गये। रेल के बाबू लोग मुसाफ़िरों को कुछ पीछे हटाने लगे, ताकि रेल का धक्का न लगे।

गाड़ी खड़ी होने की देर थी कि सारा स्टेशन नाना प्रकार की चीख़-पुकार से गूँज उठा। ख़ोमचे वाले 'सिगरेट दियासलाई' 'पूरी मिठाई', 'पान गिलौड़ी' और 'गरम चाय' की आवाजें लगाने लगे। ख़ानसामे अपनी चाय और बिस्कुट के थाल सजाकर फ़र्स्ट और सैकेण्ड क्लास की ओर लपके। अख़बार वाले तरह-तरह के अख़बारों के नाम ले-लेकर चक्कर लगाने लगे। उतरने और चढ़ने वाले मुसाफ़िरों का और ही रंग है। सभी अपनी-अपनी तरफ़ जल्दी कर रहे हैं। उतरने वाले पहले उतरना और चढ़ने वाले पहले चढ़ना चाहते हैं। कोई कुली से झगड़ रहा है, कोई सामान रख रहा है। कुछ गाड़ी पर बैठे हुए मुसाफिर ऐसा समझते हैं कि मानो उन्हीं को जाना है और वे दूसरों को अपने डिब्बे में घुसने देना नहीं चाहते। कुछ ऐसे भी हैं जो दूसरों का सामान उठाते हैं और खुद खिसककर दूसरों को बिठालते हैं। ऐसे समय मनुष्य की सङ्कीर्णता और उदारता का पूरा परिचय मिलता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रकृतियाँ अपना आवरण हटाकर नङ्गी दिखाई देती हैं। पानी पाँडे के आस-पास अच्छी भीड़ है। कोई अपना घड़ा-सा लोटा लिये हटने का नाम नहीं लेता, दूसरा मुँह पर हाथ रक्खे पानी की भीख माँगता है। अपने इष्ट-मित्रों अथवा बन्धु-बान्धवों को भेजने आने वाले लोग

जल्दी-जल्दी बातें करते जाते हैं और कोई पूछते जाते हैं कि अब कब मुलाकात होगी ? इतने में गार्ड ने सीटी दी और हरी झण्डी दिखाई गई। ऐंजिन ने पेट फुलाकर अपनी कान फोड़ने वाली सीटी और भप-भप की आवाज़ों के साथ पैर बढ़ाये और गाड़ी चल दी। बहुत से लोग चलती गाड़ी पर चढ़ने लगे। कोई पानी लेकर भागा आ रहा है, कोई अपना सामान गाड़ी में फेंककर गाड़ी पकड़ने के लिए दौड़ रहा है। बाबू लोग किसी-किसी को चढ़ने में मदद देते और किसी को चढ़ने से रोकते तथा डिब्बों के किसी-किसी खुले हुए दर्वाज़ों को बन्द करते हैं। अब डिब्बों में चढ़े हुए लोग बैठने की फ़िक्र करने लगे और एक दूसरे का परिचय पूछने लगे। कुछ लोग हाथ मिलाकर, रूमाल हिलाकर नमस्ते, गुडबाई, सलाम और राम-राम के साथ बिदा होने लगे।

प्लेटफ़ार्म पर उतरे हुए लोगों की भीड़ भी घट गई है। टिकट बाबू इधर-उधर भूले-भटके आने वाले एक-दो और मुसाफ़िरों का इन्तिज़ार करके चल दिये। ख़ौंमचे वाले और कुली सभी ने प्लेटफ़ार्म सूना कर दिया। सारा शोर शान्त हो गया, मानो बारात बिदा हो गई, अथवा बाज़ार उठ गयो। बाबू लोग भी अपने-अपने कमरों में घुस गये। दो-चार आदमियों के आने-जाने को छोड़कर सारे प्लेटफ़ार्म पर फिर वही सन्नाटा छा गया। प्लेटफ़ार्म पर गड़े हुए खम्भों में अथवा छतों पर लटकने वाले बिजली के लट्टू दिन के कारण तारों की तरह छिपे रहे। उन्हें अपने खेल दिखाने का मौक़ा न मिला।

अभ्यास

(१) 'बाज़ार का एक दृश्य'—इस पर निबन्ध लिखो।

(२) यह निबन्ध किस श्रेणी के निबन्धों में गिना जायगा ?

अभ्यास के लिए ढाँचे

दीपमालिका

१—कैसे मनायी जाती है—वर्णन।

२—उत्पत्ति—रामचन्द्रजी की लंका-विजय, अथवा प्रह्लाद के अग्नि दाह से बचकर निकलने का आनन्दोत्सव।

३—दूसरे महत्व—ऋतु परिवर्तन का पर्व, घरों की सफ़ाई आदि, ऋषि दयानन्द की मृत्यु तथा स्वामी रामतीर्थ का जन्म और मृत्यु दिवस सारे भारत में मनाया जाना, अमृतसर और बम्बई की दिवाली प्रसिद्ध है।

४—अपवाद—जुआ का खेल।

मेले

१—मेलों के कारण—अधिकतर धार्मिक, विनोद, धर्म-लाभ व कला-कौशल के प्रदर्शन के लिए।

२—उद्देश्य—दूर-दूर के लोगों के विचार व वस्तुओं का आदान-प्रदान।

३—लाभ—व्यापार, कला-कौशल की उन्नति, व्यावहारिक-ज्ञान की वृद्धि।

४—किसी एक देखे हुये मेले का साधारण उल्लेख और उसमें होने वाले कष्ट व आनन्द।

तुम्हारा स्कूल

१—अपना स्कूल सब को प्रिय होता है।

२—स्कूल-भवन—स्थिति, लम्बाई-चौड़ाई, कमरों की संख्या, साधारण चित्र।

३—शिक्षा सम्बन्धी विशेषताएँ—विशेष पढ़ाये जाने वाले विषय—कामर्स आदि ।

४—अध्यापक-मण्डल—व्यवहार, शिक्षाप्रणाली आदि ।

५—खेल-कूद—फ़ील्ड, भिन्न-भिन्न खेल, खेलों का उल्लेख ।

६—दूसरी बातें—वाद-विवाद समिति, ड्रामा, पत्रिका आदि ।

पारितोषिक वितरण

१—समय, कारण आदि ।

२—तैयारी—विद्यार्थियों और अध्यापकों की महीनों की तैयारी और व्यग्रता ।

३—उत्सव—सजावट और प्रबन्ध आदि ।

४—कार्यवाही—सभापति का स्वागत, कविताओं का पाठ, गाने, वार्तालाप, प्रहसन, पारितोषिक वितरण, भाषण ।

५—उत्सव की समाप्ति—विद्यार्थियों में मिठाई वितरण, कोलाहल आदि ।

छात्रावास जीवन

१—रहन-सहन ।

२—अनेकों विद्यार्थियों के साथ रहने के आनन्द ।

३—छात्रावास जीवन के विनोद, खेल-कूद, दंगे ।

४—छात्रावास से लाभ—शरीर, मन और बुद्धि का विकास, व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि ।

५—हानि—दूसरे विद्यार्थियों की बुराइयों का बुरा प्रभाव ।

समाचार-पत्र

१—भूमिका

२—वर्तमान काल में समाचार-पत्रों का प्रभाव।

३—समाचार-पत्रों के लाभ—व्यापार-सम्बन्धी लाभ, लोक-मत जानने का साधन, विचार परिवर्त्तन का साधन, विस्तृत ज्ञान की वृद्धि।

४—हानि—बुराइयाँ फैला सकते हैं, भ्रम उत्पन्न करा सकते हैं, साम्प्रदायिक और जातीय झगड़ों के कारण, स्वामी राम की उक्ति "समाचार-पत्र न पढ़ने वाले धन्य हैं"।

५—भारतवर्ष में समाचार-पत्रों की अवस्था, प्रचार की कमी।

६—दूसरे देशों में अवस्था—दिन में तीन-तीन बार छपने वाले पत्र, बड़े-बड़े प्रेस, गाड़ी हाँकने वाला तक पत्र पढ़ता है।

स्कूल का पुस्तकालय

१—पुस्तकालय का महत्व।

२—पुस्तकालय-भवन—साधारण चित्र, मेज़ अलमारियों आदि का वर्णन।

३—पुस्तकें—विषय, संख्या, ऊपरी दशा।

४—पत्र—पत्र और पत्रिकाएँ।

५—पुस्तकों का संरक्षण, पुस्तकाध्यक्ष, उसकी प्रकृति, लेने-देने के नियम।

६—विद्यार्थियों की अभिरुचि—पुस्तकालय से कितना लाभ उठाया जाता है, कैसी पुस्तकें अधिक पढ़ी जाती हैं।

७—पुस्तकालय की त्रुटियाँ—अपनी दृष्टि से व स्कूल के नाते।

भारत के साधु और फ़क़ीर

१—साधुओं के भेद—संन्यासी, जोगी, कनफटे, उदासी, सूफ़ी (मुसलमान), मुड़चिरे आदि।

२—रूपरंग—नंगे, जटाधारी, भभत लगाये. सज़ावट में गृहस्थ की तरह।

३—रहन-सहन—कुछ साधुओं के ठाटवाट पूर्ण अखाड़े, कुछ साधुओं का त्यागपूर्ण जीवन, कुछ का भिखमंगों की तरह जीवन।

४—प्रकृति—चिड़चिड़े, क्रोधी, भोग लोलुप, कुछ शांत, गम्भीर, त्यागी।

५—लोगों की उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति अब कुछ कम हो रही है।

६—देश का हानि-लाभ—हानि अधिक, लाभ थोड़ा।

७—सुधार की आवश्यकता—कुछ हो रहा है, साधु सम्मेलन।

रेल-यात्रा

१—भूमिका—बच्चों का हर्ष, नवजवानों की उदासीनता, बुड्ढों की चिन्ता।

२—स्टेशन—साधारण चित्र, रेल पर बैठने के पूर्व टिकट मोल लेना, कुली, बैठने की कठिनाइयाँ।

३—यात्रा—डिब्बे के साथी, बातचीत, परस्पर परिचय, भिन्न-भिन्न स्टेशन, रास्ते के विशेष नगर, प्राकृतिक सौन्दर्य, कोई विशेष घटना।

४—यात्रा का अन्त—परिचय प्राप्त लोगों से बिदा, उतरने की कठिनाइयाँ, कुली, टिकट वाबू इत्यादि।

५—समाप्ति—यात्रा की विशेषता और अनुभव।

छुट्टियाँ

१—छुट्टियों की प्रतीक्षा और उत्सुकता।

२—छुट्टियों के आनन्द, विद्यार्थियों और गृहस्थों के आनन्दों में भेद, खेल, भ्रमण, सहभोज आदि, और बाल-बच्चों में विनोद, मित्रों से मिलना, गृहस्थी के काम आदि।

३—छुट्टियों का सदुपयोग कैसे करना चाहिए—शरीर, मन और बुद्धि के विकास और स्वास्थ्य के लिए भ्रमण, विनोद, विश्राम आदि करके।

स्वास्थ्य-रक्षा

१—स्वस्थ कौन है ? पहचान—नेत्रों में तेज, मुख पर सुर्खी शरीर में फुर्ती और बल, पाकाशय की निरोगता।

२—स्वास्थ्य के आनन्द।

३—स्वास्थ्य-रक्षा के नियम—शुद्ध और नियमित आहार-विहारयुक्त जीवन, व्यायाम, सफ़ाई, ब्रह्मचर्य, उत्तम जल-वायु, धूप-सेवन आदि।

४—स्वास्थ्य बिगाड़ने वाली बातें—अशुद्ध और अनियमित आहार-विहार तथा अन्य उपरोक्त नियमों के विरुद्ध बातें।

रामायण

१—रचयिता—गो० तुलसीदास का व्यक्तित्व।

२—रचना काल व स्थान—अकबर की समकालीनता व भिन्न-भिन्न स्थान, काशी, चित्रकूट आदि में निवास।

३—रामायण का महत्व—(१) धार्मिक, (२) काव्य की दृष्टि से, (३) आचार और नीति की दृष्टि से।

४—रामायण का प्रभाव।

५—रामायण की भाषा, अवधी व ब्रज तथा खड़ी बोली आदि का मिश्रण।

६—रामायण का प्रचार—लाखों प्रतियाँ प्रति वर्ष छपती हैं अनेक भाषाओं में उसका अनुवाद है, बच्चे-बच्चे को उसकी एक-एक चौपाई याद है, सभी तरह के आदमी उसे पढ़ते हैं।

निबन्ध लिखने के लिए थोड़े से चुने हुए विषय

१—किसी मैच का वर्णन।

(S. L. C., 1929)

२—उद्यान के आनन्द।

(S. L. C., 1928)

३—विद्यार्थी-जीवन का महत्व।

(S. L. C., 1928)

४—मनुष्य-जीवन में परिश्रम का महत्व।

(S. L. C., 1929)

५—हमारे देश के उद्योग और धन्धे।

(प्रथमा सं० १९८२)

६—पशु-पक्षियों पर प्रेम।

(प्रथमा सं० १९८२)

७—सब से अच्छा मेला जो आपने देखा हो।

(प्रथमा सं० १९८२)

८—वर्षा के किसी दिन का वर्णन।

(प्रथमा सं० १९८३)

९—बड़े नगर में रहने से लाभ व हानि।

(प्रथमा सं० १९८३)

१०—किसी देश के यदि आप शासक बना दिये जायँ, तो क्या करेंगे?

(प्रथमा सं० १९८३)

११—भारतवर्ष का ग्राम्य-जीवन।

(मध्यमा सं० १९८५)

१२—गोपाल कृष्ण गोखले।

१३—एक रुपये की आत्म-कथा।

१४—वर्षा ऋतु का आगमन।

१५—आदमी अपनी संगति से पहचाना जाता है।

१६—एक बड़े परिवार के प्राणी होने के लाभ।

१७—वर्षा ऋतु का एक दिन।

१८—तुम किसे वीर समझते हो?

१९—कुली।

२०—एक ऐसे मुसाफ़िर के सत्य या काल्पनिक अनुभव जिसे एक रात वन में बितानी पड़ी हो।

२१—भिन्न-भिन्न प्रकार के लड़कों के चरित्र जिनका अनुभव अपने स्कूल-जीवन में हुआ हो।

२२—मेरे दुख-सुख।
२३—कोई पर्व जिसमें जो तुम्हें सब से अधिक प्रिय हो।
२४—पर्वतीय दृश्य।
२५—पालतू पशुओं को रखना।
२६—सत्य और मिथ्या।
२७—तुम किसे सुखी समझते हो?
२८—विवाहोत्सव।
२९—एक बाज़ीगर के खेल।
३०—लम्बी छुट्टी बिताने की सर्वोत्तम विधि।
३१—समाचार-पत्रों का प्रभाव।
३२—पहनने के तरह-तरह के कपड़े।
३३—नियमन (Diciplinc)
३४—मूढ़ विश्वास। (Superstition)
३५—अब क्या लोग पहले की अपेक्षा अधिक सुखी हैं?
३६—वाद-विवाद समितियाँ।
३७—परिश्रम।
३८—रेल।
३९—विज्ञापन के लाभ व हानि।
४०—ऊँट।
४१—खजूर का वृक्ष।
४२—ग्रीष्म ऋतु की सन्ध्या।
४३—किसी गांव के बाज़ार का दृश्य।
४४—ताजमहल।
४५—डाकिया।
४६—कोयला।
४७—भारतवर्ष की ऋतुएँ।
४८—किस प्रकार के अध्यापक विद्यार्थियों को सबसे अधिक प्रिय होते हैं।
४९—पुलिस कॉन्सटेबिल।
५०—मोटर।
५१—भगवान् बुद्ध।
५२—कोई रेल-दुर्घटना।
५३—सफ़ाई।
५४—सदाचरण।
५५—समय का उचित उपयोग।
५६—एकता की शक्ति।
५७—जाति भेद।
५८—गृहस्थ-जीवन का आनन्द।
५९—अकाल।
६०—तुम्हारी सबसे प्रिय पुस्तक।
६१—मैत्री।
६२—समय की पाबन्दी।
६३—पत्र-लेखन।
६४—तड़के उठना।

६६—तुम्हारी दृष्टि में कौनसा पेशा अच्छा है ?
६७—डायरी का रखना।
६८—दान।
६९—पशुओं के प्रति हमारी निर्दयता।
७०—पढ़ने के आनन्द।
७१—उपन्यास पढ़ने के लाभ और हानि।
७२—एक चाँदनी रात का वर्णन।
७३—धन का उचित उपयोग।
७४—ऋण।
७५—युद्ध।
७६—कहावतें।
७७—कहानियाँ।
७८—प्रदर्शिनी।
७९—बचपन।
८०—व्यायाम।
८१—पाठशाला।
८२—गो० तुलसीदास का काव्य।
८३—भरत।
८४—फलदार वृक्ष।
८५—क़लम और तलवार।
८६—नहरों से लाभ।
८७—शहद।
८८—चाँदी।
८९—नदी-तट का कोई दृश्य।
९०—नाव की सैर।
९१—जल-बाढ़।
९२—रोशनी (प्रकाश) के साधन।
९३—व्यापार बनाम नौकरी।
९४—एक छड़ी की आत्म-कथा।
९५—गुरु गोविन्दसिंह।
९६—चिड़ियाघर।
९७—सर्प।
९८—मृत्यु।
९९—कोयल।
१००—अशोक।
१०१—पानी।
१०२—हरिद्वार।
१०३—मेरी पहली रेल यात्रा।
१०४—विजय दशमी।
१०५—मैंने तैरना कैसे सीखा।
१०६—अतिथि सत्कार।
१०७—स्वभाव।
१०८—चना।
१०९—देशी खेल।
११०—सिनेमा या बाइसकोप।
१११—भारत के किसान।
११२—अछूत।
११३—संगीत।
११४—सँपेरा।

———